ISSN No : 2583-3855
anuswaar@gmail.com

अनुस्वार

साहित्य एवं कला की त्रैमासिक पत्रिका

सदस्यता आवेदन

सदस्यता आवेदक का नाम ______________________________

पूरा पता पिन कोड सहित ______________________________

ईमेल आईडी व ____________________ **फोन नम्बर** ____________________

तारीख ____________________

हस्ताक्षर

मूल्य :

सामान्य प्रति : **150 रुपये**

वार्षिक मूल्य : **600 रुपये**

द्विवार्षिक मूल्य : **1000 रुपये**

आजीवन सदस्यता : **6000 रुपय।**

भुगतान के लिए :

IndiaNetbooks Pvt. Ltd.
RBL Bank, Noida
A/c No : 409001020633
IFSC : RATN0000191

ISSN No : 2583-3855

अनुस्वार

साहित्य एवं कला की त्रैमासिक पत्रिका

वर्ष : 4 मूल्य : 150/- त्रैमासिक अंक : 15 जुलाई-सितम्बर 2024

सलाहकार मंडल

सलाहकार संपादक
डॉ. प्रेम जनमेजय
गिरीश पंकज
डॉ. एस.एस.मुद्गिल
डॉ. सुशील कुमार त्रिवेदी

प्रबंध संपादक
डॉ. मनोरमा

कार्यकारी संपादक
कामिनी

मुख्य संपादक
डॉ. संजीव कुमार

अतिथि संपादक
प्रेम जनमेजय

प्रकाशक एवं स्वामी
डॉ. संजीव कुमार

प्रकाशकीय/संपादकीय कार्यालय : 'अनुस्वार', सी-122, सेक्टर-19, नोएडा-201301 गौतमबुद्ध नगर (दिल्ली एनसीआर)
मुद्रण कार्यालय : बालाजी ऑफसेट, (न्यू-एम-28), 1/11844, उल्धनपुर, नवीन शाहदरा, दिल्ली-110032
वितरण कार्यालय : इंडिया नेटबुक्स प्रा. लि., सी-122, सेक्टर-19, नोएडा-201301 गौतमबुद्ध नगर (दिल्ली एनसीआर)

© **स्वत्वाधिकार** : मुख्य संपादक : डॉ. संजीव कुमार

आवरण चित्र : शुभ्रामणि
आवरण एवं पुस्तक सज्जा : विनय माथुर

मूल्य : सामान्य प्रति : 150 रुपये
वार्षिक मूल्य : 600 रुपये
द्विवार्षिक मूल्य : 1000 रुपये
आजीवन सदस्यता : 6000 रुपये

भुगतान के लिए :
IndiaNetbooks Pvt. Ltd.
RBL Bank, Noida
A/c No : 409001020633
IFSC : RATN0000191
Paymtm No : 9893561826

नोट : भुगतान करने के उपरान्त रसीद के साथ अपना पता और फोन नं. हमें 9873561826/9810066431 पर व्हाट्सअप करें।

सर्वाधिकार सुरक्षित

प्रकाशक की पूर्व अनुमति के बिना इस प्रकाशन का कोई भी हिस्सा, किसी भी रूप में या किसी भी प्रकार से इलेक्ट्रॉनिक, मशीनी या फोटोकॉपी या रिकॉर्डिंग द्वारा प्रतिलिपित या प्रेषित नहीं किया जा सकता।

डॉ. संजीव कुमार, सी-122, सेक्टर-19, नोएडा-201301 गौतमबुद्ध नगर (दिल्ली एनसीआर) द्वारा स्वयं के स्वामित्व में प्रकाशित और बालाजी ऑफसेट, (न्यू-एम-28), 1/11844, उल्धनपुर, नवीन शाहदरा-110032 से मुद्रित।

संपादक : डॉ. संजीव कुमार

अनुक्रम

मुख्य संपादक की ओर से	*डॉ. संजीव कुमार*	*7*
आवरण कथा		10
कलाक्षेत्रे		11
चिंतनधारा		
औरत के वजूद से जुड़े सवालों का दहकता सुलगता दस्तावेज	डॉ. शिव कुमार मिश्र	13
सुलगते सत्य का दारुण दस्तावेज	विजयमोहन सिंह	20
चित्रा को समझने का एक प्रयास	शब्द कुमार	23
क्या मानवीय सरोकार केवल किताबी बातें हैं?	शैली मुद्गल	26
नयो नयो लागतहै ज्यों ज्यों जानिए	डॉ. चंद्रकला सिंह	31
नारी विमर्श का एक सटीक और संतुलित पाठ भी है आवां	दिविक रमेश	36
प्रगतिशील समाज और आज की वैदेही	मनीषा आवले चौगाँवकर	45
चित्रा दी से अचानक हुई मोबाइल से मुलाकात	नीलम कुलश्रेष्ठ	48
संवाद		
चित्रा मुद्गल से डॉ. संजीव कुमार का संवाद	संवादकर्ता : डॉ. संजीव कुमार	50
कथा/कहानी		
मां की कोख, कुम्हार का आवां	चित्रा मुद्गल	54
किसी से जुड़कर	सुषमा मुनीन्द्र	63
यथा नाम तथा गुण	जगदीश चंद चौहान	67
अथः कुदरत मइया कोरोना देव व्रत कथा	डॉ. श्याम सखा श्याम	70
मिर्ची के रंग		
मैं कूता राम का तो...	प्रेम जनमेजय	74
रुपयों का चक्कर	शिव मोहन यादव	76
स्वास्थ्य साहित्य		
मन या MIND	डॉ. एस.एस.मुद्गिल	77

विधि साहित्य
भारत के संविधान के 75 वर्ष उपलब्धियाँ व चुनौतियाँ डॉ. संजीव कुमार 82

कविता/ग़ज़ल
डॉ. संजीव कुमार की कविताएँ 91
डॉ. दीप्ति की कविता 93
कमलेश कुमार दीवान की कविता 94
अमित कुमार मल्ल की कविता 94
राजकुमार कुम्भज की कविताएँ 95
लवकुश त्रिपाठी की ग़ज़लें 96

पुस्तक समीक्षा
बड़े विचारों को बेहद साधारण, लेकिन प्रभावी ढंग से पेश करती हैं
'अफसोस की खबर' की कविताएँ समीक्षक : चन्दन झा 97
मेरी कहानियाँ (मौज जीवन का फलसफा) समीक्षक : अनिल मिश्रा 99

साहित्य समाचार
इंडिया नेटबुक्स एवं बीपीए फाउंडेशन सम्मान/पुरस्कार 2024 शैली माथुर 101

पुस्तकालयों के सुधार का अभूतपूर्व प्रयास डॉ. संजीव कुमार

वर्तमान में देश के स्कूलों में पुस्तकालय की व्यवस्था जीर्ण-शीर्ष रूप में है। ऐसी स्थिति में पठन-पाठन की उम्मीद करना बेमानी है। यह आवश्यक है कि पहले किताबें उनकी पहुँच में लाई जायें और तब छात्रों को पढ़ने के लिए प्रेरित किया जाये डॉ. संजीव कुमार ने बताया कि इस कमी को पूरा करने के उद्देश्य से उनकी संस्था बीपीए फ़ाउंडेशन ने एक अभूतपूर्व योजना तैयार की है, जिसके अंतर्गत जूनियर स्कूलों को 20,000 रु. माध्यमिक स्कूलों को 30,000 रु. तथा महाविद्यालयों को 40,000 रु. तक की पुस्तकें दान किए जाने की योजना हैं। योजना की व्यवस्था हाल ही में स्थापित वामा अकादमी के भारत में संचालित 40 चैप्टरों के द्वारा की जायेगी। योजना के वित्तपोषण के लिए बीपीए फ़ाउंडेशन व्यक्तियों और कंपनियों से दान में धन व पुस्तकें ग्रहण करेगा। ज्ञात हो कि बीपीए फ़ाउंडेशन को दिये जाने वाले दान पर 80ळ व 12A की 50% की छूट मिलेगी। उन्होंने व्यक्तियों और कंपनियाँ से आगे बढ़ कर योगदान देने की अपील की जिससे एक नई पीढ़ी को संसाधन मुहैया कराने व ज्ञान प्राप्त करने में सुगमता रहे।
उक्त दान बीपीए फ़ाउंडेशन के बैंक खाते (ICICI bank Mayur Vihar, A/C No. 629705015913 IFSC Code ICIC0006297 पर या 9873561826 पर भेज सकते हैं।

मुख्य संपादक की कलम से

प्रिय पाठकों

अनुस्वार आपके सहयोग से निरंतर प्रौढ़ता की ओर अग्रसर हो रही है। अनुस्वार आप सबकी रूचि के अनुसार प्रत्येक अंक में एक न एक विशिष्ट साहित्यकार के बारे में सामग्री प्रस्तुत करती है। पिछले कुछ अंकों में श्रीमती ममता कालिया, श्री प्रेम जनमेजय, श्री प्रताप सहगल, श्रीमती संतोष श्रीवास्तव, श्री गिरीश पंकज आदि से संबंधित विशिष्ट अंक हम प्रस्तुत कर चुके हैं। जिनको आपने सराहा है और प्रशंसा की है जो हमारे लिए और हमारी संपादकीय टीम के लिए संतुष्टि का विषय है और हम मनोयोग के साथ इसे इसी प्रकार जारी रखेंगे।

वर्तमान अंक हिंदी साहित्य के मूर्धन साहित्यकार, उपन्यासकार एवं कहानीकार आदरणीया चित्र मुद्गल पर केंद्रित है। उन्होंने अपने लेखन के माध्यम से न केवल उपन्यास की दुनिया में एक शैली का प्रतिपादन किया। अपितु अपने वैशिष्ट्य पूर्ण सृजन से हिंदी साहित्य को समृद्ध किया। आज भी उनकी साहित्य सेवायें निरंतर जारी हैं और इस वय में उनका सृजन साहित्य को एक प्रकार का अधिलाभ कहा जा सकता है। हमने पूर्व निर्धारित नीति के साथ उनके व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर यथावत विस्तृत प्रकाश डालने का प्रयास किया है। इस प्रक्रिया में उनके द्वारा जो प्रतिभागिता अनुस्वार के साथ रही उसके लिए हम उनके आभारी हैं।

जुलाई से सितम्बर 2024 की त्रैमासिक में व्यक्तिगत स्तर पर कुछ अस्वस्थता रहने से बहुत से कार्य समय से पूरे होने में कठिनाइयाँ, साथ ही वामा अकादमी के कार्यक्रम में भी कुछ -कुछ अवरोध या विलंब हुए, किंतु आने वाले समय में उनको यथोचित करके गति दी जाएगी एवं पूर्ण कर लिया जाएगा।

'इंडिया नेटबुक्स' ने जैसा कि पिछले अंक में सूचित किया था। अल्पावधि में 1100 पुस्तकों के प्रंकाान का आंकड़ा प्राप्त कर लिया है और लगभग 200 पुस्तकें प्रकाशन के विभिन्न चरणों में हैं। हम लेखकों को विश्वास दिलाते हैं कि प्रकाशन की प्रक्रिया में लगने वाले समय को हम कम से कम करने का प्रयास कर रहे हैं और उसके लिए अतिरिक्त संसाधनों को मुहैय्या कराया जा रहा है।

'इंडिया नेटबुक्स' एक विषय 'व्यंग्य श्रृंखला' के अंतर्गत, व्यंग्य पर मेरे द्वारा लिखी हुई 10 पुस्तकों का प्रकाशन कर रहा है, जो शीघ्र ही पूरा करने का प्रयास है। इस क्रम में 'व्यंग्य का व्याकरण', 'व्यंग्य का वैश्विक परिदृश्य एवं आधुनिक व्यंग्य के तत्व शीघ्र ही आपके समक्ष प्रस्तुत किये जायेंगे। शेष पुस्तकों में हिंदी व्यंग्य साहित्य का इतिहास, हिंदी का मनोविज्ञान, व्यंग्य की समालोचना के सिद्धांत, व्यंग्य पर विभिन्न व्यवस्थाओं के प्रभाव, व्यंग्य के संदर्भ एवं व्यंग्य श्रृंखला की इन 10 पुस्तकों में व्यंग्य के विभिन्न पक्षों का सैद्धांतिक एवं विश्लेषाणात्मक अनुशीलन किया गया है। जो एक नई दृष्टि एवं नई सामग्री व्यंग्यकारों एवं साहित्य जगत तथा शोद्यार्थियों के लिए अवश्य उपयोगी सिद्ध होगी।

ज्ञातव्य है कि प्रतिवर्ष मार्च के महीने में बीपीए फाउंडेशन एवं इंडिया नेटबुक्स द्वारा चयनित साहित्यकारों, कलाकारों तथा सांस्कृतिक एवं सामाजिक उत्थान करते हैं का सम्मान किया जाता है। वर्ष 2024 के पुरस्कारों को मार्च 2025 में दिया जाएगा। इस हेतु आवश्यक प्रेस विज्ञप्ति जारी की जा चुकी है। जिसके अनुसार साहित्यकारों द्वारा विभिन्न पुरस्कारों की प्रविष्टियाँ 30 नवम्बर 2024 तक इंडिया नेटबुक्स प्रा.लि, सी-122, सेक्टर-19, नोएडा-201301 गौतमबुद्ध नगर (उ.प्र) पर भेजी जा सकती हैं और इस हेतु कोई भी स्पष्टीकरण एवं सहायता आदि के लिए शैली माथुर, मोबाइल नं. 9971297292 से संपर्क किया जा सकता है। बीपीए फाउंडेशन यथासंभव नवोदित एवं युवा साहित्यकारों को प्रेरित करने के उद्वेय से पुरस्कारों का आयोजन करता है और चयनित वरिष्ठ साहित्यकारों के सम्मान द्वारा उन्हें मार्गदर्शन और प्रेरणा देने का प्रयास करता है।

प्रेस विज्ञप्ति इस अंक में भी प्रकाशित की गई है। इस बार तीन नये पुरस्कारों की स्थापना भी की गई है। जो समूह द्वारा अधिगृहीत पत्रिका 'कथाबिंब' के संबंध में है। यह पुरस्कार कहानीकार, उपन्यासकार एवं लघुकथाकार को दिये जायेंगे।

बीपीए फाउंडेशन द्वारा पुस्तकालय समृद्धि योजना के अंतर्गत अब तक 7500 पुस्तकों की आपूर्ति की गई है। जिसमें विभिन्न साहित्यकारों द्वारा योगदान दिये गये हैं। सैंकड़ों पुस्तकें प्राप्त हुई। आपसे अनुरोध है कि इस महत्ती योजना में अपनी भी प्रतिभागिता समाहित करें। इस हेतु सदस्यता आवेदन आवश्यक शुल्क, सहयोग राशि बीपीए फाउंडेशन के आईसीआईसीआई बैंक में खाता संख्या 62970515913 आईएफएससी कोड (IFSC code) ICIC0006297 में की जा सकती है। दान की धनराशि पेटीएम द्वारा 9873561826 पर भी की जा सकती है। इसके साथ ही bpafoundation.org पर भी कर सकते हैं। मैं आपका आह्वान करना चाहता हूँ कि कम से कम 1000/- रू. की धनराशि अवश्य दान करें।

अनुस्वार का अगला अंक प्रसिद्ध साहित्यकार दामोदर खड़से पर केंद्रित होगा। आपसे अनुरोध है कि उनसे संबंधित आलेख या संस्मरण anuswaar@gmail.com पर 30 नवंबर 2024 के पहले तक भेजकर अनुगृहीत करें।

जैसा कि पिछले अंक में सूचित किया था कि कथाबिंब का अधिग्रहण करने के उपरांत प्रथम अंक अप्रैल-सितंबर 2024 संयुक्तांक अंक के रूप में लघुकथा विशेषांक के तौर पर प्रकाशित किया जा चुका है। आशा है आप सबको पसंद आयेगा। आपसे अनुरोध है कि इस पत्रिका की सदस्यता अवश्य प्राप्त करें और यदि पहले से ही सदस्य है तो उसका नवीकरण अवश्य करें। इसी प्रकार अनुस्वार की सदस्यता के लिए भी बारम्बार अनुरोध है और सदस्यता आवेदन पत्र इस अंक में संलग्न है। आज के समय में जब पत्रिकाएँ विलीन हो रही हैं। अनुस्वार पठनीय सामग्री के साथ आपके समक्ष स्तरीय रूप में प्रस्तुत है। अतः आपका सहयोग हमें प्रेरणा देगा और आपके साथ जुड़ाव हमें आवश्यक बल भी देगा।

'विधिनायक' अब अपने कदम तेजी से आगे बढ़ा रहे हैं। उसका दूसरा अंक शीघ्र ही आपके समक्ष आने वाला है। कानून से संबंधित लोगों के लिये ही नहीं अपितु जन साधारण के लिये भी कानून के सामान्य ज्ञान के लिये उपयोगी है। अतएव मेरी अपेक्षा है कि आप एक बार उसे अवश्य पढ़ें।

वर्तमान अंक में आदरणीया चित्रा मुद्गल से संबंधित सामग्री के अतिरिक्त सभी स्तंभ में यथावत जैसे– कविता, कहानी, लघुकथा, चिकित्सा साहित्य, विधि साहित्य, खेल साहित्य, बाल साहित्य समाचार एवं समीक्षायें यथावत प्रस्तुत करने का प्रयास रहा है।

इन्हीं शब्दों के साथ अनुस्वार का यह 15वाँ अंक पाठकों को समर्पित है।

आपकी टिप्पणियों और सुझावों की हमें प्रतीक्षा रहेगी।

डॉ. संजीव कुमार

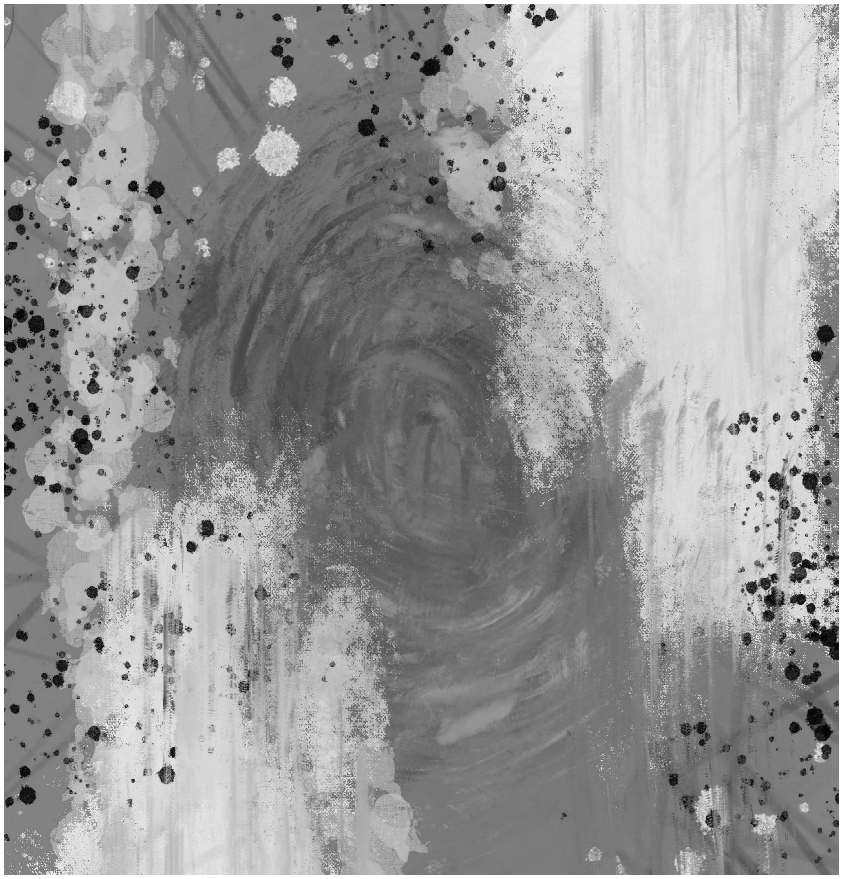

शुभ्रामणि : एक परिचय

शुभ्रामणि एक अमूर्त कलाकार हैं। उनकी प्रेरणा किसी विचार, प्रकृति, वस्तु, भावना या किसी उद्देश्य में छिपी होती है। रंगों और आकारों के माध्यम से कलात्मक रूप में अभिव्यक्त करना उन्हें एक ऐसी स्वतंत्रता प्रदान करता है जो कई बार शब्दों के माध्यम से अभिव्यक्त नहीं की जा सकती है। अमूर्त कला एक ऐसा माध्यम है जिसमें कलाकार को रंगों के सहारे नये-नये आयाम, नये-नये चित्र बनाने का अवसर मिलता है और हर बार उनकी कला एक अनोखापन लेकर उभरती है। ऐसा ही कुछ नया करने का एहसास और प्रयास शुभ्रामणि की कला का आधार है। एक सलाहकार कम्पनी में काम करते हुए एक कुशल गृहिणी के साथ-साथ अपने खाली समय का सदुपयोग वह अपनी कलात्मक एवं काव्यात्मक अभिव्यक्तियों के द्वारा करती हैं। वह जहाँ एक कलाकार हैं, वहीं एक कवयित्री भी हैं।

यह कलाकृति प्रथम पूज्य भगवान गणेश का विघ्नविनाशक, राजस्वरूपी चित्र है।

मोनोक्रोम पृष्ठभूमि और जीवंत सुनहरे रंग के विवरण के बीच का अंतरक एक अद्‌भुत प्रभाव पैदा करता है, जो गणेश जी से जुड़े दिव्य प्रतीकवाद की ओर ध्यान आकर्षित करता है।

एक कलाकार के रूप में, मुझे आध्यात्मिक विषयों को जीवन में लाने के लिए पारंपरिक और आधुनिक तकनीकों के मिश्रण का आनंद मिलता है।

प्रीति डांगी : एक परिचय

कला के प्रति समर्पण और प्रेम ने मुझे प्रेरित किया कि दृश्य कला की इस विधा में मैं नए प्रयोग कर सकूँ और अपने विचारों अनुभवों को कला के माध्यम से मूर्त अमूर्त रूप दे सकूँ जो प्रासंगिक हो। मेरा प्राथमिक माध्यम चारकोल और वॉटरकलर है, जिसमें चारकोल पर विशेष ध्यान दिया गया है।

मेरे लिए, कला आत्म-अभिव्यक्ति का एक शक्तिशाली रूप है। यह एक ऐसा कोल है जो हमें अपने आंतरिक विचारों और भावनाओं को सुंदर और अनोखे तरीके से व्यक्त करने की अनुमति देता है।

—प्रीति

विशिष्ट व्यक्तित्व

चित्रा मुद्गल

चित्रा मुद्गल बहुविधा एवं बहु विषय पर सशक्त लेखन के लिए जानी जाती हैं। उनके उपन्यास न केवल मौलिक हैं अपितु नई दृष्टि से विभिन्न विषयों पर एक गहन अनुशीलन हैं। उनकी विभिन्न विधाओं के अंतर्गत जो रचनाएँ साहित्य जगत को प्राप्त हुई हैं उससे न केवल साहित्य जगत समृद्ध हुआ है अपितु विकासशील समाज की विभिन्न विसंगतियों पर एक श्रेष्ठ अनुशीलन भी सामने आया है।

प्रगतिशील विचारधारा के साथ उन्होंने जो स्पष्ट किया है वो उनकी रचनाओं को कालजयी बनाता है। उनके व्यक्तित्व और कृतित्व का इस अंक में प्रकाश डालने का छोटा सा प्रयास किया गया है।

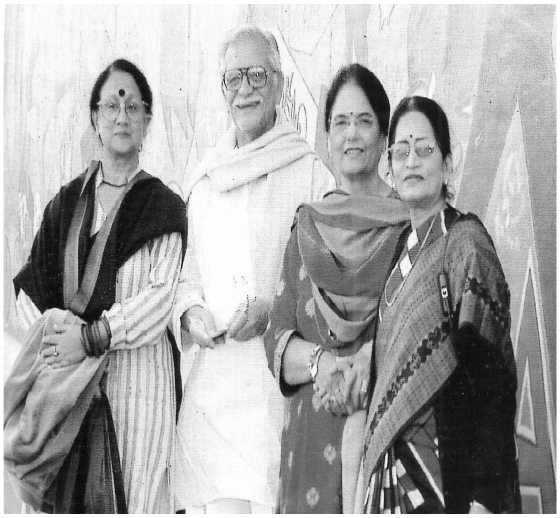

व्यास सम्मान
आयोजक
व्यास सम्मान

SAKHA
KALPANA
MTNL

औरत के वजूद से जुड़े सवालों का दहकता सुलगता दस्तावेज

डॉ. शिव कुमार मिश्र

प्रेम 'आवा' सुपरिचित कथा-लेखिका चित्रा मुद्‌गल का नया उपन्यास है। बड़े आकार का एक विचारोत्तेजक उपन्यास। कथ्य और रचना-शिल्प दोनों आयामों पर बीसवीं सदी के आखिरी दशक में सामने आए कुछ महत्वपूर्ण उपन्यासों की कड़ी में उसे एक सार्थक इजाफा माने तथा नारी-लेखन की ऊर्जा और शक्ति का एक और प्रमाण, तो अतिकथन नहीं होगा।

उपन्यास की भूमिका से लेखिका ने उसके जन्म की जो कथा कही है, उससे उपन्यास के आत्मकथात्मक होने का भ्रम पैदा होता है। लेकिन वास्तविकता यह है कि उपन्यास आत्मकथात्मक नहीं है। जैसा कि वृहत्तर जीवन-संदर्भों पर केंद्रित उपन्यासों में होता है इस उपन्यास में भी, लेखिका ने अपने जिए-भोगे समय तथा उसमें उसके स्वानुभूत के साथ, ऐसा भी बहुत कुछ, उसी की तरह हलके-गहरे अक्सों को लिए मौजूद है, जिसे दुनिया जहान तथा समाज के अपने बारीक पर्यवेक्षण के चलते लेखिका ने अर्जित किया है। यह स्वानुभूत और अर्जित, उपन्यास की बुनावट तथा सर्जन-प्रक्रिया में घुल-पचकर इस तरह एकमेव हो गया है कि उसे इस तरह पहचानना कि उसमें स्वानुभूत और इतना अर्जित है, बहुत कठिन है। रचना शिल्प के ऐसे संकुल प्रयोग पहले भी हिंदी उपन्यास में जब-तब हुए हैं, मसलन जैनेन्द्र कुमार के त्यागपत्र उपन्यास में, अतएव उपन्यास को रचना-शिल्प की इसी जमीन पर देखना उचित है। वास्तविक जीवन में किसी समय बंबई के श्रमिक आंदोलन के एक ख्यात नेता डॉ. दत्ता सामंत का नाम स्वतः भूमिका में लेकर चित्रा मुद्‌गल ने स्पष्ट कर दिया है कि उपन्यास में उनके कुछ अक्स कुछ आयामों पर हो सकते हैं, अन्यथा उपन्यास के पात्रों को वास्तविक जीवन के लोगों से जोड़कर देखने की कतई जरूरत नहीं है।

उपन्यास की भूमिका में लेखिका के वक्तव्य के अलावा, उपन्यास के ब्लर्व में भी उपन्यास के महत्व के बारे में कुछ सूचना दी गई है। इन्हें मिलाकर पढ़ने से उपन्यास को लेकर एक अन्य भ्रम की भी गुंजाइश बढ़ती है। यह भ्रम उपन्यास के श्रमिक आंदोलन से जुड़े होने को लेकर बनता है और इसके लिए अवकाश भी दिया गया है। सामान्यतः श्रमिक आंदोलन न सही, बंबई के सन् उन्नीस सौ साठ के दशक के डॉ. दत्ता सामंत के नेतृत्व में चलने वाले श्रमिक आंदोलन, उसकी विसंगतियां, अंतर्विरोधों और उसके भटकाव की तमाम विशद चर्चा के बावजूद, जिसमें भूमिका के अनुसार लेखिका की भी अपनी सीमित और अल्पकालीन भागीदारी रही है। उपन्यास श्रमिक आंदोलन की टाइप गाथा या प्रतिनिधि रचना नहीं बन सका है। संभव है, लेखिका की मनोकांक्षा उसे ऐसा उपन्यास बनाने की हो, किंतु एक तो उसके लिए जरूरी तमाम बातों के अभाव ने, दूसरे स्वतः मनोकांक्षा तथा मनोगतता के बावजूद लेखिका की मूलवर्ती संवेदना के अपने गहरे दबाव के चलते ऐसा नहीं हो पाया है। लेखिका की मूलवर्ती संवेदना उसकी मनोकांक्षा का अतिक्रमण करते हुए उसे एक ऐसे गलियारे की ओर ले जाने में समर्थ हो गई है जो श्रमिक आंदोलन की तुलना में उसका ज्यादा अनुभूत और जाना-बूझा है। गहरे जाकर देखें तो उपन्यास में श्रमिक आंदोलन से जुड़े महावृत्तांत के भीतर भी लेखिका की यही मूलवर्ती संवेदनात्मक संसक्ति ज्यादा उजागर हुई है, बजाय श्रमिक आंदोलन और मजदूर वर्ग के हित और सरोकार। जिस दूसरे गलियारे में लेखिका गई है

उससे हमारा आशय मौजूदा समाज में औरत की स्थिति, उसकी नियति तथा उसके वजूद से जुड़े उन सरोकारों और सवालों से है जो उपन्यास की श्रमिक-आंदोलन से जुड़ी कथा में भी और उससे इतर दूसरे गलियारे के कथा-प्रवाह में भी बड़ी सावधानी, पूरे रचनात्मक मनोयोग के साथ और गहरी मानवीय चिंता से युक्त होकर बुने गए है तथा विमर्श के धरातल पर उधेड़े और खोले भी गए हैं। लेखिका, चूंकि खुद एक स्त्री है, अतएव उसके मूलवर्ती संवेदनात्मक उद्देश्य का स्त्री के हक में या उसकी तरफ ढल जाना स्वाभाविक है। विसंगतियां, अंतर्विरोध और भटकाव तो उसे उस दौर के सिद्धांतों तथा विचारधारा विहीन, ठेठ लाभ-लोभ प्रेरित व्यक्तिवादी नेतृत्व वाले श्रमिक आंदोलन में दिखाई पड़ने ही थे, सो वे दिखाई भी पड़े, परंतु जिस बात ने उसे भीतर तक मथते हुए डॉ. दत्ता सामंत और 'कामगार आघाड़ी' से अपना नाता तोड़ने को विवश कर दिया, उसका असली संबंध औरत के स्त्रीत्व पर की गई चोट, उसके सम्मान पर किया जाने वाला आघात था। विपथित श्रमिक-आंदोलनों में माफिया गिरोहों की आमद मामूली बात है, लेखिका को जिस बात से सबसे अधिक क्लेश हुआ, वह हत्या के पहले मीरा ताई का निर्वसन किया जाना, उनके औरतपन की अवमानना थी। उपन्यास लिखने का बीज उसके अवचेतन में इसी घटना ने डाला। चित्रा मुद्‌गल ने सवाल किया है—स्त्री की क्षमता को देह से ऊपर उठकर स्वीकार न करने वाले रूढ़-रुग्ण समाज को बोध कराना आखिर किन कंधों का दायित्व होगा?

बावजूद इसके कि उपन्यास में औरत अपने वजूद से जुड़े सारे अहम सवालों के साथ केंद्र में है, उपन्यास में श्रमिक आंदोलन से जुड़ा जो कुछ भी रचा-सिरजा जाकर सामने आया है उसके महत्व को नजरअंदाज नहीं किया जा सकता। पूरे तौर से न सही, काफी कुछ दूर तक चित्रा मुद्‌गल ने उन सीमाओं और अवरोधों से आगे जाने की साहसपूर्ण कोशिश की है जो नारी-लेखन और नारी-केंद्रित लेखन, दोनों को, औरत की जिंदगी से जुड़े सवालों से आगे नहीं जाने देते। जिस तरह 'महाभोज' उपन्यास में मन्नू भंडारी ने नक्सलवाद के दमन की आड़ में व्यवस्था की अमानवीयता का पर्दाफाश किया है उसी तरह चित्रा मुद्‌गल ने भी इस उपन्यास में जिंदगी को उसके बड़े फैलाव में, उसके कुछ उन पहलुओं के साथ देखने-पहचानने की कोशिश की है, हिंदी उपन्यास की सुदीर्घ परंपरा में जो या तो उपेक्षित रहे हैं, या गाहे-बगाहे किसी रचनाकार की दृष्टि उन पर पड़ी भी है, तो भी वे हाशिए की चीज से ज्यादा अहमियत नहीं पा सके। स्वाभाविक है कि मेरा इशारा यहाँ औद्योगिक मजदूर वर्ग के

जीवन-संदर्भों और जीवन-संघर्षों के चित्रण की ओर है जिन पर हिंदी में बहुत ही कम लिखा गया है। एक स्त्री होते हुए चित्रा मुद्‌गल ने औद्योगिक मजदूर वर्ग के जीवन की समस्याओं और सवालों को विशद रूप में देखा और चित्रित किया, यह तथ्य उनके रचनात्मक तथा मानवीय सरोकारों के बड़े दायरे का साक्ष्य तो देता ही है।

आंदोलन का एक भरा-पूरा आख्यान उपन्यास में है। इस आख्यान को एक रचनात्मक अनुभव के रूप में बदलने वाली कुछ उपकथाएँ तथा तमाम चरित्र भी इस उपन्यास में हैं जो, जैसा कि हम कह चुके हैं भले ही उसे श्रमिक आंदोलन की 'टाइप' गाथा न बना पाए हों, सन् साठ के दशक के बंबई के विपथित श्रमिक आंदोलन के सजीव साक्ष्य तो उसमें है ही। बंबई में श्रमिक आंदोलनों का एक गरिमामय अतीत रहा है। उनकी अपनी शानदार उपलब्धियाँ रही हैं। देश के श्रमिक आंदोलनों में चित्रित साठ के दशक का श्रमिक आंदोलन एक त्रासद विडंबना ही माना जाएगा, उसकी शानदार ऐतिहासिक उपलब्धियों का एक दयनीय विपर्यय। जिस आंदोलन को चित्रा मुद्‌गल ने बंबई में देखा और जिया, उसके इतिहास के संदर्भ में उनका क्षुब्ध होकर यह पूछना कि आजादी के बाद उसमें यह भटकाव और विघटन कैसे और क्योंकर आया, कैसे उसकी उपलब्धियां झुठलाई गईं, बहुत जायज और स्वाभाविक है। वस्तुतः यह सात्विक विक्षोभ ही है जिसके चलते पूरी वस्तुनिष्ठता तथा तटस्थता उन्होंने उसे उधेड़ा और उसके अंतर्विरोधों तथा विसंगतियों पर चोट की है। देवीशंकर पांडे को जिस रूप में लेखिका ने प्रस्तुत किया है वे श्रमिक आंदोलन के पक्षाघातग्रस्त वर्तमान हैं, उनके अलावा, उससे जुड़े शेष चरित्र जो उनके इस पक्षाघात को सजीव करते हैं, उनमें कुछ आयामों पर डॉ. दत्ता सामंत की याद ताजा करने वाले अन्ना साहेब, उनकी सहयोगी बिमला ताई, युवा दलित मजदूर कार्यकर्ता पवार तथा देवीशंकर पांडे की बेटी नमिता पांडे हैं।

चित्रा मुद्‌गल ने निहायत वस्तुनिष्ठता से, रचनात्मक धरातल पर इन चरित्रों के क्रियाकलापों को उजागर किया है। प्रायः इनके क्रियाकलापों से, जो सतह पर उद्‌भासित होता है, यथार्थ वह नहीं, यथार्थ वह है जो सबके समक्ष उद्‌भासित नहीं है, परंतु जिसे लेखिका अनेक माध्यमों में रेखांकित करती है। अन्ना साहेब की असलियत अपनी बेटी-तुल्य नमिता पांडे के साथ गए उनके विकृत मानव के यौन दुराचार से उजागर होती है, पवार दलित होने की कुंठा और अपनी महत्वाकांक्षा से ग्रस्त है, बिमला ताई का सच उनके नाटकीय क्रियाकलापों की आड़ से पवार उजागर करता है और नमिता पांडे मजदूर आंदोलन से जुड़ी होने और मजदूर की बेटी होने के बावजूद अपनी निम्नमध्यवर्गीय मनोभूमि के साथ सामने आती हैं जिसका साक्ष्य उपरले वर्गों की लड़कियों के साथ उसकी अभिन्न मैत्री और उनके जैसा जीवन जीने की उसकी हवस देते हैं। मजदूर आंदोलन की विसंगतियां और अंतर्विरोधों के मूल में, उसके भटकाव के कारणों में स्रोत रूप में यही सब कुछ है, जिसे पहचानने और उजागर करने में चित्रा मुद्‌गल ने कोई गलती नहीं की है। अपनी महत्वाकांक्षाओं और कुंठाओं के बावजूद पवार के रूप में उन्होंने एक सजीव और पुख्ता मजदूर चरित्र देने की कोशिश की है जो अन्ना साहेब ही नहीं, उनके नेतृत्व में चलने वाले मजदूर आंदोलन और सहयोगियों का मुंहफट और खरा व्याख्याता है। वह जिस रूप में उनकी कथनी और करनी, उनकी सोच और उनके काम करने के तौर-तरीकों को उधेड़ता है, उनके द्वित्व को उजागर करता है, वह प्रभावशाली और बोधक तो है ही, मजदूर आंदोलन के भटकाव का साक्ष्य भी है। वह ऐसा चरित्र है जो खुद अपने को भी उधेड़ने में परहेज नहीं करता, नमिता पांडे को भी उसका अपना असली सच निमर्मता के साथ बताने का साहस रखता है। सजीव और दिलचस्प चरित्र है पवार का। कुछ उदाहरण देखें—''मैं अब आदमी की रणनीति से अपरिचित नहीं। यह भी जानता हूँ कि उस रिक्त स्थान पर अचानक एक दिन तुम्हारी नियुक्ति अकारण नहीं थी।... दरअसल उनका कूट उद्देश्य था कि तुम पर असाक्त होकर मैं आघाड़ी के क्रियाकलाप से निष्क्रिय हो जाऊं, या महत्वाकांक्षा

खो दूं। ताकि संगठन में मेरा बढ़ता वर्चस्व स्वयं छीन लें।''

''मुझे आज तक यह प्रश्न मथे हुए हैं कि शब्दों में प्राण फूंक देने की कला में सिद्धहस्त कलावंत अन्ना साहेब पिछले बीस वर्षों से श्रमिकों की मुहिम लड़ते हुए उनमें आत्मचेतना क्यों विकसित नहीं कर पाए।...कभी लगता है, सोद्देश्य अन्ना साहेब ने श्रमिकों में चेतना पिरोने के बजाय उन्हें चेतना संपन्न आत्मबली व्यक्तित्व के भरोसे निर्भर बने रहने का पाठ अधिक पढ़ाया। क्यों? क्योंकि निर्भरता से मजदूर वर्ग की मुक्ति का अर्थ होगा उनके मध्य अपनी अलौकिक छवि क्षीण करना।''(नमिता पांडे से अन्ना साहेब के बारे में पवार)।

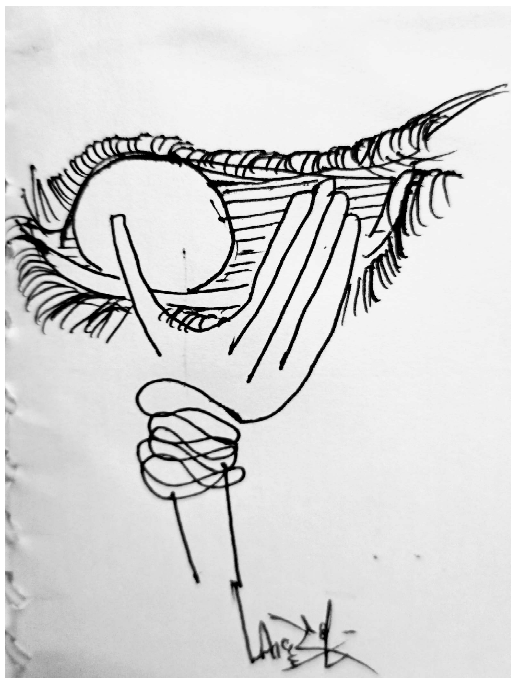

''वो हनुमान टेकरी वाली विशाल सभा याद है तुम्हें। मद्यपान के विरुद्ध कैसा ओजस्वी भाषण था उनका... कितने भोले हैं वे। बिमला बेन की तलौंड़ से सर्वथा अनभिज्ञ। नहीं जानते, भरी सभाओं में मुट्ठियां उछाल-उछालकर मद्यपान के जानलेवा दुष्परिणामों से श्रमिकों को चेताने वाली बिमला बेन गई रात थककर चूर हो जब घर पहुंचती हैं अंग्रेजी स्काच की बोतल हलक से नीचे उतारे बिना पलक नहीं झपकाती। (बिमला बेन के बारे में नमिता पांडे से पवार।)

आइए, अब उपन्यास के मूलवर्ती संवेदनात्मक उद्देश्य की तरफ चलें, जिसके नाते उपन्यास श्रमिक आंदोलन की 'टाइप' गाथा न बनकर, औरत की जिंदगी से जुड़े सवालों की ओर मुड़ गया है और उस कहानी को कहने लग गया है जो अपने-अपने तरीके से सदियों सहस्राब्दियों से कही और लिखी जा रही है और अब नई सदी के विमर्श में भी केंद्रीय बिंदु बनकर मौजूद है। चित्रा जी ने स्त्री को देह से ऊपर उठकर पहचानने की बात की है और इस उपन्यास में उसे एक संकल्प और प्रतिज्ञा के रूप में फिर उस पुरुष समाज के सामने रखने का दायित्व ओढ़ा है, जिसके लिए औरत परंपरा से मोहक और लुभावने हर कीमत पर उस व्यक्ति के लिए बनाए और बचाए रखनी है जो धर्म और धर्मशास्त्र-विहित नियमों के तहत उसे पति के रूप में प्राप्त हुआ है। राम ने सीता का परित्याग देह के धरातल पर उठने वाली शंकाओं और प्रवाहों के तहत किया, द्रौपदी को भी उसकी देह के स्तर पर ही 'महाभारत' में अपमानित किया गया, और गौतम बुद्ध ने देह के धरातल पर ही औरत को पहचानते हुए संघ में उसके प्रवेश को पसंद नहीं किया। उस पर एतराज उठाया था। सच कहा जाए तो हर धर्म और हर समाज में एक नरक रचा गया है जिसमें जीने को वह अभिशप्त है। आदर्श, मर्यादाएँ और मूल्य सबको सहेजे रहकर जीवन की आखिरी साँस तक बिना उफ किए चलने और चलते रहने की जिम्मेदारी उसी के कंधों पर डाली गई है और तनिक भी गफलत, जरा-सी भी गलती की सजा का कड़े से कड़ा विधान भी महज उसी के लिए किया गया है। औरत के रूप में जन्म लेना ही एक सजा है, जो तमाम धर्म और धर्मशास्त्र उसे सदियों सदियों से दे रहे हैं। प्राण-जगत में अकेली औरत है जिसे मारने और खत्म कर देने की साजिशें उसके पैदा होने से पहले से ही शुरू हो जाती हैं। चित्रा मुद्गल औरत होने के नाते औरत की इस नियति को जानती समझती हैं। 'आवां' में इसी नाते उन्होंने उसके वजूद से जुड़े सवालों को तरजीह दी है। परंतु एक समझदार, यथार्थनिष्ठ

लेखिका होने के नाते, उन्होंने यह काम बिना किसी जिहादी जोश के बड़ी सधी हुई कलम से, अपनी मनोगत आकांक्षाओं की बजाय यथार्थ के तकाजों के अनुरूप संयम और संतुलन के साथ किया है। पश्चिम का नारीवाद और उसकी जो अनुगूंजें हमारे यहाँ भी सुनाई पड़ रही हैं, उसके दबाव में आकर नहीं, जिस दबाव ने हमारे यहाँ भी नारी-लेखन के एक अहम हिस्से को भटकाया और गुमराह किया है। पूरी दायित्व चेतना के साथ, खतरों के पूरे अहसास के साथ उन्होंने औरत के इस नरक को, उधेड़ा और उजागर किया है और औरत की इस नरक से मुक्ति की बात, देह से ऊपर उसे पहचाने जाने का सवाल तेज-तर्रार नारेबाजी करके नहीं, मुक्ति की इस राह के सारे अवरोधों, परंपरा से चली आ रही संस्कारबद्धता, गुलामी के सुख के सम्मोहन में फंसी औरत की जिंदगी का अपनी विडंबनाओं की पूरी समझ के साथ ऐसे चरित्रों को रच और तामझाम के साथ उघाड़ते और बेनकाब करते हैं। देखने की बात है कि इतने बड़े आकार के उपन्यास में एक भी चरित्र ऐसा नहीं है जो लेखिका ने अपने मनोगत आग्रहों के अनुरूप गढ़कर प्रस्तुत किया हो, जो नारी मुक्ति और नारी अस्मिता के सवाल को हाथ में विद्रोह की मशाल लेकर आनन-फानन में हल कर देने की जिहादी मानसिकता से चला हो, और उस मुक्ति को औरत मात्र के लिए मुहैया कराकर कृतार्थ हो गया हो। कुछ चरित्र हैं परंतु वे संघर्ष करते हैं, विसंगतियों से जूझते-टकराते हैं, अपनी ऊर्जा में क्षण भर के लिए कौंधते हैं, परंतु अंततः अपनी कौंध की स्मृतियां छोड़ नरक के भयावह अंधियारे में गुम हो जाते हैं। मसलन सुनंदा। बजाय इसके उपन्यास में हैं स्मिताएँ, अपने मुक्त होने की आत्मछलना में विचार और वाणी की मर्यादाएँ तोड़ते हुए भी, अराजक प्रतिहिंसाएँ करते हुए भी अपने वहशी पिता की दहशत की छाया में जीती हुई स्मिताएँ। किसी पुरुष के आश्रय को पा सकने और न पा सकने की आशंका में घुटती परेशान होती, स्मिताएं। अपना सब कुछ लुटाकर और हारकर जिंदगी से समझौता करने को बाध्य गौतमियाँ। मनोरोग से ग्रस्त ममताएँ, और सबसे ऊपर उपन्यास की सबसे प्रधान नारी पात्र नमिता पांडे, यह उपन्यास की वह प्रमुख नारी पात्र है जो दस साल की उम्र में अपने मौसा की विकृत यौन मानसिकता का शिकार बनती है और उसके बाद मजदूर आंदोलन से जुड़ने के बाद नवयुवती के रूप में अपने नेता, पिता नहीं, परंतु पिता-तुल्य अन्ना साहेब के विकृत यौनाचार के दायरे में आती है। बालिका के रूप में विरोध कर सकने की असहायता के बावजूद अपनी मां से सब कुछ बताने पर भी जबरन अपनी माँ के द्वारा, एक औरत के द्वारा चुप करा दी जाती है और नवयुवती के रूप में, जागरूक और सजग होते हुए भी निम्नवर्गीय संस्कारबद्धता और दब्बूपन के चलते न केवल उस विकृत यौनाचार पर चुप रहती है, आक्रांत होने पर भी आक्रांता के खिलाफ उठ नहीं पाती। अपनी अंतरंग सहेलियों, यहाँ तक कि मैडम वासवानी जैसी महिला से मैं जिसे वह अपना उद्धारक समझने की मनोदशा में थी, अपनी पीड़ा बाँटकर उसकी सहानुभूति अर्जित करने का प्रयास करती है। चित्रा मुद्‌गल ने नमिता पांडे को किसी भी रूप में अपना प्रवक्ता नहीं बनाया है। उन्होंने अनेक स्तरों पर अनेक चरित्रों के माध्यम से जब-तब अपने मन की बातें कहीं हैं परंतु कोई भी चरित्र उनका अपना प्रतिनिधि बनकर उपन्यास में नहीं आया। जिन नारी चरित्रों को उन्होंने उपन्यास में उभारा है उन्हें यह बताने के लिए उभारा है कि स्त्री की मुक्ति का सवाल उसे देह से ऊपर उठकर पहचाने जाने का सवाल, एक मानुषी के रूप में औरत को स्वीकार करने का सवाल आज भी कितना जटिल है। एक आवां है जिसमें औरत तप और तप रही है चिटख और बिखर रही है, भस्म हो रही है, राख बन रही है, और कहीं कुछ आयामों पर किसी नीलम, किसी सुनंदा और किसी किशोरीबाई की तरह पक और मजबूत भी हो रही है, परंतु उसका यह पकना और मजबूत होना भी स्त्री को सार्वत्रिक मुक्ति का, उसके अपनी पहचान पा लेने का प्रमाण नहीं, बस इतनी ही दूर तक सार्थक और प्रेरक है कि अंधेरा शाश्वत नहीं, स्याही का एक पहाड़ है। रमेश रंजक के शब्दों में, जिसके पत्थर तराशे जाते

हैं...कभी उसके पार रोशनी जरूर मिलेगी। यह थोथा आशावाद नहीं, जो कुछ खौल और उबल रहा है उसके बरक्स आगे का, महज एक अनुमान और जरूरी आगाज़ है।

चित्रा मुद्‌गल यह भी जानती हैं कि औरत की यह लड़ाई इकहरी लड़ाई नहीं है वह बहुस्तरीय और जटिल लड़ाई है। इस लड़ाई में उसके प्रतिपक्ष में पुरुष, उसका परंपरित दंभ, उसकी पुरुष मानसिकता और देह के धरातल पर ही उसे पहचानने और पाने की उसकी जैविक हवस ही नहीं, पुरुष वर्चस्व वाला यह समाज ही नहीं, इस लड़ाई में उसकी सबसे सशक्त प्रतिद्वंद्वी औरत खुद है। गुलामी को एक सुख की तरह भोगती औरत, लुभावने और मोहक विशेषणों से ठगी हुई औरत, सदियों के संस्कारों से जड़ी-मढ़ी औरत, उन्हें मूल्य और आदर्शों के रूप में छाती से चिपकाए हुए औरत और जब औरत ही सामने हो, तो लड़ाई कितनी कठिन होगी अनुमान किया जा सकता है। इस भीतरी लड़ाई को औरत को खुद अपने से लड़ना है, उसे अपनी आत्ममुग्धता और आत्मछलना से लड़ना है अपने भीतर विद्यमान सदियों के संस्कारबद्धता से लड़ना है। उसका कोई तात्कालिक हल नहीं है। तात्कालिक हल देना भ्रामक भी होगा और खुद औरत को धोखा देना होगा। चित्रा मुद्‌गल ने इसी नाते उपन्यास में कोई समाधान देने की कोशिश नहीं की है, जो जायज भी है। उन्होंने सवाल को पूरी गंभीरता से, उसके सारे कोणों के साथ और उसके हल को सारी मुश्किलों के साथ संवेदना की पूरी गहराई और निष्ठा के साथ रख भर दिया है। यही उपन्यास में उनकी सफलता और उनके रचनाकार की सिद्धि भी है। इतने बड़े आयाम पर इन सवालों को उठाने वाली शायद वे पहली रचनाकार हैं, औरत, भोक्ता औरत, उसे रचनो और पेश करने वाली औरत। जितने खुले अंदाज में, जितने निष्कुंठ भाव से उन्होंने इस उपन्यास में औरत को पेश किया है उसे लेकर परंपरित और रूढ़ नैतिकतावादी नाक भौं सिकोड़ सकते हैं परंतु औरत का इस तरह इस रूप में बोलना-बतियाना ऐसे उपन्यास में जरूरी था। औरत को सरेआम नंगा करने वाला दंभी पुरुष अपने किए को अपने पौरुष के रूप में गौरवान्वित करता है परंतु औरत जब अपने को खुद नंगा करती है तो परंपरा गवाह है वह नैतिकता की दलील देते हुए उसे लांछित भर करता आया है। चित्रा मुद्‌गल उपन्यास को बीसवीं सदी के आखिरी दशक के महत्वपूर्ण उपन्यासों की कड़ी में ही नहीं, नई सदी के नारी-विमर्श के भी महत्वपूर्ण उपन्यास के रूप में मान्य बनाती हैं, उस विमर्श के लिए एक आधार-उपन्यास का दर्जा देती है। उपन्यास की कथा के जिन दो प्रवाहों की चर्चा हमने पहले की है उनका संबंध एक दूसरे का विलोम, परंतु औरत के लिए समान रूप से नरक, दो दुनियाओं से है। एक है मजदूरों के बीच की दुनिया जिसमें सुनंदा, किशोरी बाई, अनीसा और नमिता पांडे जैसी औरतें हैं, दूसरी है भद्र लोकों की दुनिया जिसमें स्मिताएँ, गौतमियाँ, निर्मलाएँ, अंजना वासवानी की तरह पुरुषों की दलाल ढेर सारी मैडमें और मजदूर जगत से आई नमिता पांडे भी है। यह नई दुनिया के सारे ऐशोआराम को मुहैया करने वाली दुनिया है, उपभोक्तावादी सुखभोगवाद, जो वस्तुतः पशुवाद है, उसके तकाजों वाली दुनिया। मैडम वासवानी से अनायास हुई भेंट नमिता को इस दुनिया में पहुँचा देती है और शुरू होता है औरत के लिए गढ़े नए नरक का एक और आख्यान। नमिता धरती से उठाकर यहाँ एकदम आसमान में पहुंचा दी जाती है। अपने इस नरक से अनजानी, उसके सम्मोहन में डूबी अपने भाग्य को सराहते हुए। उसका मॉडल बनना, संजय कनोई से उसकी भेंट। इस करोड़पति व्यापारी का उस पर फेंका गया सम्मोहन जाल, अपनी कोख में संजय के बीज का अहसास, संजय के सान्निध्य में भावी जीवन की रंगीनियों के सपने, तमाम कुछ घटित होता है, कथा के इस प्रवाह में नमिता के साथ। किंतु अनायास हुआ उसका गर्भपात उस नरक की सारी भयावहता को उसके समक्ष उद्‌घाटित कर देता है, जिसके मोहक अहसासों में वह अभी तक डूबी हुई थी। संजय फोन पर बौखलाए स्वरों में उससे कहता है—''जानती हो, बाप बनने के लिए मैंने तुम्हारे ऊपर कितना खर्च किया। उस मामूली औरत अंजना

वासवानी की क्या औकात थी कि तुम्हारे ऊपर पानी की तरह पैसा बहा सके। उसका जिम्मा सिर्फ इतना भर था कि वह पिता बनने में मेरी मदद करे, और सौदे के मुताबिक अपना कमीशन खाए... मैं रंडियों से बाप नहीं बनना चाहता था, मुझे नहीं गवारा था ऐसी किराए की कोख। मुझे सिर्फ उस लड़की से औलाद चाहिए थी, जो पेशेवर न हो, पवित्र हो, जो मुझसे प्रेम कर सके। सिर्फ मेरे लिए माँ बने।'' वह नमिता को अपनी रखैल भर का दर्जा देना चाहता है।

नमिता पांडे जिसे अपने यथार्थ आग्रहों के तहत अभी तक चित्रा मुद्गल ने रचा भर था गढ़ा नहीं था, इस बिंदु पर उनके भीतर का विचारधारा से परिपुष्ट विवेक उनकी कलम को साधता है, यथार्थ से उन्हें पराङ्मुख करने के लिए नहीं, यथार्थ में रचनात्मक हस्तक्षेप करते हुए उसे उसके सही विजन की ओर चलने देने के लिए और वे नमिता को स्थितियों के प्रवाह में प्रकृतिवाद के रचना-शिल्प के तहत बहने देने के लिए नहीं, उसे यथार्थवाद के विचारधारात्मक संबल के सहारे परिस्थितियों के प्रवाह से उल्टा उस दिशा की ओर जाने को उत्प्रेरित करती हैं, जिस पर अपने निम्नमध्यवर्गीय संस्कारों के चलते अब तक वह नहीं चल पाई थी। यथार्थ अनुभवों का अहसास और दंश जिसे अब उसी दिशा में चलने को पक्का करता है। एक अंधी सुरंग की जिस अनिश्चित अंतहीन यात्रा में वह अब तक थी, यह नई दिशा उसे उस रास्ते पर लाकर खड़ा करता है जो संभवतः उसका सही रास्ता था, पहले भी और अब भी। वह सारे समझौते और सारी सम्मोहनाओं से उबरकर वापस लौटती है बंबई। अपनी क्रूर जाहिल, और दूसरों की कृपा पर जीने वाली लोभी माँ के नए फ्लैट में नहीं, शिवकुमार देवी की चाल में अपनी सही मां किशोरी बाई के पास। अपनी बहन सुनंदा की क्षतिपूर्ति के रूप में, कि शायद वहाँ से अपने गंतव्य को ही नहीं करोड़ो-करोड़ उन औरतों के लिए भी उस गंतव्य को वह पा सके जो उसका और उन सबका सही गंतव्य है। पाश की कविता को चित्रा देने यहाँ उद्धृत किया है। एक भावुकता के चलते, एक कामरेडाना अंदाज भी उन्होंने अपनाया है यहाँ, परंतु यह उपक्रम इसलिए गैर-जरूरी नहीं लगता कि जिंदगी के नरक से जूझने-टकराने के लिए कभी-कभार क्रांतिधर्मिता की रोमानियत भी सहारा देती है। क्रांतिधर्मी रोमानी नारों और उनके सम्मोहक प्रभावों ने बहुत बार जिंदगी के भद्दे नक्शों को मिटाते हुए आदमी की नियति को नई रोशनियाँ की ओर मोड़ा है। नरक की यातना भोगने वालों में इतना रोमान और इतना आदर्शवाद तो बचा ही रहना चाहिए। पाश के शब्द लें तो आदमी के सपनों के मरने से ज्यादा खतरनाक और कोई मौत नहीं होती। उपन्यास के कथा-विन्यास में जरूर चित्रा जी ने अतिरिक्त स्वतंत्रता ली है। बेहतर होता कि वे उपन्यास में एक ही संवेदनात्मक बिन्दु पर केंद्रित रहतीं, दो कथाएँ और दो सरोकारों को लेकर कथा में उन्हें विन्यस्त करने के मोह से बचतीं। दोनों कथाओं में ओवर लैपिंग है और वे बहुत जगह गड्ड-मड्ड भी हुई हैं। फ्लैशबैक में, किसी समय भी वे कहीं से कथा के सूत्र उठा लेती हैं और सोचते-सोचते बहुत कुछ कह जाती है। अध्यायों में कथा का विन्यास इसी नाते असंतुलित हो उठा है। वस्तुतः उनके पास कहने को इतना कुछ रहा है कि वह अनायास सामने आ जाता रहा है। कथा की बुनावट को इतना गझिन और इतना संकुल होने से बचाया जा सकता था। एक बड़े और अर्थगर्भ उपन्यास में ऐसा होने की गुंजाइश बनती भी है। परंतु यह कोई ऐसी बात नहीं बन पाई है कि उपन्यास अपने मूलवर्ती संवेदनात्मक उद्देश्य को सफलता के साथ सामने न ला सका हो। वह उपन्यास से अनाहत अपने पूरे प्रभाव के साथ आया है।

जिस आवां को उपन्यास में लेखिका ने प्रस्तुत किया है वह सदियों से सुलग रहा है और आज भी उसकी आंच मद्धिम नहीं हुई है। 'आवां' हमारे समय की एक महत्वपूर्ण कथा उपलब्धि है जिसकी आंच नई सदी का नारी-विमर्श पूरी शिद्दत से अनुभव करेगा। बड़े रचनात्मक साहस के साथ सामने आने वाली इस किताब का हम दिल से स्वागत करते हैं।

सुलगते सत्य का दारुण दस्तावेज

विजयमोहन सिंह

सुपरिचित लेखिका चित्रा मुद्गल का दूसरा उपन्यास है आवां। पहला 'एक जमीन अपनी भी' था।

दोनों उपन्यासों में लंबे अंतराल के बावजूद एक प्रत्यक्ष संबंध या निरंतरता है। लेखिका ने निश्चित रूप से अपने लिए एक 'विशेष जमीन' चुनी है और इस उपन्यास को पढ़कर यह धारणा पुष्ट होती हैं कि इस जमीन पर न केवल वे अडिग रूप से खड़ी हैं और उसके चप्पे-चप्पे की प्रामाणिक जानकारी उन्हें है बल्कि उसके रचनात्मक रूपांतरण में भी वे अत्यंत कुशल हैं।

इस 'जमीन' से जुड़े अनुभवों का एक अद्भुत भंडार है उनके पास और साढ़े पांच सौ पृष्ठों के उपन्यास में वे एकनिष्ठ अवधान तथा गहन रचनात्मक लगाव के साथ उसकी परत-दर-परत खोलती चलती हैं। उपन्यास बंबई की ट्रेड यूनियनों और मजदूर संगठनों के जीवन संघर्ष को लेकर लिखा गया है। अन्ना साहब, विमला ताई, पवार, किशोरी बाई और स्वयं नमिता के पक्षाघात पीड़ित पिता (जो कभी मजदूर आंदोलन और संघर्ष में उसके सर्वोच्च नेता अन्ना साहब के 'दाहिने हाथ' कहे जाते थे), सभी मजदूर आंदोलन के अभिन्न अंग हैं। किंतु कथा के इस 'छिलके' या जाजिम को उठाकर देखें तो इस 'जमीन' के नीचे अनेक ऐसे तलगृह हैं जो कथा को नया आयाम तो देते ही हैं, उसकी जटिल बुनावट में अंतर्निहित एक ऐसी वास्तविकता का उद्घाटन करते हैं जिसका ताप उपन्यास के शीर्षक की सार्थकता को प्रमाणित करता है।

उपन्यास में मजदूर वर्ग हो, निम्न मध्यवर्गीय परिवार हो, वर्किंग वूमेन हों या 'मैडम' तथा संजय का जगमगाता उच्चवर्गीय स्फटिक परिवेश-इन सबमें एक ही केंद्रीत तत्व अंतर्निहित है : आधुनिक समाज में स्त्री की स्थिति, उसका संघर्ष, उसका शोषण, उसकी यातना तथा अंततः सरेआम उसे उत्पीड़ित तथा नग्न कर उसका 'वधू'। इसी 'आवां' या भट्ठी में स्त्री लगातार पक रही है। उपन्यास की संपूर्ण कथा इसी 'सुलगते सत्य' का मार्मिक और दारुण रचनात्मक दस्तावेज है। इस रूप में यह गहरे अर्थों में बेहद साफिस्टिकेटेड 'फेमिनिस्ट' उपन्यास है।

कथा के केंद्र में नमिता है जो नाम के अनुरूप प्रायः नमिता ही रहती हैः घर में कर्कशा और क्रूर माँ, बाहर का लोलुप पुरुष परिवेश। वह कभी बहुत सबल प्रतिरोध नहीं कर पाती। मजदूर आंदोलन के कीर्तिध्वज पितातुल्य अन्ना साहब की विकृत यौन क्रियाओं का भी वह तत्काल प्रतिरोध नहीं कर पाती। केवल उनसे मुक्त रहने का निर्णय लेती है। किंतु मुक्ति की यह 'चाह' उसे किस 'राह' पर ले जाती है? अयाचित तथा अपरिमित रूप से मेहरबान 'मैडम' और संजय के आरामगाह में। कथा का यह विडंबनात्मक पक्ष ही उसे अधिक मार्मिक बनाता है। किंतु लेखिका इस ट्रैजिक नियति के प्रति सजग है और वह नमिता को हर बार एक गलत मोड़ से वापस ले आती है। विकल्प की कई राहें हैं लेकिन अंततः जो विकल्प वह चुनती है वह किंचित अधिक 'रटोरिकल' किस्म की क्रांतिकारी विकल्प लग सकता है किंतु वह न तो अपवाद है और न 'बुद्धं शरणं गच्छामि' वाला विकल्प है। उपन्यास में प्रारंभ से नमिता के पक्षाघात पीड़ित पिता उसके आधार हैं। (यह आधार भी कितना निराधार है!) हर जगह से पीड़ित-प्रताड़ित हो वह उन्हीं की शरण में आती है जो किसी भांति स्लेट पर कुछ लिखकर ही उसे कोई सांत्वना या निर्देश दे सकते हैं। इस अपंग पिता की भूमिका अनायास ही पुरुष चरित्रों में केंद्रीय हो जाती है और बिना किसी आरोपण या लेखकीय प्रयास के ही एक प्रतीकात्मक उपस्थिति बन जाती है। पूरी कथा में एक 'पक्षाघात' है : मजदूर आंदोलनों, उनके अंतर्विरोधों, परस्पर कलह, ईर्ष्या तथा आपराधिक संगठनों के शिकार होने में, अपनी व्यक्तिगत महत्वाकांक्षाओं से पीड़ित उनकी कुत्सित मानसिकता में! यह एक व्यापक पक्षाघात है जिसका कोई निराकरण उपन्यास नहीं ढूँढ पाता। किसी भी उपन्यास अथवा कलाकृति के बाहर निरंतर उपस्थित आधुनिक जीवन के इस सर्वगासी पक्षाघात का कौन-सा निराकरण हो सकता

है? किंतु इसकी अनुषंगी उपकथाएं भी कम महत्वपूर्ण नहीं है : हर्षा, पवार, गौतमी, किशोरी बाई, सुनंदा, सोहिनी, किरपुर दुसाध–ये सभी पृथक द्वीप न होते हुए भी अपने व्यक्तित्व में विविध तथा विशिष्ट हैं। सभी दलित एक ही श्रेणी के हैं। आवश्यक नहीं कि वे स्त्री ही हों। पवार दलित है, उच्चकुल क्षत्रिय नहीं, उपन्यास इस तथ्य को विशेष रूप से रेखांकित करता है। इसलिए वह कटु-तिक्त, मुंहफट और बेबाक है–किंतु संभवतः कथा के सत्य के सर्वाधिक निकट और नमिता के भी। उसकी खुरदरी, प्रस्वेदयुक्त, श्रमसिक्त बलिष्ठ किंतु मलिन वसनों वाली तथा किंचित बनैली काया के प्रति नमिता में एक उद्दाम अनुरक्ति है जिसे वह अंत तक अनभिव्यक्त ही रखती है, किंतु जो अलक्षित नहीं रहता दलित पवार और नमिता का यह ठिठका हुआ संबंध अंत तक निर्लंबित ही रहता है। पवार अन्ना साहब का 'काउंटर पार्ट' है। उपन्यास का एक बेहद 'दिलचस्प चरित्र–एक 'रस्टिक कैरेक्टर!'

लेखिका के पास ब्योरेवार वर्णन क्षमता और भाषाई विविधता भी है : स्थानीय 'स्लैंग्स' से लेकर तत्सम संस्कृत निष्ठ शब्द समूह भी कम नहीं हैं। संवादों में पटकथा लेखन सी चुस्ती तथा वाकपुटता है। इससे भाषा में एक प्रवाह तो उत्पन्न होता ही है, उपन्यास में एक विरल पठनीय त्वरा भी आती है जो 'मुझे चांद चाहिए' के बाद किसी अन्य हिन्दी उपन्यास में देखी न गई। किंतु भाषा में आकर्षक ब्योरों तथा खानगी के बीच कुछ अनावश्यक शब्दों के प्रयोग किरकिरी पैदा करते हैंः बसाहट, खिजलाहट, परोसकं (वेटर के लिए प्रयुक्त)–ऐसे अनेक शब्द हैं जिन्हें या तो यथावत रखा जा सकता था या उनका उपयुक्त पर्याय ढूँढ़ा जा सकता था।

कई दृष्टियों से यह हिन्दी में आज का उपन्यास कहा जा सकता हैः आज का आदमी, आज की औरत, आज की जिंदगी! आखिर नमिता को ही न जाने कितने मोड़ों से गुजरना पड़ता हैः एक निम्नमध्यम वर्ग की दब्बू और दमित युवती से लेकर मजदूर संगठन की कार्यकर्ता, एक मॉडल, धनाढ्य उद्योगपति की प्रिया! ये सब आज की स्त्री के अनेक रूप हैं। किंतु इन सभी रूपों में वह अभिशप्त है–असुरक्षित तो वह निरंतर है ही। आखिर किस प्रकार वह 'पुरानी स्त्री' से पृथक या विकसित है, यह कहना कठिन है। संभवतः इसीलिए उपन्यास के केंद्र में एक निरंतर अथवा क्रमिक 'मृत्यु' है। यही वह 'आवां' है जिसमें से तप कर सभी सुगढ़ नहीं निकलते बल्कि अधिकांश जलकर भस्म हो जाते हैं।

उपन्यास में लेखिका ने कथा-सूत्रों की इतनी दिशाएँ खोल दी हैं कि प्रत्येक सूत्र एक नए पथ के अन्वेषण में जाता दिखाई देता है। विद्रूप, गलाजत, विकृति सड़ांध आदि की तलछट के साथ-साथ अत्यंत तरल, मोहक, कोमल और मानवीय तंतुओं को पूरी संरचना में इस प्रकार विन्यस्त कर लिया गया है कि हम इस प्रायः एक मुकम्मिल उपन्यास कहने का लोभ संवरण नहीं कर पाते।

उपन्यास की स्थितियों, ब्योरों और वर्णन पद्धति में कहीं-कहीं अतिव्याप्ति की प्रतीति हो सकती है–एक अतिरेकी वितान-विस्तार जिसे संपादित कर संतुलित तथा अधिक संगठित किया जा सकता था। घर-परिवार मजदूरों की बस्ती, उनका जीवन, उनके जीवन का उजाड़ प्रणयस्थल यहाँ तक कि अस्पताल के परिवेश का भी अद्‌भुत प्रामाणिक चित्रण जो चाक्षुण बिंब बनकर तीव्रता के साथ उतर जाते हैं–उन पर कभी-कभी लगता है कि उपन्यास आवश्यकता से अधिक देर तक टिका रहता है। (जैसे किसी प्रभावशाली फिल्म में कुछ दृश्यों पर कैमरा अधिक टिका रह जाए।)

नमिता भी इस अतिरेक का शिकार लगती है। उपन्यास के सभी पात्र उस पर मुग्ध हैं। स्त्रियाँ भी उसके चुंबकीय आकर्षण से बिंध जाती हैं। उपन्यास इस आकर्षण का कोई वस्तुपरक आधार नहीं निर्मित कर पाता। यानी ऐसा कोई 'विभावन व्यापार' नहीं बन पाता कि पाठक इस 'सरला' के दुर्दमनीय आकर्षण का 'जादू' समझ सके। मैडम, संजय, पवार, कैमरामैन से लेकर नौकर-चाकर और पचारिकाओं तथा निकट तथा सुदूर की सहेलियां भी जिस तत्परता से उसकी सहायता के लिए प्रस्तुत रहती हैं इसका कोई 'आब्जेक्टिव कोरिलेटिव' (वस्तुपरक सह-संबंध) तब बन पाता जब नमिता के व्यक्तित्व और अंतरंग से अधि सफलता के साथ परिचित कराया जाता। यदि नमिता की संघर्ष कथा ही उपन्यास की रीढ़ है तो उसके संघर्ष में यातना

का पूरा ताप नहीं है। उसकी यातना घर के भीतर तक ही सीमित है। घर के बाहर उसकी समस्याओं का समाधान उपेक्षाकृत शीघ्र ही हो जाता है। नमिता के व्यक्तित्व का

सबसे चौंकानेवाला पक्ष है उसका संजय के प्रति लगभग तत्काल समर्पण। एक ओर यदि वह कामगरों के संघर्ष और संगठनों में शामिल है, उनके शोषणतंत्र से पूरी तरह वाकिफ है, सुनंदा (जो एक नाटकीय चमत्कार से उसकी 'भगिनी' सिद्ध कर दी जाती है। यह एक 'फिल्मी फार्मूला' है जो उपन्यास का एक दुर्बल पक्ष है) के संघर्ष, उसकी दुखांत नियति से सुपरिचित है तो उसके तत्काल बाद किस मानसिकता के वशीभूत होकर वह संजय जैसे धनाढ्य व्यापारी की अंकशायिनी बनने में तनिक भी असुविधा या अपराधबोध का अनुभव नहीं करती? सुविधाओं की सीढ़ियां चढ़ने और ऐश्वर्य का उपयोग करने में वह अतिसामान्य युवती की तरह ही आचरण करती है। यह उसके चरित्र का ऐसा अंतर्विरोध या अंतराल है जो पाठक को असमंजस में डाल देता है।

लेकिन शायद एक सीमा के बाद लेखिका को भी ऐसा अनुभव होता है कि वह एक रचनात्मक 'डिवाइस' (कौशल) से उपन्यास के अंत में इसका परिहार कर लेती हैं। किसी भी रचना का अंत उसकी सबसे बड़ी कसौटी और परीक्षा दोनों होता है। उपन्यास के अंत में इन कई अंतर्विरोधी सूत्रों को जोड़ते हुए कथा को एक ऐसे बिंदु पर ले जाती हैं जिससे नमिता तो बच ही जाती है, उपन्यास की कथा भी अपनी मूल प्रतिज्ञा के विचलन से उबर जाती है : नमिता संजय के गर्भस्य शिशु की माँ है, संजय विवाहित है और नमिता की स्थिति एक 'अदर वूमन' की ही है या चाहें तो कह लें वह स्थूल अर्थ में संजय की 'रक्षिता' है। इसके आगे की तार्किक परिणति एक ही हो सकती थी की संजय का उससे विवाह हो जाए। किंतु एक नाटकीय प्रत्याशित घटना उपन्यास के पूरे कथा परिवेश को झकझोर कर तितर-बितर कर देती है और वह है अन्ना साहब की निर्मम हत्या की सूचनाः इस सूचना भर से नमिता को गर्भपात हो जाता है। यह गर्भपात नमिता को संजय के शिशु की माँ बनने से निजात तो दिलाता ही है कथा को भी एक बड़े बोझ से सहसा मुक्त कर देता है। नमिता लौट आती है अपने ऐश्वर्य भवन से और कथा एक आत्मघाती विचलन से। किंतु लौटना प्रायः एक पिच्छल भूमि की ओर ले जाता है। नमिता का इस विचलन के बाद जो प्रायश्चित प्रकरण है वह एक स्थूल क्रांतिधर्मी रूप ले लेता है। वह लौटती भी है कि किशोरी बाई के पास जो एक मजदूर मां भी है और नमिता की सौतेली माँ भी। उसे माँ के पास लौटना भी एक प्रायश्चित है और अब उसे किस मोर्चे पर होना है, इसकी ओर इंगिति भी! उपन्यास इस इंगिति के साथ समाप्त हुआ होता तो वह अधिक सोद्देश्य संकेत देता। मगर पाश की कविता के साथ अंत का आवेगपूर्ण निर्णय उपन्यास की गंभीर वयस्क तथा गहन संरचना को सपाट भूमि पर उतार लाता है।

चित्रा को समझने का एक प्रयास

शब्द कुमार

चित्रा को जानना सहज है, समझना कठिन। जानना सहज इसलिए है कि वह छोटे से छोटे और नीचे से नीचे व्यक्ति को न छोटा समझती है और न नीचा। घर की बड़ी-बूढ़ियों के नाराज होने पर भी झाड़ू लगाने वाली जमादारनी को उसी गिलास में पानी पिलाती है जिसमें स्वयं पीती है। सबकी रामकहानी सुनती है और यथासंभव की सीमाएं पार कर उनकी सहायता करने का प्रयास करती है। (इस शुभ कार्य में वह अनेक बार अपने हाथ भी जला चुकी है।)

समझना कठिन इसलिए है कि उसका चरित्र एक गहन विरोधाभास का परिणाम है। और विरोधाभास का कारण है उसका प्रथम प्रेम। जिस व्यक्ति को वह बहुत प्रेम करती थी उसी से घृणा भी करती थी। उसकी परम प्रिय होकर भी वह उसके विचारों से सहमत नहीं हो सकी। और वह व्यक्ति—चित्रा का प्रथम प्रेम—थे कमोडोर ठाकुर प्रताप सिंह, चित्रा के बप्पा।

चित्रा के पिता ठहरे सामंती विचारधारा वाले ठाकुर। एक तो पुरुष प्रभुत्व-मेल शेवनिज्म के अनुगामी ऊपर से भारतीय नौसेना के एक फौजी अफसर और चित्रा भी नारी शोषण की कट्टर विरोधी। विरोध तो होना ही था। ठाकुर साहब से मेरी पहली भेंट चित्रा के पत्रकार निवास वाले घर में हुई थी। उसके पूर्व में उनकी पुरुष प्रभुत्व और तानाशाही की तमाम कहानियाँ सुन चुका था। काफी देर तक रम की चुस्की लेते हुए उनसे बातें होती रहीं या कहना चाहिए कि उनकी बातें सुनता रहाँ वह बहुत सहज, सरल और सुलझे हुए लगे और यह वह व्यक्ति तो नहीं थे जिनके विषय में बहुत कुछ सुनकर मैंने कुछ और ही धारणा बना ली थी।

ये धारणाएँ अक्सर एक चेहरे की पहचान की तरह हमारे मस्तिष्क में जमकर रह जाती हैं। चेहरे वही रहते हैं पर उन चेहरों के पीछे जो व्यक्ति है वह सदा एक-सा नहीं रहता। परिवर्तन ही जीवन है, जीवन की पहचान है और जहाँ परिवर्तन नहीं होता वहाँ जीवन नहीं होता; बस जीवन नाम की एक चलती-फिरती काया रह जाती है जो कभी कुछ याद कर हँस देती है और कभी कुछ सोच कर रो देती है। वह या तो भूत में रहती है या भविष्य में। वह आज को देख ही नहीं पाती। जीवन भूत या भविष्य में नहीं, आज में है।

चित्रा आज में जीती है और जो आज में जीते हैं, उन्हें समझना बहुत कठिन हो जाता है, क्योंकि वे आज वह नहीं रहे जो कल थे; और जो आज हैं वह संभवतः कल नहीं होंगे। जड़ में परिवर्तन नहीं होता पर जो जीवित है, चाहे वह मानव हो, पशु हो या कोई वृक्ष हो, वह तो बदलेगा ही—बड़ा होगा या सूख जाएगा, खिलेगा या मुरझा जाएगा।

मैंने चित्रा को खिलते हुए भी देखा है और मुरझाते हुए भी; उसका सुख भी देखा है और दुख भी। पर चित्रा को बहुत दिन तक न उसका सुख बांधकर रख सका, न उसका दुख। वह हर परिस्थिति से जूझती रही, हँसती रही, रोती रही; और आगे बढ़ती रही। अपने बहुचर्चित उपन्यास 'आवां' के समर्पण में चित्रा ने लिखा है :

तुमने जब अपनी आँखें दान की, बहुत लड़ी मैं तुमसे। तुमने जब किडनी दान करने का फार्म भरा, फार्म छीन मैंने चिथड़े-चिथड़े कर दिया। तुमने कहा, तुम जो कुछ लिखती हो, कहती हो—सिर्फ औरों के लिए है? अपने छद्म से तुम कब मुक्त होगी माँ? मैं चिढ़ गई थी। अब तुम्हें यकीन दिला सकती हूँ तुमसे पिछड़ जरूर गई हूँ, अर्पणा, परास्त नहीं हुई। लिखने और कहने के बीच 'पहल'-सी उठ खड़ी हुई हूँ।

यह है चित्रा, जो कभी परास्त नहीं होती। बार-बार उठ खड़ी होती है, कुछ कहने के लिए, कुछ करने के लिए।

एक दिन सिलाई की मशीन खरीद लाई, जिस पर दो-दो रुपये में स्कर्ट और कमीज सी कर अपना पॉकेट मनी कमाने लगी। वह अपने बप्पा से एक रुपया माँगती तो दस मिलते पर ऐसे व्यक्ति से वह पैसे कैसे ले सकती थी जो नारी की प्रगति और स्वतंत्रता के विरुद्ध हो। बाप जिद्दी तो

बेटी महा जिद्दी। युद्ध तो होना ही था। और जोरदार युद्ध हुआ था। ठाकुर साहब हाथ में रिवाल्वर लेकर खून करने सागर विहार पहुंच गए।

मुंबई के मस्जिद बंदर में एक गेस्ट हाउस का नाम सागर विहार है। उसकी दूसरी मंजिल के एक कमरे में श्री अवध नारायण मुद्गल रहते थे। उनका दोष यह था कि उन्होंने ठाकुर साहब की बेटी से प्रेम किया था। यह बात है संभवतः 1965 की, जब अवध नारायण 'टाइम्स ऑफ इंडिया' की पत्रिका 'सारिका' में उप संपादक थे। अंतर विश्वविद्यालय प्रतियोगिता में पुरस्कृत अपनी एक कहानी छपवाने के लिए चित्रा ठाकुर सारिका के कार्यालय में गई थीं। वहाँ किसी ने अवध जी के पास भेज दिया। भगवान भला करे उस व्यक्ति का।) यह तो मैं नहीं जानता कि कहानी छपी या नहीं, इतना अवश्य जानता हूँ कि एक प्रेम कहानी का श्रीगणेश अवश्य हो गया।

जब प्रेम कहानी होगी तो खलनायक भी होगा। और इस कहानी के खलनायक थे ठाकुर प्रताप सिंह जो इस विवाह के कट्टर विरोधी थे। फिर वही हुआ जो प्रेम कहानी में होता है। चित्रा और अवध ने माटुंगा के आर्य समाज मंदिर में जाकर चुपचाप शादी कर ली।

सूचना मिलते ही ठाकुर साहब हाथ में रिवाल्वर लेकर अवध नारायण के दो टुकड़े करने सागर विहार पहुंच गए। मित्रों ने चित्रा को किसी दूसरे कमरे में बिठा कर अवध को उनके कमरे में बंद कर बाहर से ताला लगा दिया और ठाकुर साहब को बताया गया कि वह वहाँ नहीं है। जब ठाकुर साहब अवध नारायण को गोली मारे बिना वहाँ से हटने को तैयार ही नहीं थे तो हिंदी फिल्मों के जोरदार सीन की तरह चित्रा सामने आ गई और हजारों बार बोला गया डायलॉग एक बार फिर सुनाई दिया, 'मारना ही है तो पहले मुझे मार दीजिए।'

ठाकुर साहब अपनी बेटी को न मार सके, पर अवध नारायण को न छोड़ने की धमकी देकर वहाँ से चले गए। अगले दिन मित्रों ने रेल के दो टिकटों का प्रबंध कर दोनों को दिल्ली भेज दिया। सुना वे वहाँ पहले सर्वेश्वर दयाल सक्सेना के यहाँ रहे, फिर मन्नू भंडारी और राजेन्द्र यादव के घर। प्रेम हो या मजदूर आंदोलन, चित्रा जो भी करती है पूरी तन्मयता और लगन से करती है। मजदूर नेता डाक्टर दत्ता सामंत चित्रा के पिता के मित्र थे और अक्सर उनसे मिलने चित्रा के घर आया करते थे। एक दिन दत्ता सामंत के साथ एक महिला मजदूर नेता मीरा ताई भी आई। मीरा ताई के आग्रह पर चित्रा उनकी संस्था 'जागरण' से जुड़ गई जो घरों में बर्तन-पोंछा करने वाली महिलाओं की संस्था थी। ठाकुर साहब के विरोध के बावजूद चित्रा ने एक चाल में स्थित 'जागरण' के छोटे से कार्यालय में बैठना प्रारंभ कर दिया। उसी मजदूर आंदोलन के चक्कर में चित्रा को हवालात की हवा भी खानी पड़ी पर आंदोलन के प्रति उसकी लगन में कोई कमी नहीं आई।

प्रायः हर आंदोलन से जुड़े लोग अपनी आंखें मूंदकर अपने नेताओं के बताए मार्ग पर चलते हुए सही और गलत, उचित और अनुचित की पहचान भूल जाते हैं। अपने संगठन को प्रबल बनाने की चेष्टा में वह अपने संकुचित हितों की एक जेल गढ़ लेते हैं। जिसके बाहर वह जाना तो क्या, देखना भी नहीं चाहते। बाहर की आवाज सुनना भी नहीं चाहते। परिणाम यह होता है कि केवल अपनी संस्था, अपना धर्म और अपनी मांगों को सही समझने और अपने विचार दूसरों पर थोपने में वह अक्सर मानव मूल्यों को बलिदान कर गुंडागर्दी और खून-खराबे पर उतर आते हैं। ऐसे वातावरण में चित्रा का दम घुटने लगता है। वह गलत से समझौता नहीं कर पाती और फिर वह ऐसे आंदोलन के प्रति अंधी वफादारी की सलाखें तोड़ उस जेल से बाहर आ जाती है। उसके साथी उसे नहीं समझ पाते। हर वह व्यक्ति, जो केवल अपने ही रास्ते, अपनी ही विचारधारा और अपने ही धर्म को सर्वश्रेष्ठ मानता है, दूसरों को कभी नहीं समझ सकता।

चित्रा का युद्धक्षेत्र बदल गया। पर युद्ध चलता रहा और आज भी चल रहा है। हाथों में मजदूर यूनियन का झंडा छूटा तो कलम हाथ में आ गई। पहले लिंटास में कापी राइटिंग की। जिसमें पचास रुपये प्रति शब्द मिल जाते थे। उसके पश्चात डॉ. धर्मवीर भारती के प्रोत्साहन पर 'धर्मयुग' में लिखना प्रारंभ किया।

सबसे पहला लेख था—'धर्मेन्द्र' पर और बाद 'सुनील गावस्कर', 'गब्बर सिंह', 'गुलजार की नायिकाएँ' आदि लेख लिखे। धर्मयुग के अतिरिक्त 'नवभारत टाइम्स', 'माधुरी', 'हिंदी ब्लिट्ज' और गुजराती 'श्री' में कभी अपने और कभी दूसरों के नाम से लिखकर महीने में दो-तीन हजार रुपये कमा लेती थी। इसी बीच मेरे साथ एक फिल्म भी लिखी जो बहुत बड़ी हिट हुई। उस फिल्म में चित्रा का नाम तो नहीं आया, पर मैं जानता हूँ कि उसकी सफलता में चित्रा का बहुत बड़ा योगदान था, जिसे मैं कभी नहीं भूल सकता। फिल्म का नाम था 'साजन बिना सुहागन'।

एक दिन संपादक का पत्र चित्रा के पास आया जिसमें लिखा था कि उसे शीघ्र ही अमुक विषय पर एक लेख चाहिए। मेज पर रखा पत्र चित्रा की एक पत्रकार सहेली ने पढ़ लिया और इसके पहले कि चित्रा लेख लिखे उसने स्वयं अपने नाम से लेख लिखकर संपादक को पहुंचा दिया। सब कुछ जानने के बाद भी चित्रा ने उससे एक शब्द नहीं कहाँ ऐसे एक-दो नहीं, अनेक लोग चित्रा के घर पर आश्रय पाते रहते थे। कभी-कभी तो मुझे ऐसा लगता था कि चित्रा का घर एक ऐसी धर्मशाला है जहाँ हर उस व्यक्ति को, जिसका मुँबई में कोई न हो, मुफ्त का खाना और पीना मिल सकता था- चाहे वह बंगाली हो या पंजाबी, बिहारी हो या मराठी। चित्रा और चित्रा के महासज्जन पति कभी किसी को ना नहीं कह सकते थे, चाहे उन्हें खिलाने-पिलाने में कितना ही कर्जा क्यों ना उठाना पड़े। यहाँ तक कि उनके दिल्ली जाने के पश्चात एक सज्जन तो सपरिवार उनके घर में जमकर बैठ गए और उन्हें फ्लैट छोड़ने के लिए बाध्य करने का अप्रिय कार्य मुझे करना पड़ा।

जो चित्रा एक दिन अपने घर में मुफ्त रहने वाले से घर खाली करने को भी नहीं कह सकती थी, वही आज भरी सभा में मंच पर खड़ी होकर किसी को भी सभा छोड़कर चुपके से खिसकने के लिए बाध्य कर सकती है। एक वह भी दिन था जब फोन का नंबर मिलाने में चित्रा के हाथ कांपते थे और वह मेरी बेटी सरस से नंबर मिलवाती थी। और अब यह हाल है कि जब मैं चित्रा को चार बार फोन करता हूँ तो कभी एक बार लग जाता है—क्योंकि चित्रा फोन पकड़ ले तो छोड़ती ही नहीं। अब चित्रा फोन नहीं छोड़ती या फोन वाले उसे नहीं छोड़ते यह या तो भगवान जाने या फोन।

चित्रा कितनी बदली है और कितनी नहीं, उसका उत्तर तो वही दे सकता है जो चित्रा को पूरी तरह समझ सका हो; और मैं चित्रा को पूरी तरह समझने का दावा नहीं करता। अब प्रश्न यह उठता है कि क्या चित्रा स्वयं को पूरी तरह जानती है, शायद हाँ। शायद नहीं।

क्या मानवीय सरोकार केवल किताबी बातें है?

शैली मुद्गल

मेरे पापा (शब्द कुमार) फिल्में लिखते थे, जिनमें एक बेहतर समाज कैसे बने उसके फॉर्मूले गढ़े जाते थे। बचपन से यही देखा था मैंने। फिर शादी हुई। यहाँ आयी। धीरे-धीरे सबको समझना शुरू किया। यहाँ के तौर तरीकों से परिचय हुआ। एक नवीन और अनोखी दुनिया थी ये मेरे लिए, आम परिवारों की तरह हमारे घर में भी लड़ाइयां होती थी लेकिन लड़ाइयों की वजह आपसी रिश्ते और सब्ज़ी तरकारी नही थी बल्कि गंभीर वैचारिक मुद्दों पर मतभेद उसका कारण बनते थे। अमोमन ये बहस मेरे पति राजीव में और मम्मी (मेरी सास) में होती थी। शुरू-शुरू में तो उनके तर्क-वितर्क मुझे उत्तेजित करते। लगता था जाने कहाँ कहाँ से मुद्दे ढूंढ लाते है ये दोनों बहस के लिए लेकिन जब पापा (मेरे ससुर) की ओर किसी प्रतिक्रिया की अपेक्षा में देखती तो उन्हें आराम से अपने मुँह में पान दबाकर उसके आनंद में विलीन पाती। यकीन मानिए, अगर मेरी माँ को बहस में हराना हो तो बहुत मजबूत तर्क देने होते हैं। शायद यही कारण है कि उनके लेखन में, उनकी कहानियों में तर्कहीनता या विवेकहीनता कोई स्थान नहीं पाते।

कोविड-19 के चलते आजकल आना जाना कम हो गया है वरना हमारे घर में मम्मी से मिलने के लिए लोगों का तांता-बांता लगा रहता था। मशहूर लेखिका होने के नाते कभी कोई इंटरव्यू लेने के लिया आ रहा होता या कभी कोई शोधार्थी। कभी-कभी तो कुछ लोग बिना बताए चले आते। मम्मी लेखन छोड़कर उठती और उनका अभिवादन करती। बिना खिलाये पिलाये कोई हमारे दरवाजे से नहीं लौटा। मम्मी का मानना था और आज भी है कि कोई व्यक्ति अपना समय निकालकर और अपने पैसे खर्च करके मिलने आया है, तो हमें भी उसके समय का मोल समझना चाहिए। यही मूल्य उन्होंने अपने पोते पोतियों को भी दिए हैं। शुरू-शुरू कभी-कभार मुझे जरूर लगता था, खासकर गर्मियों के मौसम में, कि हर किसी की वजह से मुझे किचन में घुसना पड़ता है, लेकिन एक बार हुआ यूँ कि एक पत्रकार हमारे यहाँ आया। उसके लिए मैंने खाना परसा। दाल में घी डालने के बावजूद मम्मी ने और डलवाया। वो पत्रकार सब कुछ नोट कर रहा था। भोजन करके वो चला गया। जब उसने आर्टिकल लिखा तो मम्मी की तारीफ करते हुए ये बात छापी और कहा कि जिस दिन वो हमारे यहाँ आया था उसके पास पैसे नहीं थे या शायद कम थे और कैसे भरपेट भोजन और दाल में डाला हुआ घी उसे तृप्त कर गया था। तब मुझे पहली बार ये एहसास हुआ कि मम्मी सही हैं। अगले की समस्या क्या है, हमें नहीं पता, वो किन कठिनाइयों से गुजर रहा है, हम नहीं जानते। हमारा छोटा-सा श्रम किसी पर कितना गहरा प्रभाव छोड़ सकता है, उसका एहसास मुझे तब हुआ, लेखन आसान नहीं है। ये मम्मी के परिश्रम को देखकर ही समझ आया। लिखते-लिखते उन्हें सर्वाइकल स्पॉन्डोलोसिस हो गया है। कंधे की हड्डी बढ़ चुकी है जो टीसती रहती है। कभी भी चक्कर आ जाते हैं। लेकिन सारी तकलीफों के बावजूद उनका लेखन नही रुकता।

उनका पहला उपन्यास 'एक जमीन अपनी' मेरी शादी से पहले लिखा उपन्यास था। 'आवां' मेरे सामने की बात है, बतौर लेखक मम्मी बहुत मेहनती है। जब तक वो पूरी तरह संतुष्ट नहीं होती, छोड़ती नहीं है। आवां के इतने सारे ड्राफ्ट्स रखे हुए है कि संभालना मुश्किल है और ये तब जब वो लिख-लिख कर कितने ही पन्ने फाड़ चुकी है।

मम्मी को लिखते समय एकांत की ज़रूरत होती है। अपने पात्रों के साथ रहना चाहती हूँ, उनके साथ-समय गुज़ारना चाहती हूँ, उनके जीवन में डूबना चाहती हूँ, उस वक़्त मुझे कोई नहीं चाहिए, ये मम्मी के मुँह से अक्सर सुनती थी। 'आवां' के समय इसका अनुभव मुझे हुआ। कुछ ड्राफ्ट्स घर पर लिखे गए थे, लेकिन मम्मी के लिए पूरी तरह से उसमें घुसना मुश्किल हो रहा था क्योंकि कोई न कोई उनसे मिलने का आग्रह करता रहता। वो छटपटा रही थी

अपना उपन्यास पूरा करने के लिए और उषा गांगुली के बहुत आग्रह पर उन्होंने कोलकत्ता जाने का फैसला किया। उषा मौसी बहुत बड़ी थिएटर थी। मम्मी और उनकी बरसों पुरानी दोस्ती थी। जिन्दगी के बहुत सारे कठिन लम्हों पर मम्मी-मौसी की मदद के लिए खड़ी रही। दोनों की दोस्ती भी अद्‌भुत थी। जितना एक दूसरे से प्यार करती उतना ही लड़ती भी थी, बिल्कुल बच्चों के तरह। वह एक बहुत ही प्रतिभाशाली महिला थीं और हमेशा मम्मी के लिए प्रोत्साहन का स्रोत रही हैं। मौसी बार-बार मम्मी से जिद्द करती कि यहाँ आओ मेरे पास और यही लिखो। आवां को मम्मी ने कोलकत्ता में उषा मौसी के घर ही पूरा किया। उपन्यास लिखने के दौरान मौसी और मम्मी पूरा दिन एक दूसरे से बात नहीं करते। उनकी पसंदीदा ग्रीन टी बनाकर मौसी अपने काम में व्यस्त हो जाती। शाम को दोनों घूमने निकलते। पुचका, जिसे हम दिल्ली में गोल गप्पे कहते है, मन भर दोनों दोस्त खाते, फिर नाटक का रिहर्सल दिखाने मौसी मम्मी को अपने रिपर्टरी ले जाती। तो शाम का समय दोनों का मस्ती से गुजरता। अगली दिन फिर सुबह से अपने-अपने कामों में व्यस्त हो जाते। ऐसा ही कुछ सिलसिला मम्मी के दूसरे उपन्यास 'गिलिगडु' के साथ रहाँ मम्मी जब भी लिखने बैठती मौसी इस बात का पूरा ख्याल रखती की उन्हें कोई तंग न करे। मौसी रिहर्सल्स से लौटकर पूछती कितना लिखा आज तुमने और जवाब उनकी अपेक्षा का नहीं होता तो मम्मी की क्लास भी लग जाती थी, यानी मम्मी को मौसी से डांट पड़ जाती थी। ऐसी थी इन दोनों की दोस्ती। प्रेम और आपसी समझ से भरी।

पिछले साल उषा मौसी की अकस्मात मृत्यु हो गयी। मम्मी ने बहुत सारे लोगों को अपने जीवन में खोया है लेकिन मौसी की खबर ने मम्मी को हिला दिया। आज तक उनकी याद मम्मी को रुला जाती है। एक वैक्यूम, एक खालीपन छोड़ गयी है मौसी मम्मी के जीवन में। लेकिन मम्मी की आदत है कि अपना दुख किसी को नहीं दिखाती,

हमें भी नहीं।

मम्मी की एक आदत मुझे बहुत प्यारी लगती है। पिछले 26 साल से देखती आ रही हूँ। जब भी वो कुछ भी लिखती है, चाहे कहानी हो या उपन्यास, खत्म होने पर पूरे घर में परेशान घूमती हैं ये कहते हुए कि पता नहीं मैं क्या लिखती हूँ। मुझे तो लिखना ही नहीं आता। उनकी कहानी पढ़कर शुरू-शुरू में तो मैं अचरज में पड़ जाती थी कि ये क्या बोल रही है। लिखना नहीं आता! उनकी कहानियाँ तो हिला देती हैं। लोगों के फ़ोन और पाठकों के पत्रों का ढेर लगा रहता था। (तब व्हाट्सएप्प और फेसबुक का ज़माना नहीं था।) और सबसे ज़्यादा मज़ा।

तब आता था जब वो अपना उपन्यास एक अंकल, (जिनका मैं यहाँ नाम नहीं लूंगी) उनको रिव्यु के लिए भेजती। मुझे वो दिन याद आ जाते जब हम बच्चे थे और वार्षिक परीक्षाओं का रिजल्ट आने वाला होता था तो कैसे हम पूरे घर में परेशान घूमते, अपना ध्यान बँटाने का भरसक प्रयास करते, मम्मी का हाल भी कुछ ऐसा ही होता था। जब तक रिजल्ट नहीं आता उनका मन किसी भी काम में नहीं लगता। मुझे बड़ा मज़ा आता था देखकर और यकीन मानिए मम्मी हमेशा 'फ्लाइंग कॉलोर्स' से पास हुई है। हमेशा, और फिर मम्मी की मुस्कुराहट दिखती और कहती 'हाँ, शायद थोड़ा लिखना तो आता है'। उसके बाद वो उपन्यास प्रकाशक को भेजा जाता। ये सिलसिला हर उपन्यास के साथ दोहराया गया है। पॉजिटिव रिस्पांस के बाद कहती कि हाँ... चलो... शायद ठीक-ठाक ही लिख लेती हूँ ठीक-ठाक! उनका 'ठीक ठाक' उपन्यास तो सारे अवार्ड्स जीत जाता है। और 'आवां' तो हिंदी साहित्य के इतिहास में अपना नाम दर्ज कर चुका है।

आवां कोलकत्ता में जाकर लिखने की वजह केवल घर पर आने जाने वालों का डिस्टर्बेंस नहीं था। उसका बहुत बड़ा कारण मेरे बच्चे भी थे। 1996 में मेरा बेटा शाश्वत पैदा हुआ और अगले वर्ष मेरी जुड़वा बेटियाँ आद्या और अनघा। मम्मी पापा के जीवन में खोई हुई खुशियाँ लौट आयी थी। बच्चों की किलकारियाँ, उनकी शैतानियाँ, उनकी मुस्कान। पापा-मम्मी ने तो सब काम छोड़ दिए थे। बस ये बच्चे उन दोनों के जीवन का एक मात्र केंद्र बिंदु बन गए थे। मैं इस बात को बिल्कुल नाकार नहीं सकती कि मम्मी-पापा का साथ नहीं होता तो मेरे लिए तीनों को संभालना बहुत मुश्किल हो जाता। मम्मी सारा दिन बच्चों को गोद में लादे रहती। उन्हें लोरियाँ सुनाती। उनके छोटे-छोटे हाथ पैरों को सहलाती, मालिश करती और फिर उन्हें नहलाती।

हमारी बालकनी में एक केन का झूला टंगा था। नहा-धो लेने के बाद, मम्मी तीनों बच्चों को उसमें लिटाती और ताकि लुढ़क कर आगे गिर ना जाए इसीलिए अपना एक दुपट्टे को झूले से बांध देती। और फिर घंटों झुलाती रहती। कुछ वर्ष तक तो यही उनकी पढ़ाई थी और यही उनका लेखन, तो उपन्यास कहाँ से पूरा होता।

कोलकत्ता जाने के बाद भी उन्हें चैन नहीं था। कुछ दिनों तक तो वो कलम ही नहीं उठा पायीं। बच्चों के याद सताती रही और जब तक वहाँ रहीं, रोज सुबह शाम फ़ोन करके बच्चों के हाल-चाल लेती रही।

गिलिगडु के शुरू के कुछ ड्राफ्ट्स मम्मी ने घर पर ही लिखे थे। उसकी भी एक कहानी है। कभी-कभी लिखने में ध्यान नहीं लग पाने की वजह से मम्मी एक छोटा-सा पाउच पान पराग का मंगवाती थी। दो दाने खाकर अपने टेबल पर रख छोड़ती। जब लौट कर आती तो पाउच खाली। अब याद करने की कोशिश करती कि क्या बेखयाली में मैं पूरा पाउच खा गयी! फिर नया पाउच खरीद कर आता। कुछ समय बाद वो भी खाली मिलता। अब उन्हें लगा ज़रूर कुछ गड़बड़ है। उन्होंने सोचा अवध तो तम्बाकू के शौकीन है, पान पराग तो खाएंगे नहीं, तो जा कहाँ रहा है। योजना बनाई गयी। मम्मी ने जान बूझकर पाउच टेबल पर रखा और छुप गयी। आखिरकार चोर पकड़ा गया।

जब गिल्लिगडू लिख रही थी तब तक मेरी बेटियां लगभग 5 या 6 साल की हो गयी थी।

अनघा ने नाजाने कब पान पराग चख लिया था और उसके पीछे पगला गयी थी। तो हर बार पाउच चुपके से उठा लेती और अपने मुँह में पूरा उंडेलकर एहतियात से खाली पाउच वापस जगह पर रख देती।

अब चोर तो पकड़ा गया लेकिन मम्मी चोरी रोकती

कैसे! मम्मी ने उसे एक डिब्बे में छुपाना शुरू कर दिया। वहाँ से भी गायब। फिर दूसरे डिब्बे में तो वहाँ से भी गायब। आज इस जगह तो कल उस जगह। लेकिन मजाल है कि बच जाए। पाउच उन्हें हर बार खाली ही मिलता। दोनों दादी और पोती में ये खेल बनकर रह गया था। जिसमें दादी हर बार हार जाती। अब पान पराग खाने की अनघा की तो उम्र थी नहीं इसीलिए दादी ने हार मान ली और फिर पाउच मंगवाना ही बंद कर दिया।

मम्मी की लिखी कहानियाँ जब पढ़ती हूँ तो ये एहसास होता है कि उनकी कहानियों और उपन्यासों के पात्र हमेशा अपने आप को सशक्त बनाते हैं वो कमज़ोर या दयनीय नहीं होते। चाहे वो 'एक ज़मीन अपनी' की अंकिता हो, 'आवां' की नमिता या सुनंदा हो, गिल्लिगडू के कर्नल स्वामी हो, या 'पोस्ट बॉक्स नंबर. 203', 'नालासोपारा' का विनोद उर्फ बिन्नी उर्फ बिमली हो। उनके पात्र ज़िंदगी के संघर्षों को झेलते हुए अपने को मजबूत बनाते हैं।

लेकिन जिस बात से लोग अनभिज्ञ हैं वो ये कि असल जिंदगी में भी मम्मी लोगों को अपने पैरों पर खड़े होने और जीवन की वास्तविकताओं का सामना करने के लिए प्रेरित करती आयी हैं।

हमारे पुराने मकान वर्धमान अपार्टमेंट्स के बाहर चौराहे पर एक आदमी चाय बनाकर बेचता था। उसके खरीदार अक्सर ऑटो रिक्शा और साईकल रिक्शा वाले थे। चार बेटियों वाला ये बूढ़ा आदमी अपने परिवार का एक मात्र कमाने वाला व्यक्ति था। मम्मी अक्सर अपार्टमेंट्स का चक्कर लगाने शाम को उतरती थी। उसकी पत्नी और पास में रोती बिलखती उसकी बेटियों को देख मम्मी चिंतित हो गयी। एक दिन मैंने देखा कि उसने चाय के साथ-साथ पकोड़े तलकर बेचना शुरू कर दिया है। दरअसल चाय वो बनाता था और पकोड़े उसकी पत्नी तलती थी। फिर बिस्कुट चॉकलेट की भरनियाँ भी दिखने लगी। धीरे-धीरे बच्चीयों की फ्रॉकेन साफ सुथरी होती गयी और उनके हाथों में स्कूल की किताबें और बस्ते दिखने लगे। मुझे अच्छा लगा ये सब देखकर। खुशी हुई उसके लिए। उसकी बेटियाँ प्यारी सी थी और उनमें से एक जिसका नाम अनु था वो मेरी बेटियों की हमउम्र थी।

एक दिन चलते फिरते यूँही मेरी उस बूढ़े आदमी से बातें होने लगी। तरक्की का राज़ मालूम हुआ। मेरी माँ से उसकी तकलीफ देखी नहीं गयी थी इसीलिए उन्होंने किसी को भी बताये बगैर उसकी पैसों से मदद की और पकोड़े बिस्कुट चाय के साथ बेचने की सलाह दी। और बच्चियों को पास के गवर्नमेंट स्कूल में ले जाकर दाखिल करवाया। बहुत गर्व हुआ मुझे मम्मी पर उस दिन।

लेकिन बात यहीं खत्म नहीं हुई। एक दिन वो बूढ़ा मर गया। अब अपनी माँ के साथ दुकान पर अनु को भी बैठना पड़ा। परेशानी यह थी की अब वो जवान हो गयी थी और ऑटो रिक्शा वालों की नज़र डगमगाने लग गयी थी। उसकी माँ को मम्मी ने समझाने की कोशिश की लेकिन उसकी भी मजबूरी थी। उसकी बाकी बेटियाँ छोटी थी। और वो अकेली पड़ गयी थी। जब और कोई उपाय नहीं काम किया तो मम्मी ने उसकी शादी कर देने की सलाह दी और इस काम के लिए साड़ी, कपड़े रुपये से मदद की अनु की शादी हो गयी। अब वो दो बच्चों की माँ है।

क्या ये केवल बड़ा दिल है मम्मी का या बचपन में मृणाल ताई गोरे से पाई हुई ट्रेनिंग, ये मैं नहीं जानती। शायद दोनों ही बातें होंगी। ये बात मयूर विहार के पॉकेट 2 की है। तब राजीव से मेरी शादी नहीं हुई थी। मेरा इनके यहाँ अक्सर आना जाना था।

मुम्बई से मैं जब भी दिल्ली आती उनके यहाँ ही रहती। मुझे याद है मम्मी को सिलाई का बहुत शौक था। जब मैं छोटी थी तब मेरे लिए भी उन्होंने एक फ्रॉक सिली थी। उनके पास एक पैर से चलाने वाली सिलाई मशीन थी जो उन्हें बहुत प्रिय थी। अक्सर उसे उनके कमरे में साइड में रखा खड़ा देखती। जब वो मुम्बई में रहते थे तब से वो मशीन मैंने उनके पास देखी थी। जब वो सब दिल्ली ट्रांसफर हुए तो मशीन भी परिवार के साथ ट्रांसफर हुई।

एक बार जब मैं कुछ सालों बाद दिल्ली आयी तो मशीन गायब थी। पूछा तो उनकी बेटी अपर्णा, जो मेरी सबसे प्रिय सहेली थी, उसने बताया कि मम्मी को सड़क पर एक लंगड़ा आदमी मिला जो भीख माँग रहा था। जब मम्मी

को पता चला कि उसे सिलाई आती है तो इस वादे से कि वो अब भीख नहीं मांगेगा और अपनी जीविका खुद कमाएगा उसे अपनी प्रिय सिलाई मशीन पकड़ा दी।

ऐसे और ऐसे ही कितने किस्से मैं बता सकती हूँ उनके बारे में। मुम्बई में जब वो पत्रकार नगर में रहते थे तो मेरे माता-पिता ने उनके घर को मुद्‌गल सराय का नाम दे दिया था। जिसे देखो उनके घर में अपना बोरिया बिस्तर उठाये चला आता था। उन लोगों के लिए तो खाना पीना लॉजिंग मुफ्त था तो उन्हें किस बात की तकलीफ। लेकिन मम्मी उनकी मदद सिर्फ इसीलिए करती थी कि वो कुछ बन जाए। अपने पैरों पर खड़े हो जाएं उनके इस स्वभाव से फायदा हुआ और बहुतों ने उनकी इस अच्छाई का नाजायज़ फायदा भी उठाया। लेकिन आज तक मम्मी के मुँह से उनके लिए कोई अपशब्द नहीं सुने मैंने।

आज मेरी शादी को 26 साल हो गये हैं लेकिन मैं देखती हूँ कि आज भी मम्मी किसी की भी मदद करने से पीछे नहीं हटतीं। कुछ सालों पहले की बात है। एक महिला थी जो कुछ अरसे से वैवाहिक समस्याओं से जूझ रही थी। परेशान होकर एक दिन अपने बेटे को लेकर उसने घर छोड़ दिया और हमारे यहाँ आ गयी। मम्मी ने उसे सम्बल दिया। पूरा ख्याल रखा कि वो किसी भी तरह से अपने को हमपर बोझ न समझे।

रात दिन वो महिला रोती रहती थी। आम तौर पर ऐसी स्थिति में कोई भी उसे डिवोर्स ले लेने की राय देता। लेकिन मम्मी उसे अपने पति को छोड़ देने की सलाह सही नहीं लगी क्योंकि वो समझ गयी थीं कि वो अब भी अपने पति को बहुत प्यार करती है।

तो मम्मी ने सुझाया कि बेटा, तुम लौट जाओगी तो ये ना समझना की वो अब तुम्हें नहीं मारेगा। लेकिन चूंकि तुम उसे अब भी प्यार करती हो तो हर चुनौती का सामना करो। रोना-धोना बंद करो और अपने को पूरी तरह सक्षम बनाओ, नौकरी ढूँढ़ो और बेटे को वहीं उसके साथ रहकर पालो। एक बार तुम खुद अपने पैरों पर खड़ी हो जाओगी तो चीजें अपने आप सुधर जाएँगी और यही हुआ। आज वो खुश है। एक बेटी और हो गयी है। पति ने मारना भी बंद कर दिया। एक घर टूटने से बच गया।

अनेकों अनेक किस्से हैं जो मैंने अपनी आँखों से देखें है, जो मेरे सामने घटित हुए हैं।

एक महिला थी जो बहुत टैलेंटेड थी। अच्छे ओहदे पर थी और अच्छा खासा कमाती भी थी। शायद अपने पति से थोड़ा ज़्यादा। ऐसे में अक्सर देखा जाता है कहीं न कहीं औरतों में एक दंब आ जाता है।

यही उसके साथ हुआ। फिर उसे एक व्यक्ति से प्यार हो गया वो व्यक्ति उसकी तारीफें करता और उससे अपना काम निकलवाता। लेकिन उस महिला को ये सब दिख नहीं रहा था और एक दिन उसने निश्चय किया कि वो अपने पति को तलाक दे देगी और अपने छोटे से नन्हें बच्चे को भी पति के पास छोड़ देगी। मम्मी से उसने अपनी बात सांझा की।

मम्मी परेशान हो गयी। उस लड़के से मिली और उनका शक यकीन में बदल गया। उसके बाद मुझे याद है, मैंने मम्मी को घंटो उस लड़की को समझाते हुए देखा। इतना की मैं परेशान हो गयी। लगा कि अगर कोई अपनी ज़िन्दगी बर्बाद करने पर उतारू है तो क्यों हम उसके पीछे अपना समय गुज़ारे।

लेकिन मम्मी की मेहनत रंग लायी। उस महिला को उस व्यक्ति का असली चेहरा समझ आ गया और वो अपने पति के पास लौट गयी। आज तक वो इस बात का पूरा श्रेय मम्मी को देती है कि उन्होंने उसे बचा लिया। उसके घर को बचा लिया।

ये सब पढ़ कर आप सब समझ गए होंगे कि नामिताएँ, सुनंदाएँ, अंकिताएँ, केवल मम्मी के लेखन तक सीमित नहीं रही हैं। उनकी कुछ जीवित मिसालें मम्मी के जीवन के हर मोड़ पर मिलेंगी। उनकी अच्छाई ही उनकी ताकत है और लेखन उनकी ज़िन्दगी जो उनके प्रति लोगों की सोच से कभी प्रभावित नहीं हो सकती। उनकी कलम में स्याही अभी खत्म नहीं हुई है।

नयो नयो लागत है ज्यों ज्यों जानिए

डॉ. चंद्रकला सिंह

कह तो रही हूँ ये बात, लेकिन मन का अनुशासन रोक रहा है। बरज भी रहा है कि उठाई गई बात को पूरी शिद्दत और निष्ठा से निभाते हुए इस जिम्मेदारी को निभा तो ले जाओगी न खिलंदड़ी अंदाज में अपनी प्रिय लेखिका के बारे में उनके व्यक्तित्व की गहन सघनता को साध तो पाओगी नहीं तो शीर्षक कुछ और रख लो। मन के गहरे, भीतरी तल से एक पुरजोर आवाज दबाने के बाद भी सिर उठा रही है। 'ऊधो मन न भए दस बीस' जी हाँ सब कुछ सबके बारे में नहीं कहा जा सकता है। जिनके लिए कह रही हूँ, उस व्यक्तित्व् आदरणीय चित्रा मुदगल जी के बारे में मेरा अपना यही अनुभव है। उनका संग-साथ लिखने, कहने व उसे अंत तक साधने की कला का कुछ तो रंग मुझ पर जरुर चढ़ा ही होगा। इतने वर्षों से उन्हें पढ़ने के साथ ही सुन-गुन भी रही हूँ। जीवन के किसी भी मोर्चे पर रीढ़ की हड्डी को किस तरह सीधा रख कर अपने वांछित मुकाम तक पहुँचना है। कहीं भी आपकी बात हल्के रूप में न ली जाये, या कही जाय को अपने जीवन का मूल मंत्र बना लिया है।

पीछे पलट कर देखती हूँ तब पाती हूँ कि आपसे मेरा परिचय पाठक के तौर पर तो 'आंवा' के साथ हुआ, उसके बाद ही आपको खोज-खोज कर पढ़ना शुरू किया। किताब के पीछे लिखे पते से बिल्कुल पड़ोस में रहने के बाद भी घर जाकर अकेले मिलने का साहस नहीं हुआ। साहित्य अकादमी के एक समारोह में जिस तरह आपने अपनत्व के साथ बात की और यह जानने के बाद की मैं उनके पड़ोस की सोसायटी में ही रहती हूँ। सामने से घर आओ किसी दिन बैठ कर बात करते हैं। वह जो बैठने का सिलसिला और फिर दोबारा मिलने का उनका इंतजार शुरू हुआ उसको आज 18 साल हो गए। सबकी तरह पहली बार का अनुभव आज भी वैसे ही आँखों में तैर जाता है। अरे आ गयी तुम! आओ आओ मैं सोच ही रही थी कि वो लड़की आई नहीं। कहा तो था उसने कि आऊँगी। अपने लिए ये सोच कर अच्छा लगा की आप मेरे जैसे नवांगतुक का भी इतनी बेसब्री से इंतजार करती है। घर आकर मिलने का आमंत्रण तो सभी देते हैं लेकिन एक ही बार में पहचान लेना बडी बात है। इन सबके बीच मुझ जैसे जिज्ञासु पाठक या शोधार्थी को अपने पास पाकर निहाल होते हुए भी इससे पहले किसी को नहीं देखा। बाद में तो यह अनुभव औरों के साथ भी सुखद ही रहाँ पास बैठा कर तुम तब तक कुछ किताबें देखों कह कर अपने हाथ का सब काम छोड़ कर मेरे लिए चायपानी का इंतजाम करवाने निकल गई। घर में कोई नहीं हो तो उस गर्मी में खुद ही दूध में रूह अफ़ज़ा डाल कर ले आना। ये कोई भी हो सकता है मेरी जगह। तो एक प्यार की झप्पी और डांट, मनुहार जो काम करे उसे लागू करते हुए उसे खिला-पिला कर ही मानना। सर्दी हो तो ग्रीन टी का वह अनोखा स्वाद। कोई कैसे इतनी लगन से चाय बनाता है, बिल्कुल अपनी रचना में डूबकर लिखने जैसी शिद्दत के साथ। एक बार ये पूछ ही लिया था। जवाब तो आज तक नहीं मिला। ये तो पता है कि आप चाय की बेतरह शौक़ीन हैं। अभी भी जब आपको डॉक्टर ने मन किया हुआ है तब भी आने वाले के बहाने अपनी चाय की तलब पूरी करने की कोशिश रहती ही है और जब यह बात कह देती हूँ तो फिर वाही लाड़। कहाँ पिने देते हो तुम लोग।

अपनी वाली ही तो करते हो। कुछ भी कह लो आज भी चाय के लिए आपकी तड़प कहाँ कम हुई है। घर जाओं तो बैठने की देर नहीं होती है कि उनकी टेर शुरू हो जाती है, अरे इसके लिए कुछ ले आओ। ये कोई भी हो सकता है। आप मैं या अन्य। जबसे बीमारी से उठी है। तबसे खुद कुछ नहीं कर पाती हैं। तो जरा देर होते ही आने वाले के लिए उनकी छटपटाहट देख कई बार तो अपराधबोध भी कराता है कि सब अपना-अपना काम छोड़ कर आते है। मैं तो नाराज भी जाती हूँ की मुझे कुछ चाहिए होगा तो मैं माँग लूंगी। लेकिन उनका मन कहाँ मानता है चुप रहो तुम। मुझे

पता है तुम कुछ नहीं लोगी हर बार यही दृश्य। कई बार तो मेरे पहुँचने से पहले ही अपने पास कुछ-कुछ रख लेती हैं कि ये खाओ! मैंने तुम्हारे लिए रखा है। नहीं खाया तो घर ले जाओ। मना करके उनका मन दुखाने का साहस नहीं आया है अभी तक। अब तो बच्चे या खुद शैली जी भी पहले ही कुछ न कुछ लेने के लिए कहने लगते हैं आप मना मत करो। मम्मी परेशान हो जाएँगी। अब गुस्सा भी करती हैं पूछने वाले पर। बस सब कुछ ला कर रख दो। मेरे समझाने पर कि मैं कोई मेहमान नहीं हूँ। फिर जिद किस बात की। मानती भी हैं कि सब लोग कितना उनका ध्यान रखते हैं फिर भी मुझे गुस्सा आ जाता है। नहीं आना चाहिए। मैं जानती हूँ ताजिंदगी घर और बाहर के मोर्चे पर इतना सक्रिय रहने के बाद आज शरीर के परवश हो जाना, मन तो वैसे ही आज भी निर्बाध है। आज तक छोटी-छोटी चीजों के लिए किसी पर निर्भर रहना उनके स्वभाव में नहीं रहा और वही उनको ज्यादा परेशान करता है।

एक लेखक का परिवार वैसे भी बहुत बड़ा होता है। जहाँ लगातार ऐसी आवा-जाही होती ही रहती हैं। मुझे यहाँ याद आ रहा है कि अवध सर तो कुछ दिन बीतने पर याद करते हुए कह भी देते थे, अरे वो ओ.सी.एस वाली लड़की नहीं आई बहुत दिन हो गए, फोन करो उसे सब ठीक तो है। संयोग ही होता था कि उसी दिन कॉलेज से घर जाने की बजाय मैं हाँफते-डाँफते पहुँच जाती थी। नमस्ते करते ही सर के पान रंगे होंठों पर जो मधुर मुस्कान खिलते हुए देखती थी उसे भूलना संभव नहीं है। दोनों के बीच का वह प्यार किसी फिल्म की तरह आँखों के सामने आज भी सजीव है। उनके नहीं रहने पर तो और भी सघन ही होते हुए देख रही हूँ। फिर भी इनके बीच जगह बनाते हुए मैं इतनी आत्मीय कब हो गयी कि मैम से माँ के संबोधन में यह रिश्ता बदल गया मुझे याद नहीं। कभी घर पर नहीं मिली कहीं और व्यस्तता होती तो कितनी ही बार फोन करके दोबारा जल्दी आने का वादा करवा के ही मानती। उसके बाद से तो मिलने की यह तड़प दोनों तरफ बराबर हुई है। इधर स्टोक पड़ने के बाद बोलने में थोड़ी असुविधा होने के कारण आपके इतने सालों से अनवरत चल रहा पढ़ने और लिखने का सिलसिला थोड़ा बाधित हुआ है, जिसकी पीड़ा शब्दों में कह पाना मेरे लिए भी संभव नहीं है। अपनी रचनाओं और कार्यों से समाज व साहित्य को समृद्ध करने के साथ ही जिस नाम और कीर्ति के शिखर पर आप अवस्थित हुई हैं। उसके बाद भी अब आपका अपने सोचे हुए को आकार न दे पाने की छटपटाहट उनसे ज्यादा उनके पाठकों व जानने वालों को बहुत अखर रही है। कितना कुछ तो है आपके पास कहने व लिखने के लिए। साहित्य और आने वाली युवा पीढ़ी को देने के लिए। अपने जीवन के एक-एक क्षण को साधने वाली, अपने जीवन-मूल्यों को खुद गढ़ने वाली समर्थ रचनाकार का यूँ एकदम से एक-एक वाक्य के लिए आज संघर्ष करते हुए यह देखना। उम्र के इस पड़ाव पर इतना विपुल लेखन करने के बाद भी आज भी अपने लिखे हुए को मन मुताबिक व्यवस्थित न कर पाने की तड़प। बार-बार अलग-अलग फाइलों को उठा-उठा कर देखना कि यह भी अभी रह गया है। इसे भी करना है। अवध जी का लेखन भी एक बैठक मांगता है उसे भी करना है। कितना कुछ तो रह गया। उन्हें जितना हिम्मत करते हुए देखा है आज अपने लिखे हुए को न समेट पाने के लिए रुआंसे होते देखना कितना तो भीतर तक कचोट जाता है। उनकी सोच को किस रूप में ढालना है। यह भी तो कई बार समझ नहीं आता है। उनके स्तर का काम करने की सोच ही कदम रोक लेती है। आपकी तरफ़ से पत्रों के जवाब लिखने में भी कहे हुए को समझ कर शब्दों में ढालना बहुत बार आसानी से हो जाता, तो वहीं कई बार शोधार्थियों के लंबे प्रश्नों के जवाब उनकी तरह हो पाया है या नहीं। वहाँ ठीक से मदद न कर पाने की टीस अपनी जगह है। इसकी खीज अपने पर या हम उन्हें ठीक से समझ नहीं पा रहे हैं, इस भी उनका मायूस होना उनका अपने पर ही गुस्सा होना रुला देता है। जो इससे पहले कभी नहीं देखा था। मैंने तो उनके पास बैठ कर तो अपने गुस्से को शांत होते हुए पाया है। आज भी यह उनका यह दुःख किसी सांसारिक सुख, मान सम्मान के लिए नहीं बल्कि लिखने-पढ़ने की छटपटाहट के लिए है। विपरीत हालात में भी बार-बार तन खड़े हो जाने वाली उनकी यह पीठ मेरे सामने आंसू रोकने के लिए

इस्तेमाल हो रही है। यह मेरे लिए दुखद और असह्य है। कुछ भी न कह पाने की स्थिति में उनकी ही तरह उनके हाथ पर हाथ रख कर बैठ जाती हूँ। समय लगेगा यह सिलसिला पुनः फिर चलेगा इस उम्मीद में। उनको ढाँढ़स बंधाने के पश्चात् अब भी जब मिल कर आती हूँ इससे उबरने में मुझे समय लगता है। अपने पर उनकी कुछ मदद न कर पाने की धिक्कार भी उठती है। कई बार यह भी लगता है कि मेरे अन्दर इस तरह हर वक्त लिखने-पढ़ने की यह छटपटाहट कब आएगी। सारी दुनियावी धंधों से फुर्सत मिलने के बाद कुछ लिख लिया तो लगता है कि इतना तो लिख लिया। समय को पकड़ कर चलने वाली अँगुलियों से जब कलम छूटती है तो कैसा लगता है। उस पीड़ा का तो बस अंदाजा ही लगाया जा सकता है। हाथ उस अदृश्य सत्ता के आगे बरबस जुड़ जाते है। हमें उनका सानिध्य मिलता रहे हैं तो इतना भी कम नहीं है।

आप पर लिखते हुए आपके व्यक्तित्व पर बात करते हुए, आपके लेखन पर बात किए बिना आपका मूल्यांकन अधूरा ही रहेगा। आप जिस जमीन पर पैर टिका कर लिखती हैं। वह आपके जीवन का ही एक महत्वपूर्ण हिस्सा है आपके काम की तरह आपका लेखन भी आपकी सांसों के भीतर ही है कहीं बाहर उसकी उष्णता नहीं है। जितना उनको करीब से जाना उनके साथ रहने का मौका मिला। उनकी कुछ रचनाओं को आकार लेते हुए देखा। उनसे सुना और कुछ अंशों को एक निगाह पढ़ा भी। बार-बार के संशोधन से गुजरते हुए भी देखा। एक एक सटीक शब्द के लिए तड़पते हुएए प्रकाशक को देने से पहले कई कई ड्राफ बदलते पन्ने दर पन्ने दोबारा लिखते हुए उनकी लगन को भी देखा है। इसी के संदर्भ में कई बार उनकी शिकायत न भी कहूँ तो उसे एक महत्वपूर्ण सुझाव तो मानती ही हूँ जिसे उन्होंने अपने वक्तव्यों में भी अक्सर उठाया है कि एक तो आज के बच्चे दूसरों को कम पढ़ते हैं। दूसरी आज के बच्चे उतनी मेहनत नहीं करते हैं जितना उनके विषय को जरुरत होती है। सिर्फ शोध करने से काम नहीं चलता है। उसको साधने-संवारने व निभाने में उससे ज्यादा श्रम की जरुरत होती है। हर काम की तरह बस जल्दी से परोस देना साहित्य नहीं है वह एक ठहराव की भी मांग करता है। बाहर से ज्यादा भीतर उतरने के बाद ही एक पाठक की तरह पढ़ने पर रचना परिपक्व आपके पास होकर लौटती है। आज कितने नए लोग हैं जो बहुत अच्छा विषय लेकर सामने आ रहे हैं, लेकिन हर बार नई रचना एक दूसरी भाषा में ढलने के लिए कितनी मेहनत की मांग करती है ये उनको अभी समझ नहीं आ रहा है, कुछ समय बाद इन्हें खुद ही लगेगा कि इस पर एक बार और आराम से काम करना चाहिए था। पर मैं बहुत आशावादी हूँ कि हमारे सामने ही हमारे काम को आगे बढ़ाने वाली एक पूरी पौध तैयार हो चुकी है। जिनका बेहतर काम आना अभी बहुत बाकी है। आने वाली पीढ़ी को आगे बढ़ाने या फिर उनको आगे बढ़ते हुए देख कर संतोष करने की उदारता आज कितने साहित्यकारों में है ये तो नहीं पता, लेकिन आपके लिए तो यह निसंकोच कह सकती हूँ। आपका साथ व मार्गदर्शन हमारे लिए अमूल्य है।

जितनी बार आपसे मिलती हूँ उतनी बार किसी न किसी रचनाकार के लिखे से आपका परिचय होगा या फिर बोलने के लिए एक नए विषय पर नोट्स लेते हुए व्यस्त मिलती। अपने लिखे हुए से ज्यादा जिसने औरों को भी उतनी ही गहराई से पढ़ा हो, पुराने से लेकर नए-नए रचानाकारों पर बात करनी हो सब उनकी उँगलियों पर प्रकाशन के वर्ष के साथ सिलसिलेवार ढंग से स्मृति में दर्ज है। जितना पुरानी रचना पर बोल सकती थी। उससे ज्यादा नई किताब की भाषा, कथ्य व तेवर पर भी आपके पास बहुत कुछ कहने को होता है। जिस तरह अपनी रचनाओं में वह भाषा के दोहराव और उसके कथ्य पर लगातार मेहनत करती हैं अगर उसकी कमी किसी कृति में दिखाई देती तो उस पर भी खुल कर एक-एक लाइन पर बात करते हुए उसका विश्लेषण करते किसी साहित्यकार का यह रूप मेरे सामने कई बार आया। अपने समय के साहित्य व् समाज के प्रत्येक बदलाव को इतनी गहराई से देखने वाले के लिए ही यह संभव है कि विज्ञापन और फ़िल्मी दुनिया के पीछे की अँधेरी पर्तों को अपने पहले ही उपन्यास 'एक जमीन अपनी' में खोल कर रख देना। यह दूर से संभव

नहीं। उसके भीतर पैठ बना ही लिखा जा सकता है। 'आंवा' जैसा विषद विन्यास का कथानक ट्रेड यूनियन की किताब पढ़कर या किसी नेता का संग साथ करके नहीं लिखा जा सकता था। उसके लिए उस दुनिया का हिस्सा बनना जरुरी तो नहीं लेकिन उनके साथ काम करके ही जाना जा सकता है। वृद्धाश्रम से जुड़ कर ही 'गिलिगड्डु' जैसा उपन्यास सामने आता है। जो अपनी जिंदगी के अँधेरे से भी किसी को रोशनी दे जाता है। परिवार की जकड़न से बाहर निकल कर इस समाज को एक राह दिखाई जा सकती है। समाज की सोच बदलने के लिए शब्दों से बाहर यथार्थ का अनुभव ही लेखन की विश्वसनीयता में काम आती है। यह चित्रा जी के व्यक्तित्व व कृतित्व से जुड़ कर ही जाना जा सकता है। विमर्शों के आंदोलन से बहुत पहले किन्नर समाज की विसंगतियों से जिसका मन लिखने से ज्यादा ज्यादा बार-बार पसीजता रहा हो पोस्ट बॉक्स/203 नाला सोपारा जैसा उपन्यास वही लिख सकती थी, कथा विन्यास बेदना रुद्ध से जितना रुलाने वाला है। उसकी भाषा-शैली भी उतनी ही मारक। साहित्य अकादमी पुरस्कार के समारोह में जिस तरह उन्होंने इस उपन्यास की बनावट को लेकर अपनी बात रखी, वह वक्तव्य उनके लेखकीय दायित्व के साथ ही उनके व्यक्तित्व की सहजता को अनायास सामने लाता है।

मैंने तो अपने सामने इस उपन्यास को आकर लेते हुए देखा है। देखा था बिन्नी के साथ उनको बार-बार ऊब डूब होते हुए। जैसे वो उनके सामने बैठा हुआ तार-तार हुए मन का एक-एक रेशा खोल कर दिखा रहा हो। लिखो न माँ यह भी लिखो। उपन्यास हाथ में आने से पहले ही उनकी आँखों से एक-एक दृश्य को देखा है।

छपने के बाद पढ़ने की हिम्मत जुटाने में समय लगा। प्रत्येक पृष्ठ के बाद लगा अब नहीं पढ़ सकती। उठा कर रख देने का मन। लेकिन जिन पर बीती है उनका क्या? यह सोच ही डबडबाई आँखों से पूरा उपन्यास पढ़वा ले गई। इसका असर आज भी इतना है कि आज भी रेड लाइट पर किसी किन्नर को जब हाथ पसारते हुए दीदी का संबोधन सुनती हूँ तो ऐसा मन होता है कि इनको इस उपन्यास को

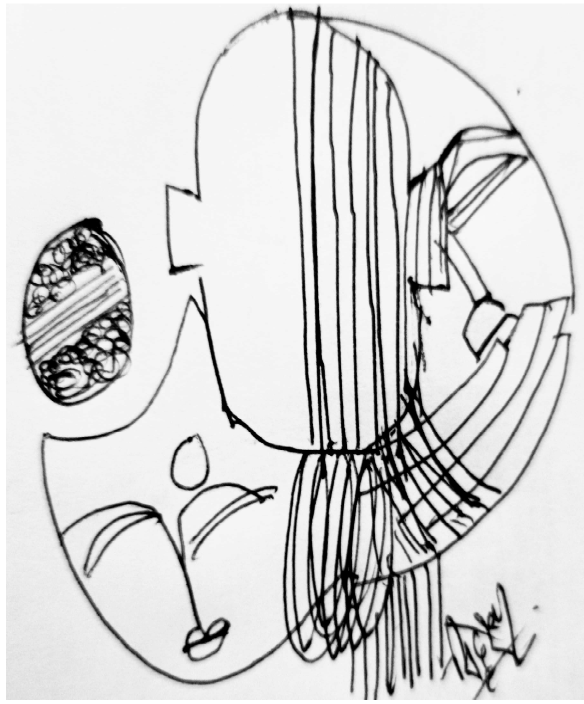

पढ़ने के लिए दूँ। और कहूँ कि एक बार अपने को भी पढ़ कर देखों कुछ नया रास्ता खुले। माँ को एक बार कहा भी तो बुझे मन से बोली इन सबने भी तो यहाँ खड़े होने से पहले कितना कुछ तो झेला ही होगा। हम तो इतने वर्षों में इन्हें इस लायक भी नहीं बना सकें की ये किसी ऑफिस या स्कूल-कॉलेज में नौकरी कर सम्मान से जीने के हकदार होते। लिख ही सकती थी वही किया। कुछ बदलाव तो हुआ है। पर वह अनुपात में इतना कम है उनकी इस टीस को कम नहीं किया जा सकता है। उनके साथ ही हमारी सबकी इस साध को पूरा होने में समय तो लगेगा ही।

एक रचनाकार जितना अपने लिखे से बाहर होता है उतना ही उसके भीतर होता है। भोगे हुए की तो नहीं लेकिन अनुभव का अपना स्थान है। समाज में मौजूद समस्याओं से आँख चुरा कर नहीं बल्कि उसके भीतर पैठ बना कर ही लिखा हुआ ज्यादा विश्वसनीय पठनीय होता है। 'आंवा' और 'नकटोरा' जैसे बड़े फलक के उपन्यासों के साथ ही चित्रा जी की लघुकथाओं तक पर यह बात लागू

होती है। कोई भी विषय आपने उठाया हो सभी महत्वपूर्ण और सामयिक है। सभी अछूते और प्रासंगिक। कोई दोहराव नहीं।

जिन्हें उनका सानिध्य नहीं मिला या एक पाठक के तौर पर जानने के बाद उसके संघर्षमय जीवन, साहित्य समाज की उठा-पटक, बदलते समय के बीच दोहरे चरित्र या रिश्तों की उलझी गांठ के बीच उनको सुलझाते हुए अनागत स्थितियों में कुछ रचनाएँ कुछ बचा कर रख पाने के साथ ही कई-कई स्तर की जिम्मेदारियों को किस तरह निभाया जा सकता है को उनके ही उपन्यास 'नकटोरा' से सब कुछ नहीं तो बहुत कुछ उस कालखंड को जानने समझने की दृष्टि मिलती है। जो जानते है। उनके लिए अ.बस। जैसे नामों या चरित्रों की परिधि को जाननाए लांघना मुश्किल नहीं है। एक व्यक्ति के रूप में बहुत कुछ व्यक्तिगत हो सकता है लेकिन एक साहित्यकार होने के नाते उसे दोधारी तलवार पर भी चलना होता है। चरित्र और नैतिकता की एकात्मकता को साधना किसी आत्मकथात्मक रचना को जितना ऊपर उठा सकता है। उसका जरा सा चुकना उतना ही नुकसान भी करा सकता है। कितना कुछ तो अनावृत होता है दोहरे मानदंडों को लेकर जीने वालों के स्व और साहित्य से। जिसे आपने अपनी बेबाकी से इस उपन्यास में अपनी बरसों की मेहनत से साध कर एक प्रतिमान रच दिया है। जो भाषा, शैली और अपनी प्रस्तुति में किसी प्रत्यक्ष विधा में बहुत आसानी से रख देने से बाहर है उसके लिए तो साहित्य को अपनी सीमाओं का विस्तार करना होगा। एक और महत्वपूर्ण व उल्लेखनीय कार्य जिसकी बात किए बिना मैं आगे नहीं बढ़ सकती। जिसे उन्होंने अपने बच्चे की प्यार से पोषित पल्लवित करते हुए उसे उस मुकाम पर ला खड़ा किया है कि वह किसी के लिए भी प्रेरणादायक हो सकता है।

वह है साहित्यिक संस्था 'चेतनामयी' को बिना किसी सरकारी मदद के दो दशक से ज्यादा समय से संयोजित करते हुए हर महीने एक अच्छी पठनीय व गंभीर रचना पर परिचर्चा आयोजित करवाना। लेखक, आलोचक व संस्था की पाठिकाओं को खुला मंच प्रदान करवाने के साथ ही आपस में तीनों का सीधा संवाद करने का अनौपचारिक माहौल देना। इसकी कितनी ही सदस्याएँ एक गंभीर पाठक ही नहीं उतनी ही संजीदा आलोचक व रचनाकार भी हैं। तमाम कोलाहल के बीच क्लब या फैंसी पार्टी से अलग एक सार्थक मंच किसी वरदान से कम नहीं है। जिन्होंने किसी भी रूप में इस संस्था में अपनी भागीदारी निभाई है, उनका अनुभव मुझसे भिन्न नहीं होगा। जहाँ जाकर आप अपने को और ही रंग में देखते हैं। बिना किसी विवाद के इतनी सृजनात्मक परंपरा को सुचारू रूप से पूरी ऊर्जा के साथ आज तक उतनी ही कुशलता से चलाए रखने का श्रेय आपको ही जाता है।

आपका जीवन किसी व्यक्ति के लिए प्रेरणास्पद, साहित्यकार के लिए अनुकरणीय और फिल्मस्कालर के लिए गंभीर विषय व शोध का विषय हो सकता है। प्रेम-विवाह के लिए सारे ऐश्वर्य को छोड़ पिता से न सिर्फ बगावत अपितु जिसके लिए उन्हें छोड़ा उसके साथ जीवन-निर्वाह के लिए भी कोई समझौता नहीं किया एक दूसरे के सम्मान का ख्याल रखते हुए अपने प्रेम को अपनी ताकत बनाए साहित्य एंव समाज में एक दूसरे के पूरक बने यह क्या कंटीली राहों पर सहज संभव रहा होगा। यह भी तो आज की पाठक पीढ़ी के लिए किसी पठनीय अनुभव से कम नहीं है। आप दोनों के विवाह में जिस पाँच रूपये के मोंगरे की वह माला जिसके आदान-प्रदान से संबंधों का यह गठजोड़ हुआ था। उसकी खुशबु से यह रिश्ता आज भी महक रहा है। क्या यह एक दिव्यास्वप्न की तरह नहीं है। हममे से कितनो के पास आज भी यह सुगंध बची हुई है। यह भी देखने के लिए नहीं तो महसूस करने का विषय तो है ही। मुझे तो उस नायाब धरोहर को देखने पर उसे धीरे-धीरे सहलाते हुए उसे आँख के पास ले जाकर उनका कुछ क्षण खो जाने का वह दृश्य किसी परिभाषा से परे बस आँखों में समाये रखने के अनुभव से तृप्त करता है। इसके आगे इस व्यक्तित्व पर गर्व, प्रेम, सम्मान या अभिभूत होना मेरा निजी सुख ही रह जाता है। इस अमूल्य पल को चुप, निर्वाक, निस्तब्ध अपने लिए बचा कर रखना।

नारी विमर्श का एक सटीक और संतुलित पाठ भी है : आवां (चित्रा मुद्गल)

–दिविक रमेश

बात पहले की है। भारतीय मिथकीय पात्र और लेखिकाओं का नारी विमर्श में डूबा हुआ था। यूं मेरे पास, उससे भी बहुत पहले, अपने काव्य नाटक 'खण्ड-खण्ड अग्नि' के सिलसिले में वाल्मीकि रामायण के अग्नि परीक्षा प्रसंग की सीता का अपने समय के लिहाज से सशक्त नारी विमर्श भी पूर्वपीठिका के रूप में सामने था।

हिन्दी की जिन लेखिकाओं के विचारों और रचनाओं से परिचित था उनकी ओर भी ध्यान गया। मैंने हमेशा से निर्मला जैन, कृष्णा सोबती, मन्नू भण्डारी, मृदला गर्ग, चित्रा मुद्गल जैसी लेखिकाओं के निजी जीवन, चिन्तन और रचनागत व्यवहार में नारी-विमर्श का एकांगी नहीं अपितु सर्वांगीण, संतुलित एवं सटीक पाठ पाया है। जब चित्रा जी का आवां पढ़ने का अवसर मिला तो उनके प्रति मेरी धारणा और भी अधिक पुख्ता हो गई और कहीं प्रसंगवश उसे अपने एक लेख में प्रकट भी किया। आज थोड़ा विस्तार में जाने का मन है।

ठहरिए, पहले अपने अब तक अनुभव के बलबूते यह भी बता दूं कि नारी की अस्मिता और उसके सशक्तीकरण संबंधी अपने विचारों और चिन्तन में स्पष्ट और मजबूत चित्रा जी आपसी व्यवहार में मनुष्योचित मृदुता और शालीनता को कभी नहीं छोड़तीं। मैंने उन्हें एक पत्नी के रूप में अपने अशक्त होते गए पति (पुरुष के जिस रूप पर नारी विमर्श सबसे अधिक घटता नजर आता है) के साथ हमेशा पूरी तरह मन से खड़ा पाया है। अनुमान लगाया जा सकता है कि पुरुष के अन्य रूपों के साथ भी वे ऐसी ही खड़ी मिलती होंगी। उनके समक्ष प्रतिरोध और प्रतिशोध की संकल्पनाएँ पारदर्शी हैं। इस संदर्भ को फिलहाल यहीं छोड़ता हूँ।

बहुत सोच-विचार के बाद मुझे, हिन्दी साहित्य में जो भी विमर्श चल रहे हैं उनमें 'प्रतिरोध' की राह उचित लगती है। प्रताड़ित एवं पददलित मनुष्य के जीवन में प्रतिशोध, भाव के रूप में कितना ही तात्कालिक और स्वाभाविक भी क्यों न हो लेकिन राह के रूप में उपयुक्त नहीं लगता। किसी को ऐसा होना चाहिए उस रूप में ढालने के लिए प्रतिरोध ही प्रतिशोध की अपेक्षा अधिक कारगर सिद्ध हुआ करता है और दर्शन की भूमिका तक पहुंचने के योग्य हो जाया करता है।

बात को नारी विमर्श के एक प्रमुख आयाम 'देह मुक्ति' के संदर्भ से समझी जा सकती है। नारी-विमर्श और देह विमर्श का चोली दामन का साथ माना गया है। देह मुक्ति की बात कही और समझी जा रही है। बहस यह भी है कि देह मुक्ति वस्तुतः देह से परे जाना है। देह से परे जाना क्या है? मान लो एक स्त्री का बलात्कार होता है। स्पष्ट है कि पुरुष (बलात्कारी) दोषी है। लेकिन एक सोच के अनुसार दाग स्त्री की देह को लगता रहा है। एक और उदाहरण लीजिए। भारतीय संदर्भ में। दो प्रेमी हैं। उनके देह संबंध स्थापित हो गए।

किसी कारण विवाह नहीं हुआ। अब लड़की को प्रायः यह सलाह दी जाती है कि वह अपने देह संबंध को छिपाए। नहीं छिपाएगी तो, यौन शुचिता के हिमायती होने के कारण पुरुषों से ताने सुनती रहेगी। अपवित्र कहलाएगी। ऐसे में देह मुक्त अनिवार्य हो जाती है और देह से परे जाने का अर्थ भी समझ में आता है। अर्थात सारी पवित्रता, शुचिता आदि का ठेका देह से जोड़ देने वाली सोच का विरोध। लेकिन स्त्री देह का ऐसा उपयोग जो मेनका का विश्वामित्र की तपस्या भंग करने के लिए किया गया था उसकी विडम्बना को गहराई से समझना होगा।

ऐसी स्थिति में मेनका का विद्रोह मुखरित होना चाहिए और उसे समझना चाहिए कि उसकी देह को अपवित्र करने की साजिश की वह शिकार हुई है। इस संदर्भ में देह का क्या बिगड़ता है कह कर पुरुष को क्षमा या उपेक्षित नहीं करना चाहिए। मेरे अध्ययन के दायरे में ऐसी रचना भी आई है जिसमें केन्द्रीय चिन्ता भले ही स्त्री देह के स्वराज की लगती

हो लेकिन एक पुरुष से प्रतिशोध के लिए दूसरे अधिक सशक्त पुरुष को पहले पुरुष से पीड़ित स्त्री के द्वारा सेक्स मुक्ति के नाम पर आनन्द (संजीवनी) देकर अपने पक्ष में करना और प्रतिशोध लेना भले ही युद्ध और प्रेम में सब जायज है जैसी स्थापना के अनुकूल हो लेकिन सर्वथा ग्राह्य नहीं है भले ही अनुभव के स्तर पर (अपवाद की तरह) यह सच्ची घटना से प्रेरित प्रसंग ही क्यों न हो।

सोचना होगा कि इसे देह की स्वतंत्रता कहें या देह का कपट अथवा देह की राजनीति या कुछ और। कभी-कभी इसी विमर्श के अन्तर्गत एक पत्नी का अपने पति से प्रतिशोध दूसरे पुरुष के प्रति संजीवनी के रूप में देह समर्पण के रूप में भी दिखाया जाता है। लेकिन याद रखना होगा कि सब एक जैसे नहीं होते जैसी धारणाओं के बावजूद दूसरे पुरुष के 'पुरुष' न हो जाने की गारंटी नहीं होती। अतः पितृसत्तात्मक व्यवस्था से मुक्ति की राह ऐसी देह मुक्ति हो सकती है इस पर भी संदेह ही किया जा सकता है।

वस्तुतः स्त्री विमर्श की राह प्रतिशोध से प्रतिरोध की ओर होनी चाहिए। तब स्वछंदता या स्वेच्छा भी स्वीकार्य होगी। अन्यथा पुरुष को पुरुष बनाए रखना ही कहलाएगा। मेरी निगाह में स्त्री विमर्श की एक बहुत ही सशक्त कृति चित्रा मुद्गल जी की आवां है। बकौल चित्रा जी, विश्वद्रोह संघर्ष और कायरता, मनुष्य को ये सभी चीजें घर से वातावरण से ही मिलती हैं। मुझे भी घर के माहौल ने विद्रोही बनाया। संयोग देखिए कि इसी विद्रोह ने चित्रा जी को रचना संसार की राह भी दिखाई। पहली कहानी स्त्री-पुरुष संबंधों पर थी जो 1955 में प्रकाशित हुई। बहुचर्चित उपन्यास 'आवां' के लिए उन्हें व्यास सम्मान से नवाजा जा चुका है। चित्रा जी के, उनकी सोच को सामने लाने वाले स्त्री पात्र अपने अधिकार और स्वतंत्रता की लड़ाई में गजब की मजबूत इच्छा शक्ति वाले होते हैं। उनकी एक कहानी 'लकड़बग्घा' के माध्यम से भी इस तथ्य को बखूबी समझा जा सकता है।

मातृसत्तात्मक समाज से पितृसत्तात्मक समाज की यात्रा भी इसी पृथ्वी पर घटी है। पुरुष वर्चस्व न आसमान से टपका है और न ही जन्मजात है। जैसे स्त्री पैदा नहीं होती,

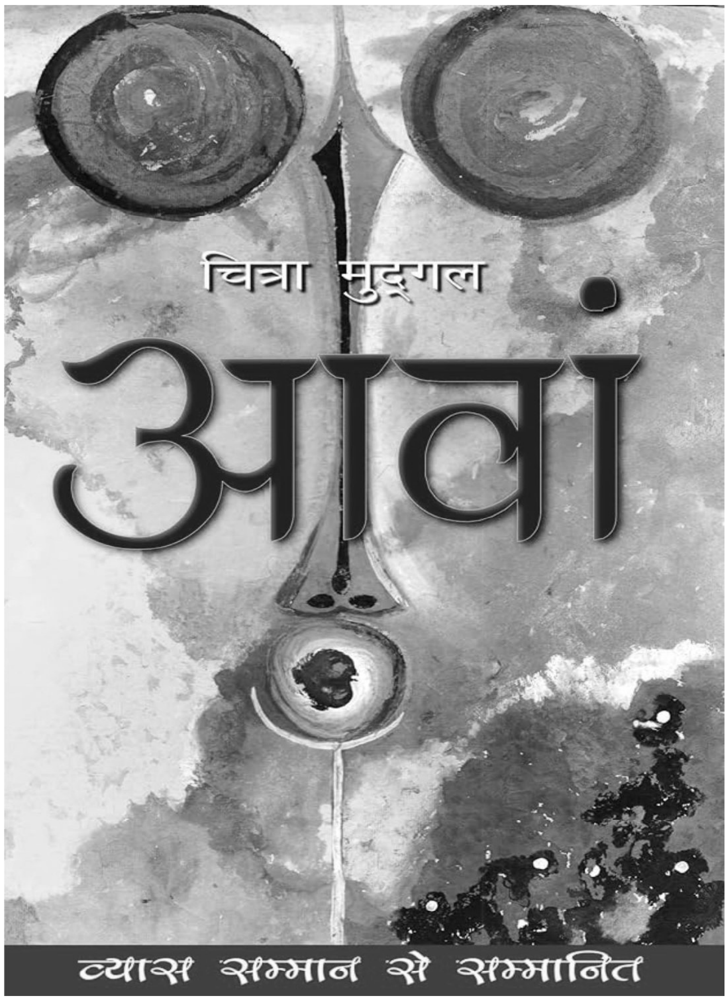

बनायी जाती है उसी प्रकार पुरुष भी पैदा नहीं होता, बनाया जाता है। विडम्बना यह है कि इसे बनाने में जाने-अनजाने पुरुष और नारी दोनों का हाथ होता है कमोबेश। अतरूमुझे तो वह सोच अधिक उपयुक्त लगती है जिसकी तहत पुरुष

वर्चस्व और उसकी खामियों को पितृसत्तात्मकता में देखा जाता है।

वोल्गा से गंगा को इस दृष्टि से भी पढ़ा जा सकता है। परम्परा के रूप में तुलसी का कलियुग वर्णन, महादेवी वर्मा की श्रृंखला की कड़ियाँ, मैथिलीशरण गुप्त की साकेत वाली ऊर्मिला और यशोधरा, सुभद्रा कुमारी चघ्हान की वीरांगना लक्ष्मीबाई का गुणगान, प्रेमचन्द के उपन्यास, जैनेन्द्र की कृतियाँ और कितनी ही अन्य पहले की कृतियों को पढ़ा और समझा जा सकता है। हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि अपने समय की किसी भी उत्तम सोच या उपलब्धि की पूर्व में तैयार हो चुकी एक पूर्वपीठिका हुआ करती है।

माना गया है कि नारीवाद की प्रेणता वजीनिया वुल्फ थीं जिनका लेखन काल 1915 से 1940 है। यह समय भारतीय नवजागरण का भी है और भारतीय नारी जागरण का भी। 1818 में राजा राममोहन राय ने सतीप्रथा विरोध किया था। 1829 में सती प्रथा गैरकानूनी घोषित हुई। विवेकानन्द, दयानन्द सरस्वती आदि ने स्त्री शिक्षा पर ज़ोर दिया। 1857 में अमेरिका में पुरुष नारी के समान वेतन को लेकर हड़ताल हुई थी।

1908 में 'वीमन्स फ्रीडम लीग' की स्थापना हुई। 1911 में जापान में आन्दोलन हुआ। 1951 में संयुक्त राष्ट्र की महासभा में महिलाओं के राजनीतिक अधिकारों का नियम पारित हुआ। 1905 में हिन्दी का पहला स्त्री काव्य संकलन "मृदुवाणी" मुंशी देवी प्रसाद के द्वारा प्रकाशित किया गया जिसमें 35 कवियित्रियां संकलित की गईं। 1933 में "हिन्दी काव्य कोकिलाएं" और 1938 में "स्त्री कवि संग्रह" प्रकाशित हुए।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की "बालबोधिनी" पत्रिका अपना महत्व है। अगर पूर्व और पर के संदर्भ से अलग कर अपने स्वायत्त रूप में तुलसी की पंक्ति 'नारी मुई गृह संपति नासी, मूड मुड़ाइ होंहि सन्यासी' को पढ़ा जाए तो घरवाली नारी का अपार महत्व समझ में आ जाता है। यहाँ सन्यासी होने का महत्व नहीं पुरुष की दुर्गति के प्रति संकेत है। जिस संदर्भ में यह पंक्ति कही गई है उसकी संकीर्णता का तो मैं भी पक्षधर नहीं हूँ। गुप्त जी की यशोधरा सीधे-सीधे प्रश्न करती है सिद्धि हेतु स्वामी गये, यह गघ्रव की बातय/पर चोरी-चोरी गये, यही बड़ा व्याघात/ सखिए वे मुझसे कह कर जाते/कह, तो क्या मुझको वे पगबाधा ही पाते ध्यान दिया जाए कि पुरुष वर्चस्ववादी समाज में एक नारी अपने 'स्वामी' को प्रश्नों के घेरे में ला रही है। हाँ 'पग बाधा' वाली बात मेरी निगाह में भी पुरुषवादी मानसिकता का परिणाम है। यह पंक्ति नारी को पुरुष की समक्षता से थोड़ा नीचे ले आती है। जब सही अधिकार की बात हो तो 'बाधा' के बारे में नहीं सोचा जाता।

महादेवी वर्मा का मत काफ़ी तर्क सम्मत लगता है जब वे लिखती हैं : "पुरुष के द्वारा नारी चित्रण अधिक आदर्श बन सकता है, किन्तु यथार्थ के अधिक समीप नहीं। पुरुष के लिए नारीत्व अनुमान है नारी के लिए अनुभव।" मुख्य प्रश्न यह हो सकता है कि आखिर पुरुष में वे कौन से सुर्खाब के पर लगे हैं जिनके कारण स्त्री वही हो जैसा पुरुष चाहता है। और यह चाहना भी सत्तात्मक या दम्भपूर्ण हो। अवधारणात्मक या इच्छाधर्मी तक नहीं। नारी-विमर्श यहीं से शुरु होता है।

नारी के अपने होने यानी उसकी अस्मिता की पहचान और अर्जन के दायरे में उसकी तकलीफ़ें, उसके सपने, उसका चिन्तन, उसका विद्रोह, उसका अधिकार, उसके होने का स्वीकार, उसका आत्मविश्वास, अपने बूते पर खड़े होने की ताकत, उसके प्रतिरोध ही नहीं अपितु उसके प्रतिशोध, उसकी हार जीत, और उसकी उपलब्धियाँ आदि सब आती हैं और साहित्य में नारी विमर्श यही है अथवा होना चाहिए।

नारी-विमर्श पुरुष का नहीं बल्कि नारी की अस्मिता को रोंदने-कुचलने वाली पुरुष मानसिकता का विध्वंसक है या होना चाहिए। उसका सशक्तिकरण है। नारी विमर्श अन्ततः 'नारी'' को 'वहीं कटघरे में खड़े पुरुष' के स्थान पर स्थापित करना नहीं है अपितु 'कटघरे में खड़े पुरुष' को नारी का उपयुक्त दर्शन कराना और मनवाना है। बेजगह कर दी गई नारी को उसकी पर लाना है। स्त्री-पुरुष को संबंधों के कुछ ही नहीं बल्कि तमाम रूपों और तमाम सामाजिक स्थितियों में रखकर स्त्री को बुनियादी स्तर पर उसकी जगह दिलाना है।

आवां मेरे ऊपर आए चिन्तन की पुष्टि में खड़ा एक सशक्त गवाह है। या कहूँ एक प्रेरक स्रोत है। सजग पाठक जानते होंगे कि आवां मात्र नारी विमर्श की ही कृति नहीं है बल्कि इसमें और बहुत से जरूरी संदर्भ भी आए हैं, जैसे श्रमिक जीवन, श्रमिकों को लेकर ट्रेड यूनियन के बहुत से आयाम, क्रांति का आलाप जपते-जपते दलित, शोषितों, वंचितों का मसीहा बनने वालों का सच, दलित विमर्श, उलझे-सुलझे रिश्ते और उनकी कुत्सित तथा बिडम्बनापूर्ण यथास्थितियाँ, मनुष्यता की विभिन्नअनुकूल-प्रतिकूल परिस्थितियों में खोज, अपने समय की राजनीतिक हलचलों जैसे राजीव गांधी की हत्या आदि की झलक इत्यादि, लेकिन मेरी निगाह फिलहाल इस उपन्यास में आए नारी विमर्श पर टिकी है।

यूँ राजनीतिगत माहौल भी नारी विमर्श से अछूता नहीं है। एक दलित पात्र पवार जब अपनी राजनीतिक महत्वाकांक्षा ब्राहम्ण लड़की नमिता से विवाह करके पूरी करने की बात करता है तो नमिता की प्रतिक्रिया का जायजा लीजिए "जिस लड़की को चाहता है कोई, जिसे वह अपने जीवन संगिनी के रूप में देख रहा, केवल वस्तु है उसके लिए? राजनीतिक महत्वाकांक्षियों के लिए संबंधों की गहनता खांचे भर हैं चपड़ के संकेत कर दूं कि यहाँ नारी विमर्श भी एक रेखीय नहीं है, अपितु वह अनेक कितने ही संदर्भ से गुथा लिपटा है।

अतः इस ओर सोचने पर और भी अधिक जिज्ञासा है। इससे पहले कि इस संदर्भ में अपनी मूल बात पर आऊँ, बता दूं कि इसमे एक पात्र स्मिता है जो एक शराबीए मटका किंगए पत्नी को पीटने वाला आततायी पति ही नहीं बल्कि अपनी ही पुत्री को देह मानकर व्यभिचार करने वाले पिता की बेटी है। ऐसे पिता से मुक्ति उसकी बाध्यता बन गई है। स्मिता एक संतुलित सोच की लड़की है लेकिन 'बाप आखिर बाप है' की चली आ रही सोच का अतिक्रमण उसके लिए जरूरी हो गया है। वह उपन्यास की प्रमुख पात्र नमिता को कहने पर विवश है कि 'शराब से हम लड़ सकते हैं ए शैतान से नहीं। तुम से क्या छिपाऊं, ताई (बड़ी बहन) राक्षस के साथ अकेली घर में रहने से डरती है।' यह बेटी अपने क्रुर पिता को का नेस्तनामूद करने पर उतारू है। उसे अपने ननिहाल वालों से भी शिकायत है जिन्होंने ऐसे क्रूर और राक्षस पिता से अपनी बेटी (स्मिता की मां) का ब्याह किया।

यह अलग बात है कि उसके मटका किंग पिता की हत्या किसी अन्य ने कर दी और नमिता के शब्दों में वह पितृहत्या से बच गई। वस्तुतः यह पिता-पुत्री के रिश्ते में से क्रूर पुरुष पिता के प्रति सजग बेटी (स्त्री) की सोच के माध्यम से सटीक नारी विमर्श है। इसके साथ ही, आत्मालोचन की सी शैली वाला यह विचार भी जोड़ दूँ "उसे स्मिता की बहन" बरबाद होने देने में स्वयं उनकी "माँ की" भूमिका कम नहीं।

उस क्षण उन्हें (पिता को) दुष्कृत्य का प्रतिकार करना चाहिए था, मगर वे पति की प्रतिष्ठा पर आँच न आने देने के लिए सावित्री बन उनके अक्षम्य दुर्गुणों पर डाले रहीं। लेकिन जैसा पहले भी संकेत दिया जा चुका है, यह उपन्यास एकांतिक सोच का कायल नहीं है। यहीं नमिता भी है जो अपने पिता के प्रति पूरी तरह प्रतिबद्ध है। यह जानकर और वह भी खुद अपने पिता के मुख से कि किसी अन्य औरत से उसके पिता की एक संतान है जो उसकी सगी बहन है, उसकी प्रतिक्रिया है "सुनंदा के पिता होकर बाबूजी क्या उसके बाबूजी नहीं रहे? चेहरे-मोहरे में तो कोई अंतर नहीं आया फिर...। यहाँ पाठक चौकेगा जरूर। अर्थ की अनेक पर्तों से जूझने को विवश भी होगा। एक ओर सोचेगा कि पिता और सुनंदा की माँ के बीच आपसी स्वीकृति रही होगी, इसलिए वह अपनी माँ की दृष्टि से अनैतिक हो सकता है लेकिन स्वाभाविकता की दृष्टि से इतना बड़ा अपराध नहीं।

इत्यादि। यहाँ यह बताना भी जरूरी है कि स्मिता जैसी सचेत नारियाँ पुरुषवादी क्रूरताओं और धारणाओं की विरोधी हैं अन्यथा पुरुष उनकी जिन्दगी का आनन्ददायी प्राणी भी है। स्मिता की मित्रता पहले शरत से थी जिसे उसे उसकी अपनी तरह की मूर्खता के कारण छोड़ना पड़ा। लेकिन वह रोने-पीटने, सकुचाई-लज्जित भावुक नारी नहीं है। वह नया दोस्त विक्रम खोज लेती है। नमिता और उसके बीच बहुत

ही दिलचस्प संवाद होता है जिससे स्मिता के माध्यम से अपने होने या स्व के प्रति स्वतंत्र और सचेत नारी का विमर्श सामने आता है—

"(नमिता)" शरत से मित्रता खत्म

"(स्मिता) खत्म ही समझ। बेवकूफ है साला जाहिल..."

"विक्रम आज का सच है।"

इसके बाद जब नमिता शरत को छोड़ने का कारण विस्तार से जानना चाहती है तो वह शरत और अपने बीच हुई बातचीत का किस्सा बताती है जो तब हुई जब स्मिता के यह कहने पर, शरत! बड़ी जोर से तुम्हें प्यार करने का जी हो रहा है। चलो, कहीं किसी होटल में एक सस्ता सा कमरा लेकर मिलते हैं "शरत अपने एक दोस्त भानु के कमरे में अकेले मिलने की बात करता है। अब बातचीत जानिए जिसमें पहला संवाद स्मिता (नारी लेकिन आज की सचेत नारी का है)

"...और सुनो एक काम करो।"

"बोलो।" उमगते हुए शरत ने पूछा।

"कंडोम का पैकट साथ में लाना न भूलना।"

"(नमिता से)' शरत मेरी बात सुनकर सकपकाया।'

"कहाँ मिलेगा कंडोम?"

"दवाओं की दुकान पर!"

"लेकिन..."

अब कौन-सी दुविधा हो गई?

"उसे इस्तेमाल कैसे करते हैं, मुझे मालूम नहीं।"

"कंडोम इस्तेमाल करना नहीं आता! जो कुछ और करना होता है उसे भी जानते हो या नहीं?" चिढ़ छूटी उस पर।

"बहुत अच्छी तरह! कोई शिकायत नहीं होगी तुम्हें।" सफाई दी पट्ठे ने।

"(नमिता से) मेरा तो पारा आपे से बाहर हो उठा।'

"मैंने कहा, मुझे होगी। इसलिए होगी गधे की औलाद कि मैं तेरे बच्चे की कुंवारी मां नहीं बनना चाहती और जो लड़का कंडोम इस्तेमाल करना नहीं जानता, वह मेरा प्रेमी होने के काबिल नहीं। बैठ घर में।" गुस्से से फोन पटक दिया मैंने।

"हर दूसरे तीसरे रोज पगलाया-सा फोन खटखटता रहता है। मेरी 'हेलो सुनते ही रंडीरोना शुरु। फोन पकड़े में निशब्द उसकी गिड़गिड़ाहट सुनती रहती हूँ। कुछ देर बाद फोन रख देती हूँ। वैसे तो हरामखोर मर्द रोते नहीं...साआल्ले, रुलाने पर ही रोते हैं, रुलाने वाला चाहिए।"

निश्चित रूप से ऊपर का किस्सा बहुतों को अटपटा लगेगा और नमिता के सुर में सुर मिला कर कहेंगे कि यह प्रेम समझ के बाहर है, लेकिन इसके गहरे में जाकर चिन्तन किया जाए तो अन्ततः नारी सशक्तिकरण की गंध ही पाएंगे। नमिता भी अपने आपको श्रमिकों का बहुत बड़ा हितैषी समझने वाले क्रांतिकारी और अपने पिता के मित्र अन्ना की दी गई बहुत जरूरी नौकरी को ठुकराती है क्योंकि "कभी-कभी नघ्करी से भी ज्यादा जरूरत होती है अपने सम्मान की रक्षा।" उपन्यास में उम्र में कहीं ज्यादा अन्ना की नमिता के प्रति अकेले केबिन में जो हरकत दिखाई गई है वह विचित्र है अश्लील है लेकिन बलात्कार नहीं लगती। अनूठी। विस्तार से फिर कभी।

वैसे पुरूषवादी सोच के चलते औरत के मातृत्व की अनिवार्यता, अर्थी को औरत के द्वारा कंधा देने अथवा क्रियाक्रम करने पर सवाल आदि के माध्यम से भी नारी चेतना के मसले बखूबी सामने आए हैं। चोट उस नारी विरोधी सोच पर भी की गई है जिसके चलते नारी की आत्मनिर्भरता की भी गलत संदर्भ में, पुरुष के वर्चस्व के हित में व्याख्या करने की कोशिश की जाती रही है यह सरासर लड़कियों का अपमान है कि वे इसलिए आत्मनिर्भर बनें कि उन्हें एक अदद अच्छा घर वर मिले। आत्मनिर्भर लड़की को घर बार साधारण भी मिले तो क्या फर्क पड़ता है? न भी ब्याह करे तो कौन सी आफत नौकरी करे, खुश रहे। गौर इस कथन पर भी किया जाए आत्मनिर्भर होने की परिभाषा है, स्वयं के बुद्धि विवेक का उपयोग, न कि पुरुषों के समक्ष आर्थिक सक्षमता। साफ है कि यहाँ जोर उचित मानसिक बदलाव पर है, निरी भघतिक सम्पन्नता पर नहीं। और गौर जरा इस कठिन प्रश्न भी करते चलें जो चली आ रही सोच को हतप्रभ और क्षुब्ध कर सकता है लेकिन सही दिशा में सोचने पर विवश करता है जननी होना उसे गुलाम

बनाए रखने की शर्त हो तो मजबूरी से स्वयं को मुक्त कर लेना उसकी अनिवार्यता नहीं? क्यों झेले वह सब जो उसे मनुष्य की श्रेणी से अपदस्थ करता हो " पति-पत्नी के बीच देह संबंध स्वाभाविक और मान्य हैं लेकिन यदि संबंध बलात्कार की श्रेणी में आ जाए तब? तब चित्रा जी नमिता के कार्यालय की साथी गौमती से कहलवाती हैं पति क्या होता है, आधिकारिक बलात्कारी! अथोराइडज़ मैंने अशोक को उस अधिकार से वंचित रखा है कि जब मन किया, बीबी सो रही हो, जग रही हो, काम में व्यस्त हो, मरजी हो, न हो उठाकर बिस्तर पर पटक लिया...। जरा गलतफहमी की फिलोसफी पर गघर कर लिया जाए जो बहुत हद तक नारी-चेतना की पक्षधर भी हे और तर्क सम्मत तथा व्यवहारिक भी देह को लेकर अंतर्व्याप्त रूढ़ि से मुक्त होने का सब से कारगर उपाय है, उसे चर्चा का विषय बना लो। तुम्हें लगता होगा कि मैं बहुत महत्वकांक्षी स्त्री हूँ। वास्तव में में ऐसी नहीं हूँ। यह मेरे लिए उन्माद का विषय नहीं। इच्छा हो आए, बात अलग, वरना बगल में लेटे हुए हृष्ट-पुष्ट पति को अशोक को धरती हिलाऊ हस्त मैथुन करना पड़ता? उतने मतलब के लिए एखुआ ही जा सकता है। उपन्यास में स्त्री के विवाह की जरूरत पर भी कुछ न कुछ विचार किया गया है। माना गया है कि विवाह हो जाए तो ठीक लेकिन न हो पाए तो कोई बड़ी आफत नहीं आ जाती। नमिता का पवार की मां से कहा गया यह वाक्य देखिए पांव पर खड़ी हूँ अपने। खड़ी रहने को दृढ़ हूँ। मुनिया और छुन्नु को आत्मनिर्भर बनाना है। ब्याह का क्या है, हो जाएगा। नहीं हो पाया तो मुझे नहीं लगता कि बिना ब्याह के मेरी सारी दुनिया उजड़ जाएगी। एक अन्य सशक्त पात्र सुनन्दा तो और भी आगे बढ़कर कहती है मेरा मातृत्व ब्याह के टुच्चे प्रमाणपत्र का मोहताज नहीं। नारी में, मनुष्योचित अपने अधिकारों के प्रति सचेत रहते हुए अपने निर्णय खुद लेने की क्षमता से लघ्श होना एक सही नारी विमर्श है, यह बात इस उपन्यास में बखूबी रेखांकित हुई है। अकेले और सामूहिक दोनों ही स्तरों पर। पुरुष या पुरुषों के साथ-साथ। आगे या पीछे नहीं। सोच की खूबसूरती यह है। एक बड़े परिप्रेक्ष्य में इसी बात को यूं समझा जा सकता है बाध्यता यस्वेच्छा के विरुद्ध करनेद्ध से व्यक्ति का उन्मेष कुंठित होता है। स्वाभाविक प्रकिया है। प्रत्येक युवा हृदय के कुछ सपने होते हैं। एक आवां होता है आंच से दहकता जिसकी पकावट से वह आकांक्षा की भीति उठाता है। छाजन छाता है।ष् उपन्यास की प्रमुख पात्र नमिता को काम मिला था नारियों को जागरूक करने का। जिस उत्साह, प्रतिबद्धता से वह स्त्रियों को जागरूक करने, पीड़ित स्त्री के हक में उसके पास पहुंचने के लिए चाली नुमा झोंपड़ियों में जाती है यह भी अपने ढंग से नारी-विमर्श अर्थात नारी सशक्तिकरण का ही एक रूप है।

वस्तु ही नहीं भाषा लहजे आदि के स्तर पर भी, पुरुष वर्चस्विता पर हावी होते नारी चेतना के स्वर भी यहाँ बिखरे मिलेंगे। एक-दो उदाहरणों से बात को समझना आसान होगा। इस दृष्टि से कृष्णा सोबती और मृदला गर्ग आदि की भाषा को भी देख जा सकता है। खुद से ही शब्द उधार लेकर कहूँ तो कृष्णा सोबती ने जब यारों के यार और मित्रो मरजानी जै सी कृतियां और 'मर्द रिझाऊ' नहीं बल्कि 'मर्द मारू' भाषा दी तो हंगामा होना स्वाभाविक था। पहली बार हिन्दी कहानी ने स्त्री के पारम्परिक ढके-दबे, सुरक्षात्मक, सांकेतिक, अर्द्ध छवि देत वाले सांस्कारिक रूप की कद्र से निकल कर 'बोल्ड' होते हुए देखा था मित्रो अपने दोनों हाथों से अपनी छातियाँ पकड़कर पूछती है, सच कहना जिठानी सुहागवंती, क्या ऐसी छातियां किसी और की भी हैं? ध्यान देना होगा कि यहाँ रचनाकार स्त्री है और पात्र भी स्त्री है। इसे चटखारे लेने वाले देह विमर्श के खाते में डाल कर नहीं समझा जा सकता। स्त्री की भी अपनी देह-दुनिया है। वह केवल पुरुषार्थ देह नहीं है। उसकी देह केवल पुरुष को समर्पित करने की वस्तु नहीं है, अपने से उपभोग करने के लिए भी है। सहवास का सही अर्थ भी शायद यही है। स्वाभाविक है कि विमर्श पर उतर कर स्त्री द्वारा रचे गए साहित्य की भाषा भी उसमें उभरे तीखे प्रश्नों की भांति तीखी यानी पुरुष वर्चस्ववादियों के लिए तीखी और बेशर्म ही होगी। अतरू पुरुषवर्चस्ववादियों की हिप्पोक्रेसी पर भी समकालीन केन्द्रीय स्त्री-लेखन बज्रपात ही करता है। चित्रा मुद्गल की विमला बेन, जो स्त्री की नृशंस हत्या करने वाली

पुरुष मानसिकता पर ही प्रश्न नहीं उठाती अपितु हत्या की शिकार हुई नारी-विमर्श के बड़े आयाम को मजबूती से सामने वाली एक प्रमुख पात्र सुनन्दा की अर्थी को कंधा देने की पहल करने वाली हठी महिला है, पुरुषों को अंगूठा दिखाती हुई इस धाकड़ भाषा में नमिता से बात कर सकती है अक्सर संडास का उपयोग करने वाले पुरुष संडास की कुंडी नहीं चढ़ाते और किसी महिला के 'धाड़' से दरवाजा खोलते ही लघुशंका के लिए खड़े चौंककर पलट पड़ते... सोचो, क्या दिव्य नजारा होता होगा! विमला बेन की कभी अति सुंदर रही, भारी-भरकम देह हंसी से बेकाबू हुई।

एक दूसरे प्रसंग में नमिता की मां का यह कथन भी पढ़िए अरी छिनारियो! (यहाँ हिन्दी जगत में घटे एक छिनाल प्रसंग को भी याद कर लीजिए)। सब गोलबंद रहोगी तो मजाल, जो किसी रोआं उखड़ जाए। चिल्लरों सी खनखनाओगी तो बूढ़ा तुम्हारी झांट उखाड़ ले तो नाम बदल देना मेरा। इसे चित्रा जी की लेखकीय अदा ही कहा जाएगा कि वे तुरन्त नमिता को सामने लाकर उपर्युक्त कथन को संतुलित कर देती हैं "उफ! सहमकर उसने (नमिता ने) कानों पर हाथ रख लिया।

क्या हो गया यह मां को? मां के मुंह से भदेस गालियां निकलना कोई अनहोनी बात नहीं। मगर बेटी के सामने लगाम लिहाज छोड़ने पर विस्मय अवश्य हुआ उसे।" इस प्रकार की भाषा और लहजे के द्वारा उस रूढ़िगत सोच पर भी आघात किया गया है जिसके द्वारा बोल्ड होना अच्छी लड़की का गुण नहीं माना जाता। यहाँ यह बात विशेष रूप से कहना चाहूँगा और कि चित्रा जी ने बहुत से स्थानीय (प्रादेशिक) शब्दों और मुवाहरों की ताकत से भी इस उपन्यास को समृद्ध किया है। उपन्यास की प्रमुख पात्र नमिता को काम मिला था नारियों को जागरूक करने का। जिस उत्साह, प्रतिब्द्धता से वह स्त्रियों को जागरूक करने, पीड़ित स्त्री के हक में उसके पास पहुंचने के लिए चाली नुमा झोंपड़ियों में जाती है यह भी अपने ढंग से नारी-विमर्श अर्थात नारी सशक्तिकरण का ही एक रूप है। वस्तुतः उपन्यास के महिला पात्र (नमिता, नमिता की माँ, स्मिता, हर्षा, गौमती मेम साहिब, विमला बेन, सुनन्दा, सुनन्दा की मां किशोरी बाई आदि प्रायः अपनी-अपनी शक्ति और सीमा के साथ उपस्थित हुए हैं। यह बात अलग है कि चित्रा जी की नारी चेतना सम्बंधी दृष्टि सबके बीच पिरोयी हुई महसूस होती रहती है। उपन्यास का अंत केन्द्रीय पात्र नमिता अपनी सगी बहन सुनन्दा की मां किशोरी बाई की खोली में जाने पर ही होता है। यह अंत होकर भी अंत नहीं लगता और पाठक को बहुत कुछ प्रश्नों के घेरे में डाल कर मानता है। याद रहे कि सुनन्दा की मृत्यु (हत्या) के बाद किशोरी बाई ने नमिता के बीमार पड़े पिता को चिट्ठी लिखी थी "पांडे बाबू! आपकी सुनन्दा (कुंवारी माँ) नहीं रही। उसे हमने नहीं मारा। अपनी मघ्त का कुआं जिद्दन नेण खुद ही खोद लिया। मैं क्या करती? उसे किस विधि बचाती" नारी विमर्श की दृष्टि से किशोरी बाई के व्यक्तित्व पर घर किए जाने की जरूरत नहीं है क्या? और इसके बाद ही पिता ने नमिता को बताया था नमी सुनन्दा तुम्हारी सगी बहन थी। बताता चलूं कि नमिता भी अपने देह संबंध विवाहित धनी संजय नामक शख्स से बनाती है, जिसकी पत्नी उसे संतान देने में असमर्थ है। और प्रारम्भ में कुंवारी मां नहीं बनना चाहती हालांकि बन जाती है। हादसे वश बच्ची मर जाती है और संजय की आशा भी मर जाती है।

अब मैं ऊपर संकेत देकर छोड़ दी गई मूल बात पर आता हूँ जो असल में इस उपन्यास की एक बड़ी उपलब्धि है। उपन्यास में एक नारी पात्र सुनन्दा है जो मेरी निगाह में इस उपन्यास की नारी चेतना से सम्पन्न सबसे सशक्त स्त्री पात्र है। साथ ही चित्रा जी की सृजनात्मक उपलब्धि भी।

सुनन्दा विवाह के लिए अपने प्रेमी 'सुहैल' के धर्म परिवर्तन के आग्रह या शर्त को मानने से इंकार कर देती है क्योंकि उसे सहज रूप में लगता है कि वऐसा करने से उसकी अपनी पहचान या अस्मिता दाव पर लगी लगती है। शर्त या आग्रह के नाम पर उसे अपना नाम तक बदलना अपने होने के विरुद्ध लगता है। बुनियादी तघ्र पर यह मसला दो प्रेमियों तक सीमित न रह कर बहुत दूर तक जाता है। अतः यहँ विरोध 'सुहैल' का नहीं है। एक अनुचित और अग्राह्य अवधारणा या व्यवस्था का है। इसीलिए

यहाँ विशिष्ट सामान्य या असाधारण साधारण बन जाता है। विशिष्ट अनुभव सबका हो जाता है। अतः सुनन्दा का बिना ब्याह के न केवल देह संबंध बनाना बल्कि 'प्राउड' माँ भी बन जाना देह मुक्ति के एक नए व्याकरण को सामने लाता है और अपने को मनवाता भी है। साथ ही 'कुँवारी माँ' वाली चली आ रही स्त्री विरोधी धारणा पर लेखिका कुठाराघात भी करती है। भले ही मठाधीसों को यह हरकत रास न आए। ऐसी राह पर चलने वाली जागरूक नारियों के सामाने चुनौतियाँ भी बहुत होती हैं और प्राणों तक के खतरे भी। नारायण सुर्वे, इसी उपन्यास में स्त्री चेतना की पक्षधर सुनन्दा को अपनी हवस से इलाके के अमन चैन को आग लगाने वाली कहता है। एक जगह रूपक के बहाने उसे कुतिया भी कहा गया है।

देखिए सड़क पर जब कोई कुतिया आवारा घूमती नजर आती है, कामोत्तेजित कुत्ते एक साथ उसकी दुम उठा...। इस क्रांतिकारी सुनन्दा के होश बहुत जल्दी ठिकाने आ जाएंगे। और अन्ततः सुनन्दा की रात में हत्या कर दी जाती है। लेकिन सुनन्दा की दृष्टि या दिशाबोध की हत्या करने की किसमें ताकत है? वस्तुतः यह प्रसंग बहुआयामी है। एक ओर दो अलग-अलग धर्मों से होने के कारण विवाह न कर पाने की वजह है तो दूसरी ओर इसी वजह के साम्प्रदायिक उन्माद बनने का खतरा है। गर्भ गिराने न गिराने का मसला भी है। एक अन्य आयाम कुंवारी माँ वाला है जो सामाजिक मान्यता से तो जूझने वाला है ही संवैधानिक रूप में भी अड़चन करता है। पहले इस अन्य आयाम को लें। सुनन्दा जो में घर-बेकर में काम करती है, चाहती है कि उसकी बच्ची को क्रेच की सुविधा मिले। वे सारी सुविधाएँ मिलें जो कम्पनी अन्य माँ कर्मचारियों को देती है। इस पर कम्पनी का तर्क है कि आप कुंवारी हैं। जचकी की सुविधाओं की कानूनन अधिकारिणी नहीं। उसके साथ हो रही इसी ज्यादती के विरोध में नमिता सुनन्दा से मिलने के लिए पहली बार उसके घर जाती है और उन दोनों के बीच जो संवाद होता है वह सहज ही नारी विमर्श के एक सशक्त पक्ष को उतनी ही मजबूती से सामने ले आता है। कम्पनी के द्वारा कुंवारी माँ की जचकी से सम्बद्ध तर्क पर सुनन्दा का भारी मारक तर्क देखिए देखिए दीदी, सुविधा का प्रावधान गर्भवती स्त्री और उसके बच्चे को लेकर है, न कि कुंवारी माँ या ब्याहता माँ के विशेषण के लिए। कुंवारी माँ क्या ब्याहता माँ के ही समान जचकी के घोर कष्टों से होकर नहीं गुजरती माँ बनना किसी के निजी मामले की बजाय कम्पनी का मामला कघ्से हो गयाघ्ष्ठ प्रश्न यहीं तक सीमित नहीं रहता क्योंकि इसका दूसरा संदर्भ भी है और वह और भी बड़ा है।

यह ठीक है कि कुंवारी माँ की जचकी को लेकर कम्पनी वालों के अन्याया के प्रति जागरूकता (प्रतिरोध) जरूरी है और इसके लिए ही ट्रेड यूनियन के दफ्तर से विमला बेन ने नमिता को भेजा गया था। लेकिन सुनन्दा तो इससे भी बड़े एक और खतरे से भी जूझ रही थी और वह था साम्प्रदायिक उन्माद का क्योंकि उसकी कोख का बच्चा एक अन्य (मुस्लिम) धर्म के पुरुष की देन था। हम सब जानते हैं कि विशेष रूप से हिन्दूओं और मुस्लमानों में बहुत से कट्टरपंथी हैं जो अपनी रोटियां सेंकने के लिए साम्प्रदायिक उन्माद और दंगे करती रहने की फिराक में रहते हैं, और इसके लिए छोटे-छोटे बहानों को भी भुना लिया करते हैं। सुनन्दा के ही मुख की बात जानिए "धर्माधों के लिए मैं एक बहाना भर हूँ। मैं बहाना न रहूँ तो कल वे कोई और बहाना तलाश लेंगे। गढ़ लेंगे। गढकर उसमें तेल के पीपे उलींचेंगे। दीदी जरूरत है, उसकी कलाइयां धर लेने की मजबूती से, ताकि वे हाथ न छुड़ा पाएं। तीली न सुलगा पाएं। और य काम कोई और नहीं, सिर्फ स्त्रियां कर सकती हैं।"

इस संवाद में बहाने गढ़ने और केवल स्त्रियां कर सकती हैं पर ध्यान जाना चाहिए। अर्थात किसी समस्या के समाधान को विकल्पहीनाता के चौराहे पर नहीं खड़ा किया जा सकता। आगे और भी स्पष्ट ढ़ंग से सुनन्दा कहती है "उनसे बिमला बेन से" कहिएगा दीदी! कुंवारी माँ की जचकी का हक लड़ने से पहले वे साम्प्रदायिक उन्माद को खत्म करने की लड़ाई लड़े, वरना सब बरबाद हो जाएगा। खोली-खोली में घुसकर हिन्दू मुसलमान औरतों को इतना जागरूक कर दें कि वे अपने घरों के उन्मादी मर्दों के हाथों

से उनकी कटारें छीन लें। यही नहीं सुनन्दा किसी भी जागरूक मनुष्य की तरह धार्मिक उन्माद को असामाजिक कृत्य मानते हुए उसके पूरी तरह खिलाफ है और इसीलिए वह इस समस्या से दो-दो हाथ करने के लिए, दबाव की रणनीति की तहत, सुझाव देती है कि मुस्लिम और हिन्दू स्थ्रियों को अपने मर्दों को धमकाना चाहिए कि यदि उन्होंने असामाजिक कार्यों में हिस्सा लिया तो वे बाल-बच्चों समेत आत्मदाह करेंगी।

अगर नमिता को सुनन्दा की अंर्तचेतना अत्यंत प्रखर लगी है तो क्या गलत है? चित्रा जी इतने पर भी नहीं रुकतीं। वे जमा जमा कर बताना चाहती हैं कि जाति-धर्म का बवाल माचाने वाले बुनियादी तौर पर पुरुष होते हैं। स्त्रियां को अवसर मिले तो वे इस बवाल को शांत करने वाली होती हैं। मर्दो की जो फितरत प्रायरू अनुभव के दायरे में आती है, वह है घर में अपनी औरतों की तो फिर इज्जत कर ली लेकिन सड़क पर निकलेते ही औरतों के प्रति कुत्ते हो लिए।

नमिता ने सुनन्दा की स्त्री संबंधी सोच और ताकत को समझ लिया है इसीलिए एक स्थान पर वह बताती है "सुनन्दा का कहना है कि तनाव के इस माहध्ल में औरत के सहयोग और उसकी निर्णायक भूमिका के विषय में विचार किया जाना जरूरी है। स्त्री चेतना कम से कम पुरुषों की बनिस्बत जाति-धर्म की बंधक नहीं बल्कि वे सर्वोपरिता की टकराहट से बाहर हैं।"

किस्सा यह है कि हिन्दू धर्म की सुनन्दा और इस्लाम धर्म के सुहै ल के बीच प्रेम हो जाता है और वे दोनों विवाह करना चाहते हैं।

सुनन्दा प्रेम के चलते गर्भवती भी हो जाती है। विवाह के बीच धर्म या सम्प्रदाय आड़े आ जाता है। ससुराल वाले इस्लाम कबूल करने की शर्त रखते हैं जो गर्भवती होने के बावजूद स्वचेता सुनन्दा को एकदम मंजूर नहीं। वह तो अपना नाम बदलने को भी तैयार नहीं। विवाह होने की संभावना न रहने पर भी वह अपने गर्भ को गिरानेवाली सोच भी नहीं रखती। यदि हम उसके इंकार का कोई एक कारण खोजना चाहें तो पता चल जाएगा कि वह है उसकी अपने होने को स्वीकृति देने की चेतना, अपने निर्णय खुद लेने के अधिकार के प्रति जागरूकता। वह दो व्यक्तियों के बीच के ब्याह को लेकर मनुष्य को बांटने और उसके नाम पर एक दूसरे को नेस्तनाबूदकरनेवाली मानसिकता और सोच की कट्टर विरोधी है। उसका तर्क इतना भर नहीं है कि वह शर्त के नाम पर अन्य धर्म अथवा अन्य धर्म का नाम नहीं रखना चाहती बल्कि वह तो दूसरे पक्ष को भी ऐसा करने को बाध्य नहीं करना चाहती। ब्याह के बाद भी हिन्दू हिन्दू रहे और मुसलमान मुसलमान तो क्या हर्ज है। हाँ कध्ई स्वेच्छा से अपना धर्म परिवर्तन करना चाहे तो बात अलग है। वस्तुतः सुनन्दा ने सुहैल से ब्याह करने से कभी ईंकार नहीं किया।

वह बस हिन्दू-मुस्लिम एकता को धर्म से ऊपर देखना चाहती थी। वह हिन्दू होकर मुसलमान से विवाह करना चाहती थी। वह आडम्बरों से ऊपर रहने वाली स्त्री है। वह तो कोर्ट मैरिज करने तक को तैयार थी।

सुनन्दा के शब्दों में कहें तो, प्रश्न यह था दीदी कि मैं औरों की सुख-सृष्टी के लिए अपने सच को घोंट दूँ या अपने 'स्व' के संरक्षण के लिए उसके उगने को देह धरने दूँ, उसे एक पूरी की पूरी काया ग्रहण करने दूँ...सुहै ल ने प्रेम करने के समय तो कोई शर्त नहीं रख? ब्याह करना होगा तो उससे नहीं इस्लाम से करना होगा...या उसे हिन्दुत्व से जो शर्त पहले शर्त नहीं थी, बाद में शर्त क्यों बने? समझते को मैं भी राजी नहीं हुई। मुझे लगा दीदी, समझते 'आदि' तो होते हैं अंत नहीं।

गौर से देखा जाए तो यहाँ स्त्री-पुरुष ही नहीं बल्कि दो व्यक्तियों के बीच एक दूसरे के चले आ रहे तथाकथित अधिकारों और अधिकारहीनताओं की ऐसी विवेचना उपलब्ध हुई है जो अधिकारों की बलपूर्वक छीना झपटी से ऊपर उठकर समझ के साथ एक-दूसरे को मनुष्य समझते हुए, समान और जायज अधिकार देने की दिशा में अग्रसित करती है। दोनों को ही स्पेस या जगह देने का पक्ष सामने लाती है। स्वेच्छा के रूप मे देह मुक्ति और स्त्री विमर्श की एक बहुत ही सशक्त कृति है आवां।

प्रगतिशील समाज और आज की वैदेही

–मनीषा आवले चौगाँवकर

यद्यपि अभी समाज समय के साथ बदलाव लिए है पर फिर भी हर टूटन की सामाजिक जिम्मेदारी स्त्रियों पर सीधे सीधे थोप दी जाती है। जिम्मेदार स्त्री को अलगाव की कारक मानना क्या उचित है। यदि वो पढ़ी लिखी है अपना पक्ष रखे तो यक़ीनन उस पर घर तोड़ ने का आरोप लगना तय है। आखिर ये नजरिया कहाँ से आता होगा और ये सोच कौन दे जाता है। क्या खुलकर। अपने विचारों को व्यक्त करना ग़लत है। एक स्त्री को दूसरी स्त्री के सम्मुख खड़ा कर दिया जाता है ये विचार स्वयं स्त्री के नहीं है हमारा होना न होना सभी निर्धारित समाज द्वारा किया जाता है। अगर तलाकशुदा महिला कम उम्र की मिले तो नजरिया दृष्टि अलग होना संभाली हो जाता है। अगर समाज के अनुसार संस्कारित दोष उस स्त्री पर कम पर बेचारगी का भाव ज्यादा थोप दिया जाता है। और मुखर हुई तो घर तोड़ ने ठप्पा लगना स्वाभाविक ही है।

अक्सर नये जमाने के आधुनिक सोच समझ मानस मन कहता है समाज बदलना चाहिए। ये सूरत बदलनी चाहिए। वो प्रेम के लिए अपनों से लड़ाई बुरी नहीं मानते। वो जो मानने लगे हैं कि मनुष्यता में स्त्री पुरुष का रिश्ता समता का होना चाहिए। अक्सर सुनने में आता है ऐसे ही घरों से पुरुष के मुख से हमारे यहाँ तो बिल्कुल छूट दे रखी है हमने तो घर में रिश्तों में कोई पाबंदी नहीं लगाई है। यह कहते समय उन्हें अपनी आजाद स्वतंत्र सोच और स्वयं पर गर्व होता है। हास्यास्पद तो यह लगता है कि ये जो छूट देने की सत्ता उनकी है वो कहाँ से आयी खांसने तय की है ये हस्तांतरित कब हुई। लोकतांत्रिक होने का दावा करते करते हुए हम अनजाने में अलोकतांत्रिक होते जा रहे।

ये समांज ही है हमारे सोच पर नियंत्रित करता है हम जब वास्तविकता में है वो बाहर की नजर कि सिर्फ फेरबदल ही है। अभी भी आंतरिक सिस्टम स्थिति में बदलाव की संभावना पर मंथन का दौर जारी है।

आज भी यही कहा मिलना जाता है स्त्री पैदा नहीं होती बनायी जाती है समाज के ताने-बाने को देखते हुए समझा जाता रहा है। ऐसे हम ये भी कह सकते हैं पुरुष भी बनाए जाते हैं। पैदा तो वो भी नहीं होते। उन्हें जन्म से ही भावुकता विहीन मजबूत जिसके कंधों पर परिवार का भार डाल दिया जाता है। साथ ही आंसू आना कमजोर होने की निशानी है ऐसी समझाइश के साथ युवा होते हुए हमारा पुरुष समाज आगे बढ़ता रहा है। समाज की ये अवधारणा जो पुरुषों को स्त्रियों के शोषण करने के लिए क्या तैयार करती है। एक स्त्री को उसकी रची बसी भूमिका में की ओर ढकेलने वाला समाज समय के साथ परिवर्तित हो रहे पुरुष संख्या का समर्थन कर पाता है? अथवा उस को जोरू का गुलाम मोहरा कह कर मजाक बना दिया जाता है। अथवा उस पत्नी पर तानाकशी का पैंतरा भी तैयार रहते हैं। आधुनिका घर छोड़ने वाली का दर्जा चिपका दिया जाता है। और कितने लोग जो आपस में पीड़ा बाँटना चाहते हैं समाज का दृष्टिकोण कहीं। जगह दूरियाँ या यूँ कहें कि दूरगामी एक किलष्ट लाइन खीच देते हैं। कितने लोग समाज में अपनी इज्जत की डर से भावनाओं को महसूस भी नहीं कर पाते। मतलब हम वहीं महसूस करते हैं जो हमारा समाज चाहता है। समर्पण का सुख ऐसी ही यथार्थ प्रस्तुत करती मालती जोशी जी की कहानी है। दिल में पुरुष और स्त्री के रिश्तों के मध्य की भावुकता अपनत्व का स्पर्श जो समाज अपना नजरिया देकर रचयिता हैं। और ये समाज भी तो हमारे और आप से मिलकर बना हुआ है। उत्तरप्रदेश राजस्थान बिहार को ई राज्यों में आज भी स्थिति में बदलाव कि दौर ही है। स्त्री और बच्चों को सहलाना या संवेदना का भाव रखने वाला पुरुष अभी समाज में भी गया बीता माना जाता है। पुरुष के हाथ में हंसते खिलखिलाते बच्चे आने चाहिए वो भी थोड़ी देर के लिए और स्त्री हमेशा सजु संवरी श्रृंगार किये। सामाजिक होते समय यही नजरिया उसे दिया

गया और उनसे सीखिए भी है। नयी पीढ़ी में मानसिकता बदल रही है पुरुष कहीं ज्यादा संवेदनशील और भीतर से भावुकता के साथ ही है। कुछ जगहों पर परिवार के जागने के पूर्व ही अपनी पत्नी की मदद करते हैं।

अक्सर हमारे चित्रपट में सिंदूर को महान और प्रेमिका का त्याग चित्रित किया जाता है। चिंतन का विषय यही है कि आज भी हमारे तथाकथित समाज में लोग आफिस संभाले रिश्तों को भी निभा ले सर्वोत्तम कर्मचारी का तमगा भी हासिल कर लें और समय समय कपूर अपनी महानता का सबूत भी दे समाज की मुहर अपने प्रेम को मिले उससे भिड़ जाने का जज़्बा हो यानी के स्त्री के तयशुदा स्वरूप बने बनाए खाँचे, मान्यताओं के अनुरूप। आज भी बिना आत्मा के देह को बस छूने की गुलाब भेंट देना थोड़ी लच्छेदार बातें फिर डेटिंग मीटिंग शादी फिर बच्चे पैदा करना यही भाव के साथ प्रेम की बपौती के चंद पद होते हैं। अंततः मन कहने लगता है कि जाने कहाँ गये वो दिन।

हमेशा स्त्री विमर्श के मुद्दे पुरुषों द्वारा तय किये जाते हैं।

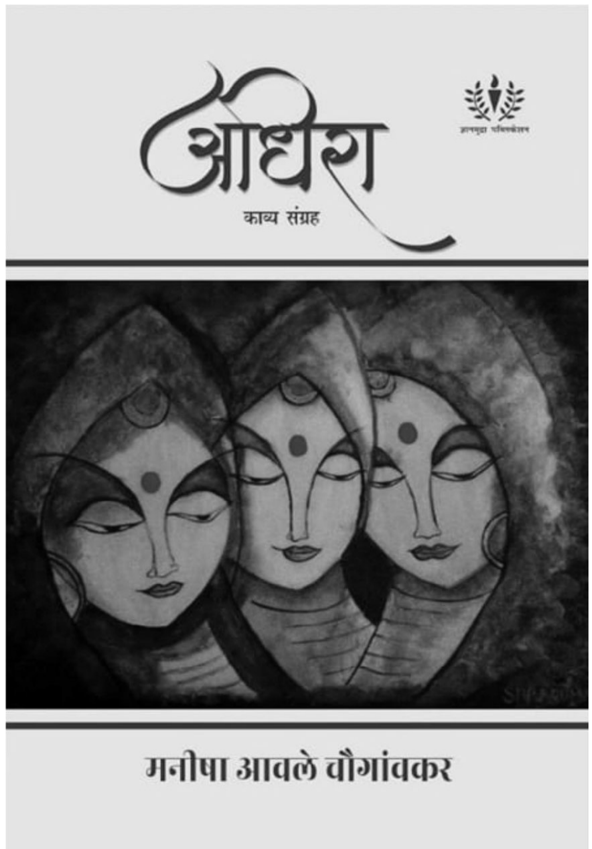

स्त्री विमर्श की सभी कहानियाँ आलेख भाषण रच दिए जाते हैं। जो संवेदना वो समझ सके हैं जो उनकी रचनाओं से ध्वनित होता है। वो जीवन जगते समय कहा गायब हो जाता है। क्या वो सच में इन मुद्दों को समझना चाह रहे या समझ रहे हैं या फिर सिर्फ दिखावा है। मालूम नहीं पर यथार्थ बड़ा ही कटु और वीभत्स सा है कि चित्रपट के कभी वीभत्स दृश्य कभी रोमांटिक दृश्य सेक्सुअल संत्रास बार किसी रस से अनुभूति लेते हुए फफककर रो पड़ने के उफनकर छलकने के बजाय स्त्रियों भी रिरियाने लगती है हमारे संस्कार कहाँ गया या अकेले स्त्री पुरुष को नहीं जाना चाहिए। मसलन हर बात में स्त्री पुरुष का राग छेड़ ने वाला मुद्दा नहीं है हम सांस निश्वासों का अहसास नहीं हो ता है वैसे ही हम सोच नहीं समझ पाते हैं। दरअसल यह एक खूबसूरत राग है एक सुंदर जीवन की कल्पना कहानी कोई रणक्षेत्र नहीं है बस अपने अंदर की जड़ताओ को टटोलने की सहज प्रक्रिया और उसमें से निकलने का मार्ग खोजती। कोई प्रतिद्वंद्वी होने का या आरोप लिखने का ये जीवन इसलिए नहीं है।

जीवन भर स्त्री होने का उपेक्षा का दंभ सह ने के लिए पुत्री को जन्म देने के बजाय पुत्र चाहते हैं। कन्या भ्रूण हत्या का मसला हो ठीकरा दोष महिलाओं पर डालना न्यायोचित है। क्योंकि वो पुत्र कामना कर रही है क्योंकि कि उसकी समझा में बेटियों का जन्मदात्री होना उसको फिर संघर्ष में घेरे में है आयेगा उसका बचा खुचा अस्तित्व भी नष्ट होगा साथ ही उसकी मान सम्मान में बढ़ोतरी और बुढ़ापे का आश्रय एक पुत्र की मां होने में ज्यादा रहेगी।यह अहसास का दंश पुरुष समाज से ही मिलता है।पर दोष महिलाओं के हिस्से में है। कब वो अपने ही खिलाफ खड़ी हो गयी पता ही नहीं चला। बेटियों की माँ होना सहज नहीं है। कितने

मानसिक शारीरिक उत्पीड़न कहीं।

अपनी ऊंची उड़ान का सफर तय कर रही है नारी बदलाव का समय है। स्त्री का स्त्री संवाद का ढंग भि बदल रहा है बेटियों की परवरिश की भोजनथाली से कपड़ों की आजादी शालेय शिक्षा का स्तर काफी कुछ बदलाव के दौर में है पर इसकी जिम्मेवारी भी एक महिला से ही शुरू होगी ये अवश्यंभावी है। बेटियों का आर्थिकी में सहयोग बाजारवाद से लड़ने में सहयोग करने लगा यानि अब सुसंस्कृत सूशील स्मार्ट के साथ नौकरीपेशा भी जुड़ गया है लेकिन रोजगार का निर्णय भी कहीं न कहीं सभी की सहमति से। कई प्रोफेशन के मार्ग खुल रहे हैं। व्यक्तित्व बदला है संघर्ष कुछ पीछे छूट रहे हैं किन्तु बाह्य आंडबर ज्यादा है बनिस्बत नसीहतें ज्यादा मिलने लगी है।

इस सारे मुद्दों में अब बाजारवाद भी शामिल हो चुका है। मीडिया का अपना तंत्र है स्त्री को एक उत्पाद में बदलने की श्रृंगार ममता वात्सल्य त्योहार परंपरा परिवार को स्त्री के साथ मिक्स सम्मिलित कर के चमचमाते बाजार में परिवर्तित किया। जा रहा है। बाजार ने स्त्री का सौंदर्य के मापदंड निर्धारित कर दिए जो चीजें दिखाई जाती है जनमानस पर उसका असर जाता है प्रचलित प्रचारित एक आदर्श नारी की छवि प्रस्तुत की जा रही है। एक समर्पित पत्नी मां एक सुपर वूमन है जो घर से लेकर बाहर तक क्लब से लेकर प्रेमिका रूप में भी सभी कुछ संभाल लेती है। जो सबको समझ लेती हो बिजनेस पार्टी वूमन है पर मंगलसूत्र और करवाचौथ से विमुख नहीं।

इस समाज रुपी रेलगाड़ी में के हर डिब्बे में में वही बाजार चलता है जिसे समाज ने निर्धारित किया है। सभी को स्वातंय तो है पर अपनी अपनी जगह में आसमान का नजारा नजरिए का फर्क होगया है। हम स्वयं से कहीं पीछे छूट जा रहे हैं यही समझ में नहीं आ रहा है। इसलिए हम संवाद करने के बजाय अंश अंश जो मीडिया बता रहा है जो समाज समझा रहे उस पर ही अटक गये है और खुश हो रहे हैं। अंततः हमें इस सिलसिले को समझना जरूरी है।

पर क्या हर औरत अच्छी की परिभाषा परिधि में आ सकती है। यदि वह समाज के मापदण्ड में नहीं बैठती है वो अच्छी स्त्री मां या पत्नी कैसे होगी?

सुनो मेरा कहना है हर औरत अच्छी नहीं हो सकती वो कोई घर का आंगन नहीं है ना। ही कोई दरवाजा की चिटकनी सबकी सुविधानुसार बदल जाए या फिर सबकी सुरक्षा की चिंता में ही घुलती रह जाऊं उसकी स्वयं का एक अस्तित्व है एक झोंका बयार का है जो भोर की लाली से आंखें मिलाऊं और दोपहर की तपन में विश्रांति के पलों में दोपहर अपराह्न के मोड़ पर बैठी बस खुद में इठलाती इतराती।

सूनों हर स्त्री वो अच्छा नहीं हो सकती जबतक उसने मन का अपने विचारों का अपने स्वातंय का अपनी पसंद का ध्यान रखते हुए परिवार संभाला वहीं औरत महान मां क्यूं होगी भला जिसने अपने अपने अस्तित्व अपनी पहचान को मिटाया नहीं।

जिसने अपने युवा होते बच्चों में अपना भविष्य न देखते हुए स्वयं आपने आकांक्षाओं को संवारा और उन्हें उनके मार्ग पर चलने का माद्दा दिया।

वक्त एक मुसाफिर की तरह है जो निरंतर यात्रा करता है सांस के साथ जीवन यात्रा में है। कच्ची सड़क पर चलता हम स्त्रियों का सफर बस आस भाव लिए कि तुम घर ठीक ठाक पहुंच जाओगे थमा कुछ नहीं है।

कभी सुखद राहों की तलाश में
कभी एक पल की खुशी के वास्ते
गुम हुए कितने रास्ते
खो गयी कितनी जिंदगानियाँ
वो कच्ची सड़क पर चलता एक सफर
कहें आस भाव लिए होगा कहीं तेरा मुकाम
कभी अपनी बात कह जोड़ते सभी रिश्तों को
कभी चुप सी लगा भोर में कहीं खो जाते
उन जुगनुओं को मुट्ठी में भरने की जुगुप्सा
कहीं झींगुर नाद संग में मन डोलता
बस कुछ पल का स्वप्न नहीं
उस रोशनी को जिंदगी में थामे रखना चाहती हूँ॥

चित्रा दी से अचानक हुई मोबाइल से मुलाक़ात

–नीलम कुलश्रेष्ठ

जब मैंने गुजरात में हिंदी लेखन आरम्भ किया था तो मैं समझ नहीं पाई थी कि अहिन्दी भाषी गुजरात में हिंदी लेखन काले पानी की सज़ा है। उस पर मेरा जुनून कि गुजरात की संस्कृति को समझना है। मैं अपने ही काम में मगन टूटती, हारती जुटी थी। किताबें प्रकाशित हुईं तो ये भी अक्ल नहीं कि इन्हें अपनी वरिष्ठों को भेंट देकर उनका अभिमत पूछना चाहिए या कब पुस्तकों के पुरस्कार के लिए विज्ञप्ति निकलती है, ये भी होश नहीं तो ऐसे में किसी भी लेखिका से पहचान कैसे होती?

सन 2015-16 के आस पास की बात है। समरकंद राजस्थान से सम्बोधन पत्रिका प्रकाशित करने वाले धीर गम्भीर सम्पादक स्वर्गीय आदरणीय कमर मेवाड़ी जी का फ़ोन मिला कि कोई लेखिका उनकी पत्रिका का विशेषांक लिव-इन पर सम्पादित करना चाहतीं हैं, यदि मैं चाहूँ तो उनसे संपर्क कर लूँ। विषय मेरी रुचि के अनुकूल था इसलिए मैंने उन महिला को फ़ोन किया। मैं जानबूझकर नाम नहीं दे रही, उन्हें महिला ही सम्बोधित करुंगी। उन्होंने प्रोत्साहित किया, आप लिव इन पर ज़रुर लिखें यदि मुझे कहानी पसंद आई तभी प्रकाशित करुंगी।

ये तो सम्पादक का अधिकार है।

मेरी बात चित्रा दी से हुई थी। वे कह रहीं थीं की धर्मयुग में बीस वर्ष पहले एक मैत्री करार फ्रैंडशिप कॉन्ट्रेक्ट, पर सर्वे प्रकाशित हुआ था। यदि तुम्हें कहीं से मिल जाये तो तुम्हारा विशेषांक पूरा होगा।

मैं ख़ुशी से लगभग उछल पड़ी एआप चित्रा दी को जानतीं हैं उनका मोबाइल नंबर दीजिये और एक ख़ुशी की बात बताऊँ कि धर्मयुग के लिए वह सर्वे मैंने ही किया था। वाह! उसकी कॉपी मुझे जल्दी से भेजिए। वे कुछ बेसब्री से बोलीं।

जी ज़रुर, आप मुझे क्रेडिट तो देंगी ही।

बिल्कुल।

ज़ाहिर है मैंने उन महिला को वह सर्वे भेजा और धड़कते दिल से चित्रा दी को फ़ोन मिलाया क्योंकि मेरी बातचीत सिर्फ़ नमिता जी व सुधा अरोड़ा जी से होती थी। मैंने नमस्कार करते हुए अपना परिचय दिया व बताया कि

मैत्री करार पर वह मेरा आलेख था। उन्होंने किंचित क्रोधित स्वर में कहा एतो आप हैं नीलम कुलश्रेष्ठ जिन्होंने 'कथादेश' में मेरे विरोध में पत्र लिखा था।

मैं जैसे ज़मीन पर आ गिरी पहली मोबाईल मुलाक़ात और हलकी सी डाँट? बात ये थी कि अपने लेखन के आरम्भिक काल में चित्रा दी अलग अलग नामों से लिखतीं

थीं। दुनियां के किसी भी विषय पर लिखकर मुझे अपना नाम देने में कोई गुरेज़ नहीं था। मैंने आश्चर्य करते हुए कथादेश में पत्र लिख दिया था कि वे ऐसा क्यों करतीं हैं? ख़ैर एये गुस्सा कुछ क्षण रहा फिर वे शाबासी देने लगीं कि मेरा जो मैत्री करार पर सर्वे था उस पर देल्ही में प्रमिला ने गोष्ठी भी आयोजित की थी। मैं उनकी बात पर आश्चर्यचकित उन्हें बीस वर्ष पहले वाली बात याद रही तरस खाइये कोने से लिखने वाली मुझ लेखिका पर जिसे पता ही नहीं चलता था कि उसके लेखन पर क्या प्रतिक्रिया होती है। जो उनसे मिलकर उनके स्नेह की वर्षा में भीगे हैं वे समझ सकते हैंए

अब वह सम्बोधन का विषेषांक हाथ में आया। उन महिला का सम्पादकीय पढ़कर में आग बबूला। उन्होंने विस्तार से मैत्री करार के विषय में लिखा था जैसे वे उसकी विशेषज्ञ हैं। मैंने तुरंत उन्हें फ़ोन किया, आपने मेरी मेहनत को पानी में मिला दिया। आपने मेरा व धर्मयुग का नाम तक नहीं दिया।

वे बेशर्मी से बोलीं, क्या हुआ प्रकाशित होकर कृति समाज की हो जाती है।

कुछ तो शर्म कीजिये पुस्तकों तक में रिफ़्रेन्स में लेखक का नाम दिया जाता है।

आपको खुश होना चाहिए मैंने आपके लिखे लेख को आगे बढ़ा दिया।

आप फ़ेसबुक पर स्पष्टीकरण दीजिये।

मैं क्यों दूँ मेरी क्या ग़लती है?

मैं चित्रा दी को शिकायत कर दूँगी।

उनकी बेहयाई से मैं हतप्रभ कि इतना भी कोई बेशर्म हो सकता है।

शाम के लगभग सात बजे होंगे एमुझे पता नहीं था कि ये यादगार शाम बन जाएगी। चित्र दी को मैंने फ़ोन किया व बात बताई। वे जैसे क्रोधित तैयार बैठीं थीं नीलम! मैं स्वयं हैरान हूँ। मैंने उसे बताया था कि इस लेख को ढूँढ़ो मेरा भी लिहाज़ नहीं किया। तुम गुजरात में गुपचुप काम करती हो और क्रेडिट वो ले रही है।

हाँ दी! मुझे भी बहुत बुरा लगा है।

मैं भी उससे बात करुँगी, उसने ऐसा कैसे किया? दी की आवाज़ में क्रोध के साथ एक क्षोभ भी था कि उनके जैसी प्रतिष्ठित लेखिका के बीच में होते हुए भी कोई ऐसे कैसे धोखाधड़ी कर सकता है और तुर्रा ये कि वह ग़लती भी नहीं मान रही हमारी दस पंद्रह मिनट बात चलती रही। मैं हैरान थी कि ये प्रतिष्ठित लेखिका मेरे कारण जिनसे अभी अभी सम्पर्क हुआ है जिससे वह थोड़ी नाराज़ थीं, के पक्ष में इतनी आहत हैं उन्होंने आश्वस्त किया, मैं उससे बात करुँगी।

मैंने उस महिला को फ़ोन पर चित्रा दी के गुस्से के विषय में बताया। मुझे लगा कि वह थोड़ा तो डरेगी लेकिन उसने तो कभी शायद लिहाज़, मर्यादा, शब्द पढ़े ही नहीं होंगे। उसने ढिठाई से कहा, मैं तो चित्र दी को बहाना बना दूंगी कि फ़ेसबुक पर इस विशेषांक की घोषणा में सूची में चित्रा दी से पहले आपका नाम क्यों नहीं दिया इसलिए आप नाराज़ हो रहीं हैं।

हे भगवान! मैं तो वह सूची देखकर बहुत रोमाँचित हो गई थी कि चित्रा दी के नाम के नीचे ही मेरा पहली बार मेर नाम जुड़ा था।

वैसे जल्दी ही मैं इसे किताब के रुप में प्रकाशित करवाऊंगी।

उसमें मुझे क्रेडिट देना नहीं भूलिये।

ठीक है।

हाथ में जब वह पुस्तक आई तो मैंने व चित्रा दी ने फिर सिर पीट लिया। मुझे फिर क्रेडिट नहीं दिया था।

तब मैंने सोचा कि मैं ही इस बात को एफ़ बी पर लिखूँ लेकिन कमर मेवाड़ी जी ने मना किया, सुधा अरोड़ा जी ने समझाया, इसके बहुत प्रतिष्ठित लेखक मुंहबोले भाई व मित्र हैं। तुम्हारे पीछे पड़ जाएंगे।

अपने वरिष्ठों की बात मुझे माननी ही थी।

एक कष्ट देने वाली बात की उपलब्धि ये है कि मैं स्नेहिल चित्रा दी से परिचित हो सकी, जब भी उनसे देल्ही में मुलाक़ात हुई उनके स्नेह में भीग सकी।

ख़ैर ऊपरवाला भी सब देखता है अधिकतर पत्रिकाओं में, पुस्तकों में छाने वाली महिला से उसने अपना क्रेडिट कुछ समय में वापिस ले लिया था।

संवाद

चित्रा मुद्गल से डॉ. संजीव कुमार का संवाद

1. आप अपने साहित्यिक अवदान के बारे में क्या कहना चाहेंगी? क्या कभी ऐसा लगता है कि कुछ करना छूट गया है? अभी क्या और लिखना चाहेंगी?

मैं अपने योगदान के बारे में क्या कहूँ यह तो मेरा पाठक और साहित्य जगत ही बता सकता है कि साहित्य में मेरा योगदान क्या है। हाँ, मैं काफी समय से प्रेम और वैराग्य और ख़ासकर जब वह प्रेम टूटता है, इस पर काम कर रही थी और समय रहा तो इसे अवश्य पूरा करूँगी।

2. समकालीन साहित्य में सांस्कृतिक एवं नैतिक मूल्यों के पोषण की क्या स्थिति है? आप यह संतुलन बनाए रखने में कहाँ तक सफल रही हैं।

भारत में दो परंपरा रही है। आप कह सकते हैं कि 'सुनो भाई साधो और कबीरा खड़ा बाज़र में' वामपंथियों का फेवरेट रहा है और 'तुलसीदास चंदन घिसे', 'मानस का हंस' ये एक धारा रही है। मैंने अपने लेखन में कभी भी संस्कृतिक एवं नैतिक मूल्यों में फर्क नहीं रखा। तो मुझे कभी संतुलन बनाने की ज़रूरत नहीं पड़ी।

3. काव्य में यथार्थ की अति अभिव्मक्ति क्या उसे अकाव्य नहीं बना देती? यथार्थवाद और छायावाद में से किस विचारधारा को आप प्राथमिकताा देंगी?

मुझे छंद और अछंद के बीच कोई विरोधाभास नहीं लगता। फिर भी छायावाद की अपनी जगह है और यथार्थ की अपनी। मैंने हमेशा काव्य में यथार्थ को अपनाया है। आज के युग में, विशेष रूप से कविता में, यथार्थ और छायावाद का अनोखा संगम देखने को मिलता है। तो कही न कही एक नयी काव्य की ओर साहित्य बड़ चला है। इसे मैं हिंदी साहित्य का विकास ही मानूंगी।

4. साहित्य में जेंडर के भेदभाव पर क्या विचार हैं आपके। आपने अपनी रचनाओं में इस विषय पर किस प्रकार निर्वाह किया?

पक्षपात तो हर जगह है और हिंदी साहित्य भी उससे अछूता नहीं है। लेकिन मैंने अपने लेखन में हमेशा अपनी हक की लड़ाई को कभी भी पुरुष विरोधी रूप में प्रस्तुत नहीं किया। क्योंकि स्त्री और पुरुष परिवार और समाज से अलग नहीं हैं। इसे समझ पाना बहुत मुश्किल है और इसीलिए इस पर बहुत सावधानी से विचार किया जाना चाहिए। मेरा पहला उपन्यास 'एक ज़मीन अपनी' इसी विडंबना से जूझता है और 'पोस्ट बॉक्स न. 203 नाला सोपारा' उपन्यास मेरे विचारो की पराकाष्ठा है।

5. हिंदी अखंडता में एकता का बंधम सूत्र है? क्या क्षेत्रीयता और राष्ट्रीयता की विचारधारा के संतुलन की जरूरत है? क्या इस विचारधारा का आपने किंचित् पोषण किया है?

बिलकुल, मेरी कहानी 'लपटें' और मेरा उपन्यास 'आवां' इस विचारधरा से जूझता भी है और उसे नए आयामों में प्रस्तुत भी करता है, जिससे पाठक की सोच और भावनाओं में गहराई से प्रवेश किया जा सके। मेरा पात्र 'सुनंदा' एक सशक्त महिला है जो इन सब विकृत्यों से ऊपर उठ चुकी है और उस सशक्तिकरण का अवतरित रूप भी है।

6. साहित्य में जातिगत व धर्माधारित बिंदुओं के उपयोग के बारे मे क्या स्थिति रही हैं? क्या आप कभी इस विवाद का हिस्सा बनी?

मैं कभी भी इस विवाद का हिस्सा नहीं रही क्योंकि हम सभी जानते हैं कि समाज को जातिवाद और धार्मिकता के आधार पर कैसे विभाजित किया जा सकता है। भारतीय समाज भी राजनीति और अंतरराष्ट्रीय षड्यंत्रों से अछूता नहीं है। ये विषय हिंदी साहित्य में अत्यंत संवेदनशील हैं और इस पर बहुत कुछ लिखा जा चुका है। मेरी लगभग हर कहानी में आपको यह संघर्ष दिखेगा, चाहे वह मेरी कहानी 'भूख' 'डोमिन काकी' 'बयान,' या 'मामला आगे बढ़ेगा अभी' हो।

ये सारी कहानियाँ समाज और जनचेतना से जुड़ी हुई हैं और वे आज के साथ-साथ आने वाले कल की ओर भी उन्मुख हैं।

7. दलित संचेतना साहित्य में कहाँ तक समावेशित है? क्या आपकी रचनाओं में दलित विमर्श की कोई नजीर मिलती है?

जैसे मैंने कहा की लगभग हर कहानी में आपको यह संघर्ष दिखेगा। लेकिन मेरी कहानियों का केंद्र बिंदु मानवता है।

8. सांस्कृतिक संवेदनशीलता को साहित्य में किस प्रकार समाहित किया जाना चाहिये और क्या बातें ध्यान देनी चाहिए?

साहित्य में सांस्कृतिक संवेदनशीलता को शामिल करने के लिए विविधता का सम्मान, गहन अनुसंधान और सकारात्मक चित्रण महत्वपूर्ण हैं। लेखकों को अपने लेखन में विभिन्न दृष्टिकोणों को शामिल करने और सामाजिक मुद्दों को संवेदनशीलता से उठाने का ध्यान रखना चाहिए। मुझे लगता है कि सामाजिक चिंताओं को आवाज देना बहुत आवश्यक है, क्योंकि साहित्य समाज का दर्पण होता है। मैंने अपने लेखन में इन मुद्दों को शामिल करने की कोशिश की है, लेकिन यह एक निरंतर प्रक्रिया है।

9. हिन्दी कहानी में आपने कई धाराएँ देखी हैं? आप किस धारा की प्रशंसक हैं?

जब मैंने साहित्य को समझना शुरू किया, तो मैं प्रेमचंद का 'गोदान' और हेमिंग्वे की 'ओल्ड मैन एंड द सी' से बहुत प्रभावित हुई थी। इन दोनों साहित्यकारों को किसी एक धारा से बांधना संभव नहीं है। और पाठकों को धाराओं से क्या मतलब है ये सब तो साहित्यिक आलोचकों द्वारा बनाया गया है। समाज पल-पल बदलता है और उस बदलाव को समझना और उस से जूझना, उसमें मूल्यों को ढूँढ़ना और उसके घातक प्रभाव को लोक चेतना में उतारना, ये हर लेखक और बुद्धजीवियों का कर्तव्य है।

10. हिंदी साहित्य पर वैश्विक एवं पाश्चात्य साहित्य का क्या प्रभाव पड़ता है। क्या इससे सांस्कृतिक एवं नैतिक मूल्यों का क्षरण नहीं होता है। आपके क्या विचार हैं?

जैसे मैंने कहा की मेरे साहित्यिक यात्रा की शुरुआत में मैं हेमिंग्वे और गोर्की की कहानी 'माँ' से बहुत प्रभावित रही हूँ। मुझे टॉलस्टॉय की 'एना करेनिना' भी बहुत पसंद थी। तो मुझे लगता की अच्छा साहित्य वो भले ही पश्चिम का क्यों न हो आपकी सामाजिक समझ और बुद्धिमता का विकास करता है।

11. तकनीकी क्रांति के दौर में हिंदी साहित्य के रूप रंग में भी बड़ा बदलाव आ रहा है। इस पर क्या कहेंगी?

मेरा पहला उपन्यास 'एक ज़मीन अपनी' विज्ञापन जगत से जुड़ा हुआ उपन्यास है। आज की जो तकनीकि क्रांति है और डिजिटल पटल है ये टेलीविज़न और प्रिंट का ही विस्तार रूप है और इन सब को इससे अलग नहीं देखा जाना चाहिए।

12. क्या डिजिटल पटल लेखकों को सशक्त बना रहा है और उनकी अभिव्यक्ति की गुणवत्ता व गंभीरता में सुधार हुआ है?

जिस तरह से अपने वस्तुओं को बेचने के लिए विज्ञापन जगत ने समाज पर अपना कब्जा किया और हमारी भारतीय परिवेश को प्रदूषित कर रहा है शनै शनै उसको बदलने के लिए ताकि बाजार उसके अनुकूल बन सके। आज जिस तरह बच्चे उपभोक्तावादी संस्कृति में रम गए हैं ये खतरे की घंटी है।

13. अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का वास्तविक अर्थ क्या समझती हैं आप? क्या आपको कभी कोई कठिनाई आई?

अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का असली मतलब है अपने विचारों, भावनाओं और रचनात्मकता को बिना किसी डर या सेंसरशिप के व्यक्त करना। यह एक लेखक के लिए बेहद महत्वपूर्ण है, क्योंकि विचारों की स्वतंत्रता से ही नया साहित्य, नई कहानियाँ और नए दृष्टिकोण उभरते हैं।

व्यक्तिगत रूप से, मैंने कई चुनौतियों का सामना किया है। कभी-कभी, कुछ विचार या विषयों पर लिखना मुश्किल हो जाता है, क्योंकि वे विवादास्पद हो सकते हैं या लोगों को

चित्रा मुद्गल को निराला स्मृति सम्मान

प्रतिष्ठित कथाकार चित्रा मुद्गल को इलाहाबाद, उत्तर प्रदेश में निराला स्मृति साहित्य सम्मान से नवाजा गया। बाएं से डॉ. दूधनाथ सिंह, लेखिका चित्रा मुद्गल एवं प्रो. राजेन्द्र कुमार

किसी न किसी तरह वह घटना, उसका असर, आपको परेशान करता रहता है की क्या कहानी है! उस कहानी में जिन मुद्दों पर चर्चा की गई है, वे आपके भीतर कुछ हलचल पैदा करते हैं। आपको ऐसा लगता है कि आप उन बारीकियों का हिस्सा हैं जो कथा में निहित हैं। आप पर भी कुछ जिम्मेदारी हैं आप भी उन बारीकियों का स्रोत रहे हैं, भले ही आप इस पर विचार न करें। ऐसी बारीकियाँ एक व्यक्ति के मनोविज्ञान में गहराई से धंस सकती हैं, ठेस पहुँचा सकते हैं। लेकिन सच्चे लेखक को अपने विचारों को प्रकट करने का साहस रखना चाहिए, चाहे परिस्थितियाँ कैसी भी हों। जब मेरी कहानी 'बाघ' और 'लपटें' छपीं तब मुझे धमकियाँ मिली और जब मैंने 'फातिमा बाई कोठे पर ही नहीं रहती' लिखी तब मेरा घेराव कर दिया गया। 'जगदम्बा बाबू गाँव आ रहे हैं' के खिलाफ कोर्ट नोटिस आया था और धर्मयुग ने कहानी को छापने के लिए माफीनामा छापा था। लेकिन मैंने कभी भी लिखना नहीं छोड़ा और 'पोस्ट बॉक्स न. 203 नाला सोपारा' समाज के हर संघर्ष और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का सार है। और आप मेरे उपन्यास 'नकटौरा' को मेरा संघर्ष और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का ब्लूप्रिंट भी मान सकते हैं।

14. लेखकों को अच्छे लेखन के लिए क्या सुझाव देना चाहिए?

मनुष्यों को मानवीय धरातल पर उतर के मनुष्य समझ के सीख देना हर लेखक का कर्तव्य है। जब आप किसी कृति को पढ़ते हैं और वह आपके साथ गहराई से गूंजती है, तो वह कई हफ्तों या महीनों तक आपके साथ रहती है। आप सड़क पर चल रहे हों या अन्य कार्यों में व्यस्त हों, लेकिन ऐसी चिकोटियाँ भरते हैं कि उनके नाखून उस व्यक्ति के मानस में गड़ जाते हैं और भड़भड़ा कर खून निकल पड़ता है, आँसू निकल पड़ते हैं।

मैं हमेशा मानती हूँ कि इस पर गहरा विचार करना चाहिए। जब कोई कहानी आप पर असर डालती है और आपके मन में अंकित हो जाती है, तो यह परिवर्तन का आधार बनती है। जब आप अपराधबोध महसूस करते हैं या आत्म-विश्लेषण करते हैं, तो वह कहानी किसी न किसी तरह आपको प्रेरित करती है। तब आत्म प्रतिबिंब होता है। इसलिए, मैं सोचती हूँ कि कोई भी कृति तब ही अपनी क्षमता हासिल कर सकती है जब वह पाठक के साथ गूंजती है।

मैं उन कहानियों और उपन्यासों के कई उदाहरण दे सकता हूँ जो मेरे अनुभव का हिस्सा रही हैं और जिन पर हमने कभी सच में विचार नहीं किया। उन कृतियों ने हमें परीक्षण में डाला है। कुछ लोग कहते हैं कि साहित्य स्वान्तः सुखाय के लिए लिखा जाता है, लेकिन मैं इस धारणा पर सवाल उठाता हूँ।

आप लेखन के द्वारा किस प्रकार का आनंद प्राप्त करना चाहते हैं? मेरे लिए, मेरी किसी भी कृति में आनंद

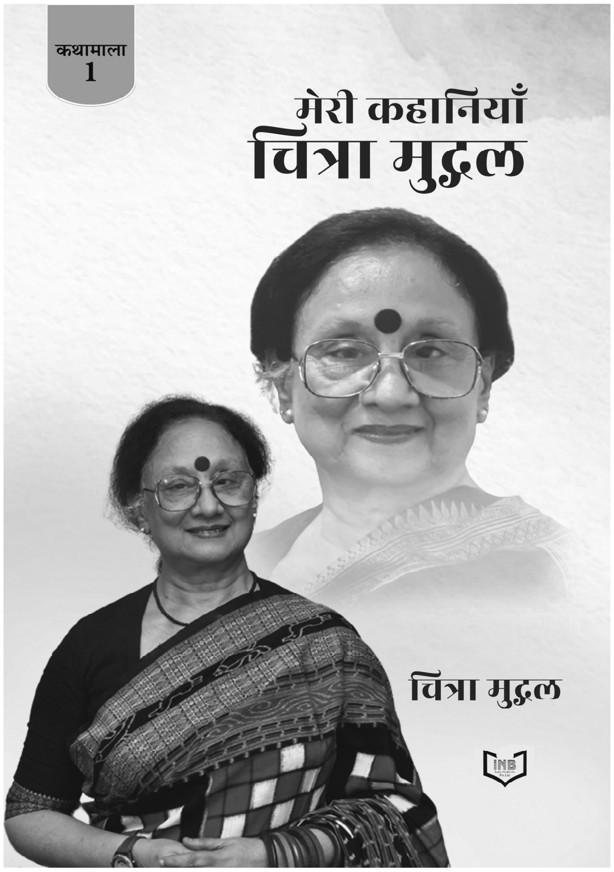

नहीं है। वास्तव में, यदि वे प्रकाशित भी हो गई हैंए तो भी मुझे लगता है कि मैंने विषय की गहराई को नहीं छुआ है, और मुझे और प्रयास करना चाहिए था। जैसे किसान बीज बोने से पहले मिट्‌टी को तैयार करता है, वैसे ही सृजन के लिए भी यही लागू होता है। किसान बार-बार अपनी हथेलियों में मिट्टी की जाँच करता है कि क्या यह वह बन गई है जो वह चाहता है, कि जब भी छोड़कर जाए तो उसको अपने में आत्मसात कर ले।

15. पाठकों को क्या संदेश देना चाहेंगी।

साहित्य राजनीति के आगे चलने वाली मशाल है। यह मेरे लिए एक ऐसा सत्य और एक ऐसा मूल्य है कि जब प्रेमचंद ने यह कहा होगा, तो क्या सोचकर कहा होगा?

राजनीति का मतलब है पूरे देश और समाज को सुचारू व्यवस्था देना। अगर राजनीति देश और समाज को सुचारू व्यवस्था नहीं दे पाती है, और अपने देश के आमजनए जो उसे वोट देते हैं, एक सपने के साथ देते हैं कि वह उनके भविष्य को बेहतर बनाएगी, वह उनके समाज को बेहतर बनाएगी, और वह उनके बुनियादी समस्याओं के प्रति जागरूक रहेगी। वह कोशिश करेगी कि उनके बुनियादी हक उन्हें मिलें, उनसे वंचित न हों, तो यह राजनीति के आगे चलने वाली मशाल लेखकों के लिए होती है, जो समाज के किसी भी वर्ग पर कलम चला सकती है।

राजनीति को भी नहीं छोड़ा जाएगा। अगर राजनीति गलत करती है, अगर अपनी जिम्मेदारी से मुँह मोड़ती है, तो आप देख रहे हैं और हम सब देख रहे हैं कि राजनीति कैसे कुनबावाद और परिवारवाद में फंस चुकी है। तो समाज की भलाई के लिए और आनेवाली पीढ़ी के लिए हमें समाज और राजनीति को समझना होगा।

मुझे लगता है की राजनीति भ्रष्ट हुई है। आज राजनीति समाज को लॉलीपॉप पकड़ाती है। इसीलिए प्रेमचंद ने कहा कि साहित्य राजनीति के आगे चलने वाली मशाल है और मुझे लगता है कि यह बात बिल्कुल सही है। लेखक सृजनात्मक होता है, दृष्टा होता है, और उसकी नज़र सब जगह होनी चाहिए। कोई समुदाय हो या कोई वर्ग, राजनीति को लोग कहते हैं 'राजनीति से हम चार हाथ दूर रहते हैं'। राजनीति से आप चार हाथ दूर रह ही नहीं सकते, नागरिक सुविधाओं के कण-कण में राजनीति घुसी हुई है, व्याप्त है। उसी का प्रतिफल है वह सुविधा और असुविधा।

इसलिए हर साहित्य के पाठक का कर्तव्य है कि वह साहित्य की दृष्टि को अपनी दृष्टि में उतारे और अपने मंथन से उन व्यक्तियों, समाज और राजनीति के अनकहे पहलुओं को पहचान सके जो हमारे सामने हैं और अपने और समाज के भलाई के लिए उन पर शोध करें। क्योंकि पाठक ही समाज है।

कथा/कहानी

मां की कोख, कुम्हार का आवां

चित्रा मुद्गल

जिस खौफनाक सुरंग से कुछ वर्षों पूर्व निकल आई हूँ उसमें फिर से दाखिल होना कितना मुश्किल है!

वह 29 सितंबर, 1991 की हमेशा की तरह पौ पसारती एक और सुनहरी सुबह थी। तिपाई पर था चाय का कुल्हड़ और हाथ में तना था अखबार का मुखपृष्ठ! चाय की ललक कप और गिलास से रिश्ता नहीं जोड़ पाती। कुल्हड़ों की खेप आती है नई दिल्ली स्टेशन के पहाड़गंज की ओर के प्लेटफार्म नंबर एक को आड़ देती पुल के नीचे से गुजरने वाली दीवार से सटे बैठे कुम्हार दंपती मीठालाल की पटरिया दुकान पर से। ऊपरी सुर्खियों में उलझी नजर जैसे ही नीचे उतरती है, अखबार चुटकियों की पकड़ से छूटकर नीचे गिर जाता है। यह सच नहीं हो सकता। इस सुर्खी को सच होना भी नहीं चाहिए।

आँखें धोखा भी तो खा सकती है? गलत पढ़ गई होंगी! उसकी पकड़ से वाक्य कितनी-कितनी बार डगमगाए हैं, ऊपर नीचे हुए हैं और उन्हें दोबारा पढ़ना होगा। काँपती चुटकियों ने अखबारों को पुनः साधने की कोशिश की मगर आँखें बेईमानी पर उतर आई है। भोर की सुनहरी उजास उनमें पिघलने लगी है और पिघली ही जा रही है। काली इबारत उस पिघलने में ऊभ-चूभ हो रही है। '2 सितंबर, 1991 रात एक बजे नियोगीजी रायपुर से अपने घर लौटे थे और तीन पैंतालीस पर हत्यारों ने खिड़की से गोलियाँ चला कर उनकी हत्या कर दी।'

हत्याएँ आए दिन हुआ करती हैं और अखबारों की सुर्खियां बनती रहती हैं और ये सुर्खियाँ कुछ पलों के लिए पिछली टीसों को कुरेद उनके गले लग, अगले ही पल विवशता की पपड़ी ओढ़ खामोश हो जाने के लिए बाध्य हो उठती हैं। मगर यह हत्या मात्र शंकर गुहा नियोगी की हत्या नहीं थी। यह हत्या मानवीय संघर्ष की हत्या थी। उसके संघर्ष को निष्क्रिय बनाने के लिए। उसे आतंकित करने के लिए। उसके मुँह पर ताले जड़ने के लिए। उसके सबक सिखाने और यह समझाने के लिए कि जितना और जो कुछ तुम्हें प्राप्त है उस पर सब्र करना सीखो। वही तुम्हारा प्राप्य है। वही नियति है। उसे यथावत स्वीकार कर लेना ही तुम्हारे लिए एकमात्र विकल्प है।

प्रश्न, लिखने वाले के घोर शत्रु होते हैं। जब तक घेरते रहते हैं और तब तक घेरे रहते हैं जब तक उन्हें कोई तर्कसम्मत ठौर-ठिकाना उपलब्ध नहीं होता।

भरभराते प्रश्न, द्वंद्व के अदहन में खदबदाते तपते लगे। यह हुआ तो इतनी आसानी से कैसे संभव हुआ? हजार-हजार लोगों की दुआओं को भेदता? दुआओं का कवच इतना कमजोर तो नहीं होता।

मेरे घुटके आंसुओं की हिचकियों को दरकिनार करता द्वंद्व में खदबदाता एक प्रश्न ढीठ-सा सिर उठाए निरंतर चुनौती देता रहा कि दमनकारी शक्तियाँ जनसंघर्ष और जन सरोकारों के ताप को जड़मूल से नष्ट करने के लिए वही कर रही हैं जो अब तक करती चली आई हैं और आगे भी करती रहेंगी। लेकिन क्या ऐसा नहीं हुआ और नहीं हो रहा है कि दमनकारी शक्तियों के खिलाफ प्रतिरोधी स्वर बुलंद करने वाले हुए। श्रमिक संगठनों द्वारा स्वयं की आत्म विवेचना की अनिवार्यता से मुंह मोड़े रहना एवं संगठन के मध्य उपजी असहमतियों और असंतुष्टियों को अनदेखा करना उन्हीं दंभी सत्तात्मक प्रवृत्तियों का भी द्योतक नहीं है, जिसके चलते उन्होंने उन औजारों का अनुसंधान ही नहीं किया जो उन्हें उनकी

दुर्बलताओं और दुराग्रहों से अवगत करा, उसके परिष्करण का उपाय करता ताकि उनकी संगठनात्मक शक्ति छीजने या विभाजित होने से बच सकती? अपनी दुर्बलताओं से मुकाबले के लिए सन्नद्ध होना, उन्हें स्वीकार करने का साहस जुटाना कि निष्ठ संघर्ष-चेतना के बावजूद उनमें भी कुछ आत्महंता सांधे हैं, अनैतिक अंतर्विरोध और निजी स्वार्थों के विचलन मौजूद हैं जिनके चलते दमनकारी ताकतें उनके हितों को तिरस्कृत करने के बावजूद उन्हीं में सेंध लगा अपने हित साधने में सफल होती हैं।

जानने की जरूरत नहीं, आखिर वह कौन है जो उनमें से टूटता है और टूटने के उपरांत भी उनके बीच बने रहकर उनका होने का भ्रम बनाए रख स्वयं अपने और अपनों के हितों के विरुद्ध खरीदने से बिक जाता है?

नियोगी कब कहाँ होंगे, क्या कर रहे होंगे, कब घर पहुँचेंगे, कहाँ सोचेंगे पल छिन की ये सारी सूचनाएँ भाड़े के टट्टुओं तक उनमें से ही कोई उन्हें उपलब्ध कराता है और उनकी घातों में अपरोक्ष रूप से शामिल हो उनके उद्देश्य को सफल बनाने में सहायक होता है, जिसे किन्हीं भी हालातों में नहीं होना चाहिए था।

विचारणीय मुद्दा है यह। चिंतन की मांग करता है। संघर्ष का क्या कोई वर्ग होता है? उसे मंदिर, मस्जिद, गिरजाघरों के खांचों में सीमित किया जा सकता है? संघर्ष के प्रसव का आधार होती है मनुष्य की चेतना। चेतना ही उसे अभिमंत्रित करती है कि जीवन की प्राथमिकताएं क्या है? उसे क्यों लड़ना है? क्यों उसे अपने से ऊपर उठ वंचितों, शोषितों, दलितों के हक में खड़े होना है? अंगीठी तब तक नहीं तपती जब तक कोयले साथ नहीं सुलगते। हाथ में हाथ धर लपट नहीं धरते तो कुछ भी नहीं सीझता! पूंजी, संघर्ष के लक्ष्य को सीझता हुआ देखना भी नहीं चाहती। वह चेतना के ताप पर बाल्टी नहीं, पूरा कुआँ उड़ेल कोशिश करती है कि अंगीठी दहक न पाए। बल्कि दहकाने की चेतना ही क्षरित हो जाए। मनोबल टूटता है तो रह-रह टीसते अभाव सहसा चटख हो आते हैं।

असहमतियों और अंतर्विरोधों की ऐसी खौफनाक परिणति! दल में धंस रहे हैं....

नियोगी की हत्या-भारतीय जन मानस की चेतना की हत्या है। संघर्ष की हत्या है।

संघर्ष की हत्या ने मुझे महीनों उद्विग्न बनाए रखा। द्वंद्व से उबरने का एकमात्र उपाय यही नजर आया कि संघर्ष की हत्या पर मौन साध लेने का अर्थ होगा, उन्हीं दमनकारी शक्तियों के पाले में खड़े हो उनसे सहयोग करना। घोर असंतुष्टि और अवाक् कर देने वाले अंतर्विरोधों के चलते ही मैंने स्वयं को बरसों तक श्रमिक संगठनों की सक्रिय भागीदारी से पृथक कर लिया था। उन दिनों भी क्षोभ-ग्रस्त हो ऐसे ही द्वंद्व से गुजरी थी।

भ्रष्ट राजनीतिक समीकरणों के मोहरे बनकर रहना ही क्या कामगारों की नियति है! परतों में एक परत यह भी है कि वर्चस्ववादिता की होड़ में कहीं उन्नीस नहीं हैं श्रमिक शुभेच्छु! समझ लिया है उन्होंने शॉर्टकट का निचोड़ यही है कि ऊँचे कद को रास्ते से हटाए बिना उस कद को झपटा नहीं जा सकता। कितनी-कितनी काली भयावह परतें हैं उस नग्न यथार्थ की। उन भटकनों की, जिन्हें वहाँ प्रवेश के लिए कोई चौखट हासिल नहीं होनी चाहिए थी।

महासागर की कुछ डुबकियाँ उसकी निस्सीमता को आंकने-नापने के लिए पर्याप्त नहीं होती, लेकिन यथार्थ यह भी है कि जल का खारापन सूख रहे होठों को भी बरज देता है कि इस जल को मीठेपन से अभिमंत्रित किए बिना उपयोग में नहीं लाया जा सकता है।

दत्ता अंकल के बहुत मनौव्वल के बावजूद मैंने अपनी लड़ाई का गलियारा अलग चुन लिया था।

वह गलियारा श्रमिक संगठन से दूर नहीं था। न उसके सरोकारों से दूर! बल्कि उसका 'उप' कहलाकर भी वह अपनी स्वायतता की लड़ाई स्वयं लड़ना चाहता था।

वह गलियारा था—श्रमिक स्त्री की अस्मिता के

संधान का। वह संधान अब तक जारी है। पश्चिम बंगाल के जलपाईगुड़ी से छत्तीसगढ़ पहुंचे नियोगी को भी लगा था कि मजदूरों के सुख चैन के लिए है उनकी स्त्रियों को चेतना संपन्न बनाना। उनकी 'महिला मुक्ति मोर्चा' की प्रमुख कुसमाबाई जो अब नहीं रही, ने उस लड़ाई को पूरी शिद्दत से लड़ा। दस हजार मजदूरों का शराब छोड़ना मामूली बात नहीं थी।

नियोगी की हत्या ने मुझे उन्हीं गलियारों में ले जाकर खड़ा कर दिया।

मैंने तय किया, अब मुझ 'आवां' लिखना होगा। उसका लिखना अब और स्थगित नहीं किया जा सकता।

ऐसा नहीं है कि अट्ठाइस सितंबर उन्नीस इक्यानवे से पूर्व मैंने कभी 'आवां' लिखने के विषय में न सोचा हो। अनुभव के डंक बड़े विषैले होते हैं। और उनका विष रह-रहकर लहर मारता रहता है। लेकिन यह स्वीकार करने में मुझे कतई गुरेज नहीं कि 'आवा' लिखने के लिए जिस साहस और आत्मशक्ति की मुझे जरूरत थी, ढिठाई पगी जिद्द की हद तक कि मेरा व्यक्ति मेरे लेखक हाथ झटकना भी चाहे तो लेखक की पकड़ से मुक्त न हो पाए—वह शायद अंतस में पहले नहीं संचित कर पाई थी।

विचित्र विडंबना है। मनुष्य का भ्रूण सात, आठ या नौ महीने में जन्म ले लेता है मगर सर्जना का भ्रूण मनुष्य की कोख के कायदे कानूनों के अनुसरण नहीं करता। शायद यही कारण है कि किसी रचना के प्रसव में महीने दो महीने लग जाते हैं तो किसी के प्रसव में बीस-इक्कीस वर्ष।

'आवां' लिखने में भी लगभग साढ़े छह वर्ष लग गए। बीच में फिर लंबा व्यवधान आया। लगा, 'आवां' अब कभी पूरा नहीं हो पाएगा। 22 सितंबर, 1993 की काल रात्रि ने कार दुर्घटना में हमसे हमारी बेटी अपर्णा को छीन लिया...अवध की सांसें अर्पणा को! 27 सितंबर, 1991 को दामाद शशांक नहीं रहे। जो दुर्घटना की रात्रि से ही कॉमा में पड़े हुए थे। दोनों एक दूसरे के बगैर रह नहीं सकते थे, साथ गए। नौ महीने भर का दांपत्य जीवन जी कर।

....अपर्णा के बिना अवध जी नहीं पा रहे थे। छत पर टिकी उनकी सूनी आंखों में जब-तब बाढ़ लहराने लगती कि उस बाढ़ को समेटती मेरी चुन्नी टपकने लगती। फोन की घंटी बजती तो कहते—'जाकर देखो चित्रा, बिट्टू का फोन होगा। और हाँ, उससे कह दो मैंने समय पर दवा खा ली थी।'

सुनकर मुंबई से भारतीजी, मोतिया की महकती लड़ी-सी हँसी बिखेरने वाली पुष्पा दी के साथ दिल्ली आए तो अपने बहन-बहनोई पद्मा दी और पंडित सुरिंदर सिंह के मंडी हाउस स्थित तानसेन मार्ग वाले घर में ठहरे। अवध की नाजुक हालत देखी तो चिंतित हो कहने लगे, 'गुड्डू (बेटा राजीव) का ब्याह कर लो चित्रा, अवध बच जाएगा। बच्चे ही उसे नई जिंदगी दे सकते हैं। शब्द कुमार (दोनों ही परिवारों के घनिष्ट पारिवारिक मित्र) अपनी छोटी बेटी शैली के लिए वर ढूंढ़ रहे हैं, तुम उसके बारे में क्यों नहीं सोचती? शैली, बिट्टू की बचपन की सहेली है। घर बार तुम्हारा सब उसका देखा-भाला हुआ है। बिट्टू न उसके बिना रह पाती थी न वह बिट्टू के बिना। घर भर जाएगा चित्रा... और उसने ही तो बिट्टू के न रहने के उपरांत तुम्हारे घर में उसकी एक-एक चीज संजोकर रखी है।'

भारतीजी बंबई लौट गए। कहकर गए, ब्याह के लिए गुड्डू न मानेगा तो मैं मनाऊंगा उसे। गुड्डू मुंबई में था।

तभी दीवाली आई। भीतर पसरा गीला अंधेरा घर में पसर रहे अंधेरे के साथ और गढ़ाने लगा।

अचानक घर की घंटी बजी। बैठक की बत्ती जलानी ही पड़ी। दरवाजा खोला तो देखा देहरी पर दादा (नंदनजी) और जीजी (शक्तिजी) लदे-फदे खड़े हुए हैं।

''पूजा का सामान है बेटा, सालभर का त्योहार है यूं अंधेरे में नहीं बैठते।''

खील, बताशे, दीप, बाती, गणेश, लक्ष्मी की नन्हीं

प्रतिमाएँ साथ में मेरे लिए सिल्क की नई साड़ी—''जल्दी लौटना है हमें, घर पर शन्नो (बड़ी बिटिया) पूजा की तैयारी कर रही होगी। उठो, आंसू घुटको और नई साड़ी पहन पूजा की तैयारी करो। अवध को देखो, ऐसे जी पाएगा वह? भैया नहीं आया मुंबई से?''

''दीवाली नहीं मनानी है उसे!''

''तुमने मान लिया उसका बचपन ! साल खत्म होते ही उसकी शादी की सोचो। लिखना-पढ़ना शुरू करो। उपन्यास का क्या हुआ?''

''क्या कहती, 'आवा' अब नहीं सुलग सकता।''

दादा और जीजी चलने लगे तो पांव छूते हुए मैंने पूछा उनसे कि, ''भारतीजी ने शैली की चर्चा की है गुड्डू के लिए! आपने तो शैली को देखा है। क्या सचमुच बात चलानी चाहिए। बिट्टू और शशांक को गए अभी साल पूरा नहीं हुआ।''

''बात करने में हर्ज नहीं, प्यारी लड़की शैली।''

शैली घर आ गई। 19 मई, 1995 को मुंबई में फेरे पड़ गए। राजीव की एक ही शर्त थी, कोई आडंबर नहीं होगा। न ढोल मंजीरा बजेगा। भारतीजी को इतना खुश मैंने कभी नहीं देखा।

घर आते ही शैली ने घर की पूरी जिम्मेदारी संभाल ली। कुछ महीनों वह मुंबई में रही लेकिन बेटू (पोता शाश्वत) दिल्ली में दरियागंज के 'संजीवन' में हुआ। वह 17 अप्रैल, 1986 की दोपहर थी। डॉ. कोटवानी ने लेबररूम से बाहर आ सूचना दी। लड़का हुआ है। ''आपको तो लड़की चाहिए थी न मुद्गलजी!'' उनकी सहायक दीपिका रस्तोगी ने कहाँ पोते को देखते ही अवध मुस्कराकर दिए। तीन साल बाद। बाथरूम से आती सिसकियों की आवाजें बंद हो गई। मैंने 'आवां' की प्रथम पांडुलिपि का फीता खोल लिया।

तलाश थी अब उस एकांत की जिसकी निस्तब्धता में उन सूखी बस्तियों का कलरव अपने बजबजाते ठिकानों की नींव रख पाता! जो अनभिज्ञ थे उन समीकरणों से जिसकी आड़ में व्यवस्था और पूंजी का गठजोड़ उनके अपनों से अपनों को फोड़ अपनी बंदूकें उनके कंधों पर टिका लेता है। एक ही देश समाज में जी रहे नागरिकों को समता के पाठ तले विषमता की खाई में ढकेलता। उन्हें सपनों के बाजार परोसता। इस पार भी ठगता उस पार भी ठगता। सपने सूखी रोटी चबाने वालों तक भी पहुँचते हैं। उन्हीं के श्रम से तैयार हुए सपने उनके मन मसोसते घरों को भी लुभाते ललचाते हैं कि उनकी रसोइयों में चार ईंटों पर टिके चूल्हे, सिगड़ी और स्टोव की बजाय गैस क्यों नहीं है? वे रेडियो और टीवी से वंचित क्यों हैं? सरसराती रेशमी साड़ियों पर फॉल टांकने वाले उँगलियों के सुइयों की चुभन झेलते पोर सोचते हैं और सोचते ही रह जाते हैं कि ये हाथ उन साड़ियों को अपनी देह पर क्यों नहीं लपेट पाते?

सपनों को परोसने वाले शायद यह मानकर ही चलते हैं कि उसकी क्रय शक्ति आदमी के ईमान से लेकर उसकी भावना, संवेदना, विवेक, निष्ठा सब कुछ खरीदने और खरीदकर उपभोग करने का सामर्थ्य रखती है। सृष्टि को उसकी विरासत सौंपने वाली स्त्री की कोख भी उसकी क्रय सामर्थ्य से बाहर नहीं।

कहाँ जाऊँ?

तय किया, शिमला मित्र केशव से बात करूँगी।

1990 में प्रकाशित अपने पहले उपन्यास 'एक जमीन अपनी' का फाइनल ड्राफ्ट शिमला स्थित 'लेखक गृह' में ही रहकर पूरा किया था। रौनक भरे माल रोड पर 'ओबेराय क्लासिक' के निकट खासी ऊँचाई पर स्थित था 'लेखक गृह'। संस्कृति विभाग के सौम्य निदेशक लघु कथाकार श्रीनिवास जोशी ने कमरे में मेज, कुर्सी और टेबिल लैंप की व्यवस्था करवा दी थी, जिसके बिना लिखना संभव न था। खाना बनाने आदि की जहमत से भी उन्होंने मुक्ति दिला दी। 'लेखक गृह' की देखरेख करने वाले रामप्रसाद को जिम्मा सौंप। बस, आवश्यकतानुसार अनाज पानी भर मंगाना होगा। मुझे खिलाकर उसी में वह भी खा लिया करेगा। कमरे का किराया मात्र बीस रुपये प्रतिदिन।

राजा साहब वीरभद्र जी उन दिनों हिमाचल प्रदेश के मुख्यमंत्री थे। 'लेखक गृह' की परिकल्पना चाहे किसी की भी रही हो, उसे अमली जामा पहनाने की पहल उन्हीं की थी, पूरे देश में हिमाचल प्रदेश ही एकमात्र ऐसा राज्य था जिसने देखभर के लेखकों को 'लेखक गृह' का नायाब तोहफा सौंपा था। वरना शिमला प्रवास लेखक की जेब से बाहर की बात थी। 'लेखक गृह' की सुविधा का लाभ मुझसे पहले निर्मलजी, राजी सेठ, गोविंद मिश्र, गगन गिल आदि भी उठा चुके थे। अनिता राकेश ने कुल्लू वाले 'लेखक गृह' रहकर अपनी डायरी का दूसरा पूरा भाग पूरा किया था। सांझ 'लेखक गृह' में कभी अकेले न दाखिल होती। केशव, तुलसीरमण, रेखा और जोशीजी में से किसी न किसी को संग ले आती थी।

एक सांझ अकेली छोटे शिमले की उतराई उतरती चली गई थी। थककर लौटी तो पाया, मेरे लिखे पन्नों के एक पन्ने के हाशिये पर लिखा हुआ था, 'इतना कैसे लिख लेती हो-केशव!'

यानी केशव आकर लौट गए हैं।

केशव को फोन किया तो उधर से खुशी उछली-''दिल्ली वालों को शिमले वालों का सलाम! कैसे याद किया?''

''लेखक गृह में कमरा बुक हो सकता है?''

''लेखक गृह अब उस जगह नहीं जिस जगह तुम आकर ठहरी थी।''

''क्यों, चुप क्यों हो गईं? घर है न, जब तक चाहो घर में रहकर लिखो। घर में होता ही कौन है, सब अपने काम धंधे पर निकल लेते हैं।''

''घर से निकलकर घर में बंद नहीं हो सकती।''

''कुल्लू वाले 'लेखक गृह' में चली जाओ?''

''सोच रही थी मगर... मित्र नहीं है वहाँ। शिमले में तुम घर फोन कर लिया करते हो और अवध के हालचाल मिल जाया करते हैं।''

''हूँ, यह दिक्कत तो है....''

कुछ परेशान-सी हो आई। पांडुलिपि पहले तो फीता नहीं खोलने देती, छूने भर देती है तो घर बाहर की व्यस्तता उतनी भर छूट को हुसका देती है। केशव से बात हुई घंटाभर नहीं बीता होगा कि घर के निकट स्थिति नवभारत टाइम्स अपार्टमेंट से स्वर्गीय लेखिका और फिल्म मेकर आभा दयाल का फोन आ गया। आभा ने स्मरण करवाया, अपनी कहानी 'गिल्टी रोजेस' उसे देने के बारे में मैंने क्या निर्णय लिया है? ''सोचने के लिए थोड़ा और वक्त चाहिए आभा।'' 'स्वर' मेरा कुछ उचाट रहा होगा। आभा ने आश्वस्त किया, ''चित्रा दी, मैं और पुनीत 'गिल्टी रोजेस' पर बहुत बढ़िया फिल्म बनाएँगे। ज्यादा टाल-मटोल करेंगी तो विषय चुरा लूंगी। क्या कर लीजिएगा?'' मुझे हँसी आ गई। पूछा उसने कि मैं कुछ परेशान-सी लग रही हूँ, क्या बात है? अवधजी तो स्वस्थ हैं न? मैंने उसे सारी समस्या बताई। आभा ने मेरी समस्या चुटकियों में हल कर दी। उसकी एक डाक्यूमेंटरी मेकर मित्र सुमिता अपने चित्रकार मित्र के पास जर्मनी दो ढाई महीने के लिए गई हुई है। बसंत कुंज में उसका दो बेडरूम वाला बढ़िया फ्लैट खाली है। फ्लैट की चाबी मयूर विहार में रह रही उसकी बड़ी बहन के पास रखी हुई है। वह और पुनीत साफ-सफाई के बहाने वहाँ रह भी आते हैं। फोन आदि भी है। मैं वहाँ रहकर काम करना चाहूँ तो जाकर रह सकती हूँ। सुमिता की नौकरानी वहीं डी ब्लाक में काम कर रही है। उसे फोन कर देंगे। झाड़ू-बुहारी कर जाया करेगी।

पुनीत और आभा हफ्ते भर के अंदर मुझे बसंत कुंज छोड़ आए। फोन पर उन्होंने मेरी सुमिता से भी बात करवा दी। सुमिता ने मुझे यह भी बता दिया कि उसके 'बार' की चाभी किस जगह रखी हुई है, उसका सौभाग्य होगा अगर मैं 'बार' का इस्तेमाल करूँगी। सुमिता की बेतकल्लुफी ने भीतर तक छू लिया। डेढ़ महीने के लगभग मैं सुमिता के फ्लैट में रही। पुनीत और आभा फोन कर वहाँ मिलने आते रहे। 'आवां' छपकर आया मगर वे दोनों उसे पढ़ने के लिए जीवित नहीं थे। अक्तूबर 2002 में दोनों असामयिक दर्दनाक मौत का

शिकार हो दुनिया से कूच कर गए। आभा आगरा की थी। अवध उसे बहुत मानते थे। बिट्टू और शशांक के बाद आभा और पुनीत का इस तरह जाना उन्हें गहरे विचलित कर गया। मैं आज तक पश्चाताप से भरी हुई हूँ—'गिल्टी रोजेस' उसे क्यों नहीं दी। अपनी बिटिया का जन्मदिन इतनी धूमधाम से मनाते थे आभा और पुनीत मानो वह कहीं की राजकुमारी हो। उनके लिए तो वह उनकी राजकुमारी ही थी।

कागजों को उलट-पलट भर लेने की सुविधा देने वाले 'आवां' के प्रथम ड्राफ्ट ने वहाँ उस फ्लैट में बड़ी मुश्किल से अपनी चौखट खोली।

लिखे शब्द अर्थों की पोटली दबाए प्रतिपल यह अहसास कराते रहे-जाने क्या लिखा है मैंने! आवां का आरंभ यह नहीं है। उसका आरंभ इस तरह कतई नहीं हो सकता। लिखना नहीं आता है मुझे। पन्ने भर लेना खिलना नहीं होता। अब चौखट से वे दिशाएँ नहीं खुलतीं जिनके पटों के खुलते ही समांतर दुनिया के कितने नग्न यथार्थ, अपनी देह पर से वस्त्र हटा, निर्वस्त्र हो, उन नीलों और खरोचों के मर्म को उद्घाटित करने की पीड़ा झेलते हैं।

द्वंद्व, रात के साथ न रीतते अंधेरे-सा मन को उलझाए संतप्त किए रहा बिना दूध की चाय का गिलास हाथ में थामे मैं मन-मन भर के हो आए पांवों को कठिलती-सी उठाती चहलकदमी करती रही। रसोई से बैठक, बैठक से बालकनी, बालकनी की नन्हीं दीवार फलांग सूनी सड़क के उन पीले उजियारों वृत्तों तक, जिन्हें बिजली के खंभों ने उसे कालिमा से मुक्त करने की कोशिश में ओढ़ा रखा था।

उजास के उन वृत्तों ने अपनी चादर में से कुछ टुकड़े मुझे भी ओढ़ा दिए। चेतना के अंतर प्रकोष्ठों में जब तक रचना मुकम्मल नहीं पकती, अपना अपेक्षित शिल्प नहीं तलाश पाती। बिना आंख-नाक के वह कैसे जन्म ले ले!

विचित्र मगर यह सत्य है कि शिल्प का संधान जब तक वह नहीं कर लेती, उसका वास्तु निर्मित नहीं होता। लिखे पौने चार सौ पृष्ठ फाड़ डाले। डेढ़ वर्ष का परिश्रम पलों में चिंदियों में बदल गया। रचना के पहले ड्राफ्ट को मैंने कभी नष्ट नहीं किया। वह अपेक्षित न भी बन पड़ा हो तब भी जाने कौन-सी पंक्ति कब कहाँ टेका देने को हथेली बढ़ा दे, भटकन को भटकने से बचा ले।

तब, चौखट कौन खोले और 'आवां' सुलगाए! अन्नासाहब, पवार, संजय कनोई, शाहबेन, किशोरी बाई, अंजना वासवानी, सुनन्दा या नील्लमाया, देवीशंकर पांडे या उनकी युवती बेटी नमिता पांडे? कौन बनेगा संजय जो देहरी के भीतर बंद रहकर केवल उसी का अंतर्साक्ष्य न बने, उसके अंतर्साक्ष्यों के गवाल खोल उन देहरी और गली-गलियारों का अंतर्साक्ष्य भी बन सके जो सड़क के इस पार होकर भी उस पार से अलग नहीं है।

चहलकदमी के हाथ छूटे नहीं रहे। मगर सिरा तो हाथ लगे। रुआंसा मन बैठक में पड़े लंबे सोफे में अधलेटा हो आंखों की कोहनी से ढांप उसे तसल्ली देता थपकाने सहलाने लगा कि थकान की लोरी ने आंखों को ऊंघ में खींच लिया। अचानक महसूस हुआ, किसी ने आंखों पर टिकी कोहनी को छुआ है। भ्रम होगा। ऊँघ ने सोचा भ्रम नहीं था। किसी ने फिर से कोहनी को छुआ ही नहीं बल्कि आंखों पर से कोहनी हटा अंध तोड़ने की कोशिश की। ऊंघने आंखें खोल दीं।

''तुम! कौन हो तुम?''

''पहचाना नहीं मुझे?''

''कैसे पहचानूं?''

उसने मेज के नीचे पड़े चिंदियों के ढेर की ओर इशारा किया—''मैं उन कागजों में ही तो जन्मी हूँ। लकवाग्रस्त मजदूर नेता देवीशंकर की पांडे की बेटी।''

''तुम...तुम नमिता हो?''

''जी चलिए उठिए पैड पर कागज लगाइए और बैठिए मेज पर मैं ही वह चौखट हूँ जिसकी आपको तलाश है।''

पैड पर टेबिल लैंप की रोशनी का वृत्त फैल गया। नमिता ने कहा, वह घर लौट रही है और चर्च गेट स्टेशन

से लोकल पकड़ेगी। क्यों नहीं मैं उसके साथ हो लेती?

मैं नमिता के साथ महिलाओं के डिब्बे की ओर दौड़ पड़ी...

'आवां' के दूसरे ड्राफ्ट को मैंने चित्रकार और इंकमटैक्स कमिश्नर मित्र संगीता गुप्ता के ग्रेटर कैलाश पार्ट-वन स्थित आर.ए. ब्लाक वाले फ्लैट में पूरा किया था। तीसरा ड्राफ्ट उप्पल रोड स्थित वैज्ञानिक संस्थान सी.सी.एम.पी. हैदराबाद में रहकर पूरा किया। संगीता के आत्मीय घर से मृदुला गर्गजी का घर दस मिनट की दूरी पर था। संगीता ही वहाँ बहुत जिद करके, मुझे ले गई थी। मैं वहाँ जाना नहीं चाह रही थी। डर रही थी।

पपड़िया घाव पर कहीं नाखून न लग जाए। नाखूनों को झेलने का सब्र अब शेष नहीं था। मृदुलाजी प्रकृतिस्थ थी। पीड़ा की पिघलन को वे निरंतर संयत किए रहीं। बैठक में बैठे हुए निगाहें उस हिस्से पर भी गई जहाँ अपर्णा शशांक की मुस्कराती तस्वीर के समक्ष इलेक्ट्रॉनिक दीया जल रहा था। अपर्णा की तस्वीर पर उसका मंगलसूत्र लटक रहा था। लगा, वे अपने घर में कितने इत्मीनान से बैठे हुए हैं। जब चाहेंगे तस्वीर से बाहर निकल बांह में बांह डाल घूमने के लिए चल देंगे।

जाने कितनी देर मैं उनको ताकती उनके सामने ही खड़ी रही कि कहीं हमारे बैठे रहते हमें बैठक में छोड़ वे बाहर घूमने न चल दें। खुनक भरी हवा-सी रेशमी सरसराहट हर पल उनमें डोलती उन्हें डोलाए रहती थी।

सी.सी.एम.बी. ने पहली बार मुझे 14 सितंबर को हिन्दी दिवस पर 'विज्ञान और हिन्दी' विषय पर बतौर मुख्य अतिथि बोलने के लिए बुलाया था। हिमांशुजी भी उस कार्यक्रम में विशिष्ट अतिथि के रूप में आमंत्रित थे। ओजस्वी उद्घाटन भाषण हिन्दी में दिया था तेलुगू के शिखर कवि श्री शेषेन्द्र शर्मा ने।

एम.एफ हुसैन की बृहतकाय चित्र कृति से सजा-संवरा फूलों की महमहाती क्यारियों से घिरा सी.सी.एम.बी. का शांत मनोहारी परिवेश; उसके बेहद साफ-सुथरे सुविधाओं से लैस अतिथि गृह के कमरे—जी कुछ दिनों वहाँ आकर रहने और रहकर लिखने के लिए ललक उठा। वहाँ के सौम्य हिन्दी अधिकारी चन्द्रशेखर से चर्चा हुई तो उन्होंने आश्वस्त किया कि हमें तो बहुत खुशी होगी अगर आप हमारे बीच यहाँ आकर रहेंगी और रहकर लिखेंगी। उप-निदेशक डॉ. पी.डी. गुप्ता से बात हुई तो उन्होंने सुझाया। घर पहुँचकर हमें इस बाबत एक पत्र भेज दें। हम एक-डेढ़ महीने का हिन्दी के संदर्भ में कोई ऐसा कार्यक्रम बना लेंगे कि हफ्ते में एक बार आप वैज्ञानिकों को हिन्दी में कार्य करने के लिए प्रेरित करें और शेष समय लिखने में लगाएँ। आपके रहने-खाने की व्यवस्था हो जाएगी।

इतवार के दिन हमारी कैंटीन बंद रहती है तो उस दिन खाना आप हमारे साथ हमारे घर पर खाएंगी। आप को किसी किस्म की परेशानी नहीं होगी। शहर में जब भी घूमना चाहें-जहाँ जाना चाहें—गाड़ी का प्रबंध हो जाएगा। आप हमारी मुख्य अतिथि जो होंगी।

अगले हिन्दी दिवस के एक माह पूर्व ही मैं सी.सी. एम.बी. हैदराबाद आ गई। जैसा डॉ. गुप्ता ने कहा था वैसा ही प्रबंध उन्होंने मेरे लिए कर दिया। बल्कि जिस कमरे में मैं पहली बार आकर ठहरी थी, उसी में दूसरी बार भी आकर ठहरी। वही मेज कुर्सी, वही टेबिल लैंप। वही आत्मीय जन। मैंने 'आवां' के तीसरे ड्राफ्ट पर काम करना शुरू कर दिया। हफ्ते भर बाद विभिन्न मुद्‌दों और विषयों पर जब हिन्दी में बोलना और अपने लिखे पर्चे को हिन्दी में पढ़ना आह्लाद से भर देता। सभी ने मुक्त कंठ से स्वीकारा कि अगर विज्ञान को सामान्य जनमानस तक अपनी पहुँच बनानी है तो उसे हिन्दी और मातृभाषाओं में आना ही होगा।

उसी प्रवास में तेलुगू के अनेक वरिष्ठ और नए लेखकों से मिलने का सुयोग भी प्राप्त हुआ। तेलगू के हिन्दी विद्वानों में से भी कुछ से मिलना हुआ जिनसे मेरा पहले से पत्र-व्यवहार था। स्वर्गीय दंडभूडि महीधर भी उनमें से एक हैं। बहुत ज्यादा मिलना-जुलना संभव नहीं था। लेखन की एकाग्रता दरकती थी। तेलगू के ऋषि

तुल्य लेखक राबुरि भारद्वाज से मिलना उस प्रवास की उपलब्धि थी। वे अतिथि गृह में डॉ. विजय राघव रेड्डी और उनकी पत्नी शकुंतलाजी के साथ भेंट करने आए थे। मैं वहाँ लिखने के उद्देश्य से ठहरी हुई हूँ, यह जानकर इतने प्रसन्न हुए कि कुर्ते की जेब से ग्यारह रुपये निकाल और उस पर पान का पत्ता और कतरी हुई सुपारी रखकर उन्होंने मुझे आशीर्वाद स्वरूप भेंट किया।

आज भी मेरे पास वो ग्यारह रुपये और सूखा पान का पत्ता संजोए रखे हुए हैं। आशीर्वाद थमाकर वे उठकर मेज तक गए और पैड पर अधलिखे पन्ने पर आर्द भाव से इस तरह हाथ फेरा मानो शब्दों को जगा रहे हों!

हिन्दी उन्हें नहीं आती थी। रेड्डीजी ने संवादक की भूमिका निबाही। राबुरिजी की साहित्य अकादमी सम्मान से सम्मानित पुस्तक 'जीवन समरन' का हिन्दी अनुवाद मैं पढ़ चुकी थी। पढ़कर उनके सामाजिक सरोकारों के प्रति खासी प्रभावित हुई थी। समाज के निम्न तबके की सुधि ली थी उन्होंने अपनी उस कृति में। उनकी अनेक चर्चित कृतियों को हिन्दी में लाने का श्रेय प्रसिद्ध समाजवादी विद्वान स्व. भीमसेन निर्मल को जाता है। मैंने उनसे प्रश्न किया था—''आप हिन्दी विरोधी तो नहीं है?'' उनका उत्तर था—''मेरी प्रबल इच्छा है, मेरा संपूर्ण साहित्य मृत्यु से पूर्व मरणोपरांत हिन्दी में उपलब्ध हो। हिन्दी में आने के बाद ही माँ, किसी भी भाषा का लेखक राष्ट्रीय लेखक बनता है।''

मिलने पर राबुरिजी सदैव मुझे माँ कहकर ही संबोधित करते हैं।

उस भेंट के उपरांत दिल्ली में उनसे 'आंध्रा एशोसिएशन' के अतिथि गृह में तेलगू के एक अन्य लेखक, अनुवादक श्री वी.वी. रामाराव के साथ भेंट हुई जिन्होंने 'तपस्वी' उपन्यास लिखा है। उस संक्षिप्त मुलाकात में उन्होंने मुझे अपनी मर्मस्पर्शी अद्भुत पुस्तक 'एक उजाले के लिए' भेंट की जो उन्होंने अपनी स्वर्गीय पत्नी की स्मृति में लिखा था और जिसका अनुवाद तेलुगू से हिन्दी में भीमसेन निर्मलजी ने ही किया था।

फिर तो उनसे कई मुलाकात हुईं। बातें भी। मुद्दों पर चर्चा भी।

'आवां' का चौथा और अंतिम ड्राफ्ट पूरा हुआ मेरी अभिन्न मित्र और देश की शीर्षस्थ रंगकर्मी ऊषा गांगुली के प्रिंस अनवर शाह रोड वाले घर पर। विचित्र है पर सत्य है। ऊषा के घर की बैठक में रखी जाने वाली मेज पर मेरी कितनी-कितनी रचनाओं का कच्चा और अधूरापन पूरा हुआ है। 'आवां' का अधूरापन भी वहीं उसी मेज पर जाकर पूरा हुआ। ऊषा ने अंतिम परिच्छेद पढ़कर उस पर अपनी अंतिम मुहर लगाई। ''बस, यह 'आवां' का फाइनल और अंतिम ड्राफ्ट है। अब इसमें और कुछ करने की जरूरत नहीं। भूमिका भी यहीं लिख लो। हाँ, जीजा (अवध) अगर कुछ कहें तो उस पर विचार कर लेना।''

भूमिका भी उसने पढ़ ली। मैंने दिल्ली वापस लौटने का टिकट निकलवाने के लिए उससे कह दिया। 'आवां' के अंतिम ड्राफ्ट को अब आकर किसी की मुहर की जरूरत थी तो अवध की।

अक्सर ऐसा नहीं होता और इसे संयोग ही कहेंगे कि उपन्यास की समग्र दृष्टि को रूपायित करता उसका शीर्षक आरंभ में ही सूझ जाए। शीर्षक सूझते ही नहीं। लिखने से ज्यादा कठिन लगने लगता है उपयुक्त शीर्षक खोजना। प्रकाशक के आने का समय डराने लगता है। सिर पर मंडराती अधीरता हथेलियों में हताशा-सी पसीजने लगती है। शीर्षक सूझ भी जाए तो यह मलाल महीनों तक पीछा नहीं छोड़ता कि कहानी या उपन्यास का शीर्षक जैसा होना चाहिए था वैसा नहीं है। बल्कि कुछ अच्छी रचनाओं के सटीक शीर्षक उसके लेखक से ईर्ष्या करने पर मजबूर कर देते हैं। मेरे पहले उपन्यास 'एक जमीन अपनी' का शीर्षक ऊषा का दिया हुआ है। 'आवां' ने इस मामले में कतई परेशान नहीं किया।

दरअसल, मैं उत्तर प्रदेश के बैसवाड़े की हूँ।

हमारे यहाँ दो कहावतें खासी प्रचलित रही हैं। उन्हें

मैं अपनी अम्मा के मुंह से यदा-कदा सुनती रही हूँ—'माँ की कोख, कुम्हार का आवां'। यानी कि, जिस अतिरिक्त सार संभाल की आवश्यकता स्त्री की नाजुक कोख और कुम्हार के 'आवां' के लिए होती है, उसकी उपेक्षा अनपेक्षित परिणाम का कारण बन सकती है। यह भी कि दोनों के भविष्य के विषय में पहले से कुछ नहीं कहा जा सकता। दूसरी कहावत है—'फलाने का तो आवां का आवां खराब हो गया।' यानी जिस खानदान की संतानें उसकी प्रतिष्ठा को मिट्टी में मिला राह से बेराह हो जाती हैं-वही है प्रज्ज्वलित आवां के नष्ट होने का मर्म!'

मेरे एक परम मित्र ने कहा, 'आवां' नहीं, सही उच्चारण 'आंवा' है। संशय निवारण के लिए कवि केदारनाथ सिंह को फोन किया। पीठ थपकाते से वे उत्साह से भर बोले। दस मिनट का समय दीजिए। चित्राजी, संस्कृत शब्दकोश खोलकर इसका सही उच्चारण बताता हूँ। छह सात मिनट बाद ही उनका फोन आ गया। सही उच्चारण 'आवां' ही है, चित्राजी। सटीक शीर्षक है, अपसंस्कृति के इस दौर में 'आवा' का आवां नष्ट हो रहा है।

'आवां' आरंभ करने से पूर्व उस समय देश के जीवित शीर्षस्थ श्रमिक नेता डॉ. दत्ता सामंत से जो मेरे लिए गुरुवत थे, उपन्यास की विषयवस्तु और उसकी समग्र दृष्टि को लेकर विस्तृत चर्चा हुई थी। जाने क्यों चर्चा के दौरान मैंने पाया कि उपन्यास की योजना सुन वे कुछ अन्यमनस्क हो आए।

स्वर की अप्रकट खिन्नता अपना चेहरा नहीं छिपा पाई। प्रश्न किया उन्होंने। ''श्रमिक आंदोलनों के प्रति क्या मेरी दृष्टि सकारात्मक नहीं रही? श्रमिक आंदोलन को संशय के घेरे में लेना पूंजी के पक्ष में खड़े होना नहीं है?'' स्मरण है, निःसंकोच मेरा उत्तर था। ''जहाँ तक श्रमिक आंदोलन का प्रश्न है मेरी दृष्टि घोर सकारात्मक है। मेरी निष्ठा उससे सूत भर भी क्षरित नहीं हुई है। मगर प्रश्न संघर्ष पर होनेवाले आक्रमणों का है। उसकी निर्मम हत्या को कैसे बरदाश्त किया जा सकता है? उसकी हत्या भविष्य में नहीं होगी, इसकी कोई गारंटी है? प्रश्न मामूली नहीं है कि आखिर उसकी हत्या होती क्यों है। और होती है तो होने क्यों दी जाए?''

उन्होंने इच्छा जाहिर की थी कि उपन्यास के पूरा होने पर वे 'आवां' को पढ़ना चाहेंगे। हिन्दी पढ़नी उन्हें आती थी। हिन्दी के समर्थकों में से थे वे।

विचित्र विडंबना है। उनके जीवित रहते 'आवां' पूरा नहीं हो...???? 1997 को पवई (मुंबई) में उनकी कालोनी हीरानंदानी के सामने ही...???? गई। श्रमिक मसीहा चला गया।

एक और विचित्र संयोग मैं 'आवां' के संदर्भ में आपसे बांटना चाहती थी के कथा नायक अन्ना साहब की हत्या उपन्यास में उनकी हत्या से कुछ ही दिन पूर्व हो चुकी थी।

संघर्ष के हत्यारों की फिर से जीत हुई।

लेकिन शायद उन हत्यारों को यह मालूम नहीं, संघर्ष को वह इस तरह से नहीं हरा सकते। उसकी रीढ़ जितनी बार टूटती है, तोड़ी जाती है—किसी और की पीठ में लौह स्तंभ-सी तन हजारों आमजनों की पीठ में उतर जाती है। चाहे वह किसी मर्द की पीठ हो या स्त्री की या युवक-युवती की।

मेरा मानना है। कोई भी कृति पूरी कर लेने के बाद भी पूरी नहीं होती। सैंकड़ों हजारों बार वह फिर-फिर लिखी जाती है और लिखता है उसके पाठ को पढ़ने गुनते अपनी आत्मचेतना में उसका पाठक। पाठक की आत्मचेतना में जब तक वह कृति नहीं लिखी जाती, कृति को उसका फैसला नहीं मिलता।

किसी से जुड़कर

सुषमा मुनीन्द्र

वह किसी के साथ जुड़ना नहीं चाहता, जबकि मौसी की जिद है, उसे किसी से जुड़ना सीखना होगा। मौसी की जिद पर वह जुड़ना सीखने लगा, लेकिन उसने पाया, कोई उससे जुड़ना नहीं चाहता। तब वह हैरान हुआ। मौसी सदमे में आ गई। बौखलाकर कहने लगी, ''निर्गुण वह तुम्हारा सच जरूर है, पर उस सच का कारण तुम नहीं हो फिर उस सच को लड़की वालों को बता देने की क्या जरूरत है?''

वह निर्विकार मुद्रा अपना लेता है ''मौसी, विवाह जीवन भर का मामला होता है जो कि नेक इरादे और ईमानदारी से होना चाहिये। बाद में कोई यह न कहे गलत या ढोंगी लड़के के साथ संबंध हो गया।''

''पर तुम्हारा सच किसी को पता क्यों चलेगा?''

''मौसी बातें अपनी ही ताकत से एक दिन सामने आ जाती हैं। और कुछ बातें ऐसी होती हैं, जिन्हें छिपाना धोखा देना होता है।''

''जब तुम दोषी नहीं तो...''

''यही तो अड़चन है मौसी, दोषी और पीड़ित दोनों की जिंदगी समान रूप से प्रभावित होती है।''

मैं बचपन में यौन शोषण का शिकार हुआ हूँ यह सच बताकर, वह अब तक चार लड़कियों को चौंका चुका है। चारों लड़कियाँ समान भाव से चौंकी थीं। उनसे एकांत में बातें करते हुये यह उनके बारे में कुछ नहीं पूँछता है, बल्कि कहता है,। लाजिमी तौर पर लड़की और उसके अभिभावक चुप्पी साध लेते थे। इस चुप्पी पर मौसी अधीर हो जातीं और वह निर्विकार भाव से परिमल बुक सेंटर चला जाता। उसके इस भाव में तब भी बदलाव न आया, जब वह बुक सेंटर बंद कर रात में घर आया और मौसी ने घर के पते पर आया लहर का लेटर, जो चार लड़कियों में तीसरी थी, उसको दिखाया

''निर्गुण हमारे लिये अच्छी खबर है। लहर शादी के लिये तैयार है।''

''मनोविज्ञान की इस छात्रा ने क्या अच्छी तरह विचार कर लिया है?''

''तभी तो''।

वह थोड़ा हूँसकर ही रह गया।

खाना खाकर वह अपने कमरे में आया और पत्र पढ़ने लगा अभी एक दिन मैंने आपको एक चौनल के कार्यक्रम में देखा। आप हॉट सीट पर थे। विषय था चाइल्ड एब्यूसमेंट। आपने कुछ बातें संकेत और बिंब में बताईं, कुछ अँग्रेजी में। यह आपको सरल और सुविधाजनक लगा होगा, क्योंकि इस विषय में किस भाषा परिभाषा में संवाद किया जाये, यह बड़ी समस्या है। कार्यक्रम को देखकर मुझे लगा आपके जिस सच को सुनकर मैं आपको विचित्र मान बैठी थी, वस्तुतः वह आपकी नैतिकता और ईमानदारी है। तभी तो आपने चीजें स्पष्ट कर दीं। यदि आपने मेरे बारे में बुरी राय न बना ली हो, तो मैं प्रस्तुत हूँ लहर। उस खामोश घर में वह पत्र ताजा खबर की तरह दाखिल हुआ तथापि निर्गुण ने अनुत्तेजित भाव से पत्र को तकिये के नीचे रख दिया और आँखें मूँद लीं।

वह कार्यक्रम में भाग लेने की मानसिकता नहीं बना पा रहा था। यौन को जिस तरह गोपनीय, वर्जित बनाकर रखा गया है, उसे देखते हुये वह साहस न कर पा रहा था। फिर साहस किया शायद किसी पीड़ित को उससे हौसला मिले। ऐंकर पूँछ रही थी

''कुछ याद है जब तुम्हारे साथ यह सब हुआ, तुम कितने साल के थे?''

''नौ या दस।''

''और यह सब तुम्हारे साथ मौसा ने किया।''

''हाँ। मौसी-मौसा ने मुझे गोद लिया था।''

''दत्तक पुत्र के साथ? बाप रे कैसा महसूस किया था तब,''

''वह अस्त-व्यस्त कर देने वाला अनुभव था। इस तरह का उत्पीड़न बौद्धिक, मानसिक, शारीरिक, सामाजिक, मनोवैज्ञानिक प्रत्येक स्तर पर असर डालता है। यह असहनीय

स्थिति है।''

''तुमने अपनी समस्या किसी को बताई थी?''

''बहुत दिनों तक नहीं। मैं मौसा से बहुत डरता था। एक दिन मौसी ने देख लिया।''

''कभी भूल सकोगे?''

''कुछ जख्म ऐसे होते हैं, जो कभी नहीं भरते।''

''विवाह को लेकर क्या सोचते हो?''

''मौसी की इच्छा है अब मेरा विवाह हो जाना चाहिये, पर सच जानने के बाद लड़कीवाले चुप्पी साध लेते हैं।''

''यहाँ पर बैठी कितनी लड़कियाँ हैं, जो निर्गुण और निर्गुण जैसे लड़कों से शादी करना चाहेंगी?''

एक भी हाथ नहीं उठा।

निर्गुण हँसा, ''यही होता है। किसी के प्रति दया या सहानुभूति रखी जा सकती है। सहयोग नहीं मिलता।''

वे दृश्य वे कुछ दृश्य फिर कभी धुँधले नहीं हुये। दृश्य उतने भर नहीं होते, जितने दिखते हैं। उनके भीतर का विस्तार चौंकानेवाला होता है। वे कुछ घटनायें। कुछ घटनायें ऐसी होती हैं, जो पूरी जिंदगी का फैसला कर देती है। और जिंदगी हमेशा के लिये बदल जाती है। वह चेहरा चेहरा जो मौसा का था, अब हर किसी का चेहरा बन जाता है और निर्गुण हतप्रभ हो जाता है। वह मजबूत पकड़, वह जबरदस्त पकड़ थी, जिससे वह आज भी नहीं छूट पाया है। उसकी बदलती-बिगड़ती जिंदगी-जिंदगी से जब-जब उसका सामना हुआ, हर बार अलग अर्थ, रहस्य, भिन्नता और अनिश्चितता के साथ मिली।

इस आलीशान घर, जो कि बर्बर घर में तब्दील हो गया, में रहना कुटुम्ब के सभी बच्चों का सपना था। निःसंतान गंगा मौसी की बहनें और ननदें समय पर अपने बच्चों को मौसी के घर रहने के लिये भेजा करती थीं कि मौसी का उनके बच्चे से लगाव विकसित हो और वे उसे गोद ले लें। जीत निर्गुण की हुई। वह गौरव के साथ उस आलीशान घर में स्थापित हुआ। उसे मौसा का परिमल बुक सेंटर बहुत सुहाता था, क्योंकि वहाँ कॉपी, किताबें, सुंदर पेन, पेंसिल, रबड़ पता नहीं क्या-क्या होता था। उसे मोटे तौर पर याद है, आरंभिक अरुचि के बाद मौसा उससे अनुराग रखने लगे थे। उस अनुराग पर वह संदेह क्या करता, जब मौसी ही न कर पाई। और एक दिन वह अनुराग कठिन खेल में बदल गया। नानाजी बीमार थे। मौसी उन्हें देखने चली गई। परीक्षा के कारण वह न जा सका। एक रात मौसा बिल्कुल बदले हुये रूप में थे। उनकी आँखों में मुग्धता थी, पकड़ मजबूत थी, उसका रोना उन पर असर न डाल रहा था, उसके दर्द की अनसुनी ध्वनियाँ वायुमंडल में अब भी कहीं होगी। मौसा बड़ी मुलामियत से बोला था

''निर्गुण तुम मुझे राक्षस समझ रहे होंगे, पर मैं राक्षस नहीं हूँ। यह सब सभी बच्चों के साथ होता है, पर वे किसी से बताते नहीं हैं। बता देने से माँ-बाप तुरंत मर जाते हैं।''

वह उसके बचपन पर हमला था। उस दिन से वह एक बड़े शून्य में बदलने लगा। बचपन की मासूमियत, मस्ती, मोहकता खत्म हो गई। हृदय खाली हो गया कभी न भरने के लिये। वापिस आई मौसी ने मौसा को उलाहना दिया, ''निर्गुण कुंभला गया है, तुमने इसका ध्यान नहीं रखा।''

मौसा हँसे, ''रोज होटल से इसकी पसंद का खाना लाता था। पूँछ लो।''

मौसी आश्वस्त हो गई। वह कभी आश्वस्त न हो सका। हरदम डरा हुआ होता। बिस्तर गीला कर देता। दस्त लग गये। गंदा बिस्तर देख मौसी खीझ गई ''निर्गुण क्या हो गया है तुम्हें? कभी बिस्तर गीला कर देते हो तो कभी और आज बिस्तर में दस्त इतने बड़े हो गये हो?''

मौसा बीच में कूद पड़े, ''इतना बड़ा भी नहीं हो गया है। नींद में दस्त छूट गया होगा। यह परेशान है। इससे सहानुभूति रखो।''

''हाँ, पर अचानक क्या हो गया है? बेटा, तुम्हें मेरे पास अच्छा नहीं लगता क्या?''

''गंगा बच्चे से सहानुभूति रखो। परेशान है।''

निर्गुण सचमुच परेशान था। मौसी उसकी यातना को पहचानती क्यों नहीं? जबकि मौसी ऐसे किसी संदर्भ या आयाम पर सोच तक न सकती थी। रिश्तों में इस तरह की भूलए भ्रमए अज्ञानताए असावधानीए अति विश्वास पनप जाता है और कथित संस्कारशील घरों में शोषण निर्बाध रूप से जारी रहता है। प्रत्येक पुनरावृत्ति पर निर्गुण का

हृदय भर आता भगवान, नरसिंह की तरह किसी खंभे से निकलकर मौसा को दो फाड़ कर दो। कई बार सोचा चुपचाप अपनी माँ के पास चला जाये। नहीं जानता था किस बस में बैठकर जाये। कारण क्या बताये? अब उसे लगता है वह तय नहीं कर पाता था, क्या करना चाहिये। यह बात बतायेगा तो माँ-बाप मर जायेंगे, यह भ्रम इतना प्रभावी था कि जब छुट्टियों में माँ के पास गया तब भी कुछ न बता पाया। बस इतना कहा, ''माँ मैं यहीं रहूँ?''

माँ ने पुचकारा, ''वहाँ अच्छा नहीं लगता? बेटा तुम भाग्यवान हो, जो इस गरीब घर से उस अच्छे घर में चले गये। अपने बाबू को देखते तो हो, कभी इधर काम ढूँढ़ते हैं, कभी उधर। मेरी किस्मत में गंगा की तरह सुख नहीं है। बेटा तुम बड़े हो गये हो, तुम्हें समझदारी सीखनी होगी। अपने कुछ कपड़े अपने छोटे भाई को दे जाना। मौसी तुम्हें नये खरीद देगी।''

चूँकि वह तीन भाई बहनों में सबसे बड़ा था, अतः उसे छोटी उम्र में बोध कराया जाने लगा था, वह बड़ा है। अब उसे लगता है उसने बचपन ठीक से जिया ही नहीं। उसकी नादानियाँ कभी माफ हुई ही नहीं, क्योंकि वह घर का बड़ा बच्चा था। मौसा उसे लेने आ गये। छोटे भाई व बहन के लिये कपड़े और मिठाई लाये थे। इसी कारण मौसा का जादू सभी पर चल जाता था। उसे वधिक के साथ भेजते हुये अम्मा-बाबू बहुत प्रसन्न थे।

वह फिर बर्बर घर में था। डरा हुआ। मौसा उसे घेरते, वह दूर भागता। बात करते, वह जवाब न देता। मौसी को लगता अनादर कर रहा है

''निर्गुण, मौसाजी कुछ पूँछ रहे हैं।''

मौसा हँसते, ''गंगा बात को तूल न दिया करो। बच्चे ऐसे ही होते हैं। इसे स्वाभाविक भाव में रहने दो।''

आज सोचता है सब कुछ अस्वाभाविक बनाकर मौसा किस स्वाभाविक भाव की बात करते थे? मौसा ने ऐसा क्यों किया? कौन-सी कुंठा, अतृप्ति, विकार, प्रतिरोध रहा जो?

उसका चित्त अशांत रहने लगा। अंक कम आने लगे। वह मौसी के साथ बैठकर मूवी देख रहा था। मौसी फिल्मों की शौकीन थीं। कैसेट मँगाकर देखा करती थीं। रेप सीन था। निर्गुण भय और घबराहट से काँपने लगा।

''मौसी यह सब तो बच्चों के साथ...''

मौसी ने वीसीआर बंद कर दिया, ''निर्गुण तुम पागल हो।''

''मैं जानता हूँ न।''

''लगता है गंदे लड़कों की सोहबत में पड़ गये हो। यह सब बच्चों के साथ नहीं लड़कियों के अच्छा जाओ यहाँ से। बच्चे ऐसी मूवी नहीं देखते।'' मौसी क्रुद्ध हो गई।

निर्गुण की परेशानी बढ़ गई। मौसी क्या ठीक कहती हैं? किससे पूँछे? उसे अपने मित्र विराम की याद आई। विराम उससे दो साल बड़ा था और बहुत अधिक जानकारी रखता था। अब उसे लगता है वह समस्या ठीक से बता नहीं पाया था, पर अधिक जानकारी रखने के कारण विराम समझ गया था।

''निर्गुण तू बेवकूफ है क्या ? मौसा को दो लात रसीद कर। मौसी को बता। बेवकूफ बताने से माँ-बाप नहीं मरते। चीख-चिल्ला, शोर मचा। मेरा बड़ा भाई शहर का दादा है। कह तो चार जूते मौसा को मरवा दूँ...''

मौसा को कल्पना नहीं थी निर्गुण योजना बना रहा है। निर्गुण ने मौसा की भुजा पर दाँत गड़ा दिये और तब तक काटता-चिल्लाता रहा, जब तक जागकर मौसी न आई। मौसी के आदर्श पुरुष का यह अब तक का सबसे घिनौना रूप था। वे डर और अविश्वास से मौसा को देखती रह गई थीं। यह बच्चा पता नहीं कब से यातना सह रहा है और इस पिशाच को झिझक न हुई। मौसी खूब रोने लगी थी। फिर निर्गुण को लेकर अपने कमरे में आ गई थीं। वह नहीं जानता मौसी और मौसा के बीच फिर क्या बहसें हुई। जानता है दोनों फिर अजनबियों की तरह रहने लगे थे। आज सोचता है तो हैरान होता है। अल्पशिक्षित मौसी में दृढ़ता आ गई थी या मौसा में मौसी का सामना करने का साहस नहीं था। मौसी की वह कई स्तरों पर हार थी। मौसी का विश्वास भंग हुआ था। बच्चा गोद लेने-देने जैसी सामाजिक आस्था को धक्का लगा था। वे तो मौसा के साथ रहना ही नहीं चाहती थीं, किन्तु नितांत निजी फैसले भी व्यक्ति खुद नहीं कर पाता। कुटुंब की राय को मानना पड़ता

है। अब उसे लगता है ननिहाल में यह बात मौसी ने ही बताई होगी। मौसा का जादू सभी पर चल जाता था, अतः कोई भी सहसा विश्वास न कर सका। किया, तो सुझाव दिये जाने लगे। नाना बोले, 'गंगा तुम्हारी बेवकूफी और लापरवाही कम नहीं रहीए जो तुमने जानने की कोशिश नहीं की कि निर्गुण डरा हुआ क्यों रहने लगा है। अब चुप रहने में बेहतरी है। इस कलंक का असर पूरे परिवार पर पड़ेगा। हम लोगों को क्या जवाब देंगे? निर्गुण की जिंदगी भी कठिन हो जायेगी।''

मामा ने विरोध किया, ''जीजा को समाजबदर करना चाहिये।''

निर्गुण की माँ व्याकुल थी ''गंगा मैं सोचती थी निर्गुण सुख से है। मैं इसे ले जाऊँगी।''

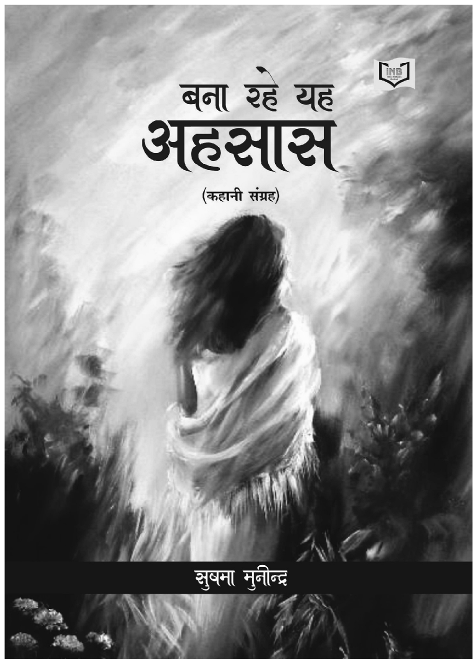

मौसी अकुला गई, ''लीला मेरे पास अब निर्गुण के अलावा कोई आधार नहीं है। तुम्हें डर है तो मैं उस घर में नहीं रहूँगी।''

नाना ने चेताया ''तो कहाँ रहोगी? अलग रहने का लोगों को कारण क्या बताओगी? शांति से काम लो और सतर्कता बरतो।''

उस समय तो वह अर्थ ग्रहण न कर पाया था। आज सोचता है अपने कहे जानेवाले लोग भी अपनी पोजीशन, हितए स्वार्थ ही देखते हैं। तभी तो नाना को कुटुंब की चिंता हो आई थी। मामा मौखिक विरोध करके रह गये। माँ जिद कर उसे वापस न माँग सकी। मौसा फिर तेजी से चुकते चले गये। मौसी की नजर में गिरने से ताकत जाती रही या ग्लानि घनीभूति थी। नींद की गोलियाँ खाईं या हृदयघात हुआ। वे एक रात कमरे में मृत पाये गये। मौसी यही बोली, ''लोग ऐसा काम करते क्यों हैं कि फिर जी नहीं पाते।''

निर्गुण ने बी.कॉम अंतिम साल की तैयारी और परिमल बुक सेंटर एक साथ संभाला। कभी इस प्रतिष्ठान में मौसा की कुसी पर बैठना उसका सपना था। अब उसने वह रिवाल्विंग चेयर बदल दी, जिस पर मौसा बैठा करते थे। उसे चेयर में मौसा के होने का बोध होता था। जल्दी ही वह बुक सेंटर में स्थापित हो गया। उसे अपने काम में आनंद आने लगा था। और

7

इसी तरह दिन बिता देना चाहता था जबकि लहर का पत्र आने से घर परिवर्तन के दौर से गुजर रहा था। मौसी उत्साहित थीं

''निर्गुण, मैं लहर के बारे में बात करना चाहती हूँ।''

''वह भावुक होकर सोच रही है। बाद में पछतायेगी।''

''तो यही होगा नए हम फिर वहीं आ जायेंगे जहाँ से चले थे। इस डर से हम चलना नहीं छोड़ देंगे। बेटे अब जो भी होगा, उतना बुरा नहीं होगा, जितना हो चुका है। सच कहती हूँ इस घर को तीसरे की जरूरत है। कुछ उम्मीद जायेगी। किसी के किये की सजा हम क्यों भोगें? हमें जिंदगी को सही तरीके से जीने का हक है।''

''पर मौसी...''

''निर्गुण, मेरे भी कुछ अरमान हैं।''

''मौसी मैं शून्य में बदल चुका हूँ। मुझसे किसी को कोई लाभ न होगा।''

''शून्य कही पर जुड़ता है तो बढ़त दिलाता है।''

''तुम्हें विश्वास है मौसी?''

''यह तो मानी हुई बात है।''

''तो इस मानी हुई बात को आजमाया जाये।''

निर्गुण के भीतर इच्छा हो आई है, जानने की किसी से जुड़ने पर अंततः लगता कैसा है?

यथा नाम तथा गुण

जगदीश चंद चौहान

विलियम शेक्सपियर के नाटक रोमियो और जूलियट की एक बड़ी प्रसिद्ध लाइन है "नाम में क्या रखा है?" उसके कहने का तात्पर्य है कि नाम तो दूसरों द्वारा दिया गया एक संबोधन मात्र है, एक पहचान है, उससे गुणों का कोई लेना देना नहीं है। गुलाब का नाम अगर गुलाब न होकर कुछ और होता तो भी उसकी खुशबू में कोई अंतर नहीं पड़ता।

वैसे तो इस बात का अभी तक कोई व्यापक सर्वे नहीं हुआ है कि नाम का आदमी पर कोई प्रभाव पड़ता है या नहीं, मगर शेर सिंह को देख कर तो ऐसा लगता है कि नाम ही सब कुछ है जैसा नाम वैसा काम। चूंकि उसका नाम शेर सिंह है इसलिए नाम के अनुरूप उसमें शेर जैसी बहादुरी के गुण होना लाजिमी हैं। इसके लिए वह हमेशा प्रयासरत भी रहता है ताकि कहीं यथा नाम तथा गुण की उक्ति झूठी न पड़ जाए। जब नवीन बाबू की नौकरी बैंक में लगी तो उसकी पहली पोस्टिंग हिमाचल के पालमपुर की ब्रांच में हुई। बैंक पहुँचने पर उसकी सर्वप्रथम भेंट भी शाखा के सुरक्षा गार्ड शेर सिंह से हुई थी अधेड़ उम्र से थोड़ा ज्यादा ही, वज़न में भी थोड़ा मोटा ताजा, चेहरे पर बेतरतीब सी बड़ी-बड़ी मूँछें। वह एक्स सर्विसमैन था इसलिए जो भी फौजी ग्राहक बैंक में आता उसे वह 'जयहिंद' कहता और अन्य ग्राहकों को 'जय माता दी' बोलता।

नवीन बाबू ने देखा कि वह बैंक सुरक्षा का काम तो देखता ही, साथ में ग्राहकों को गाइड करना, किसी का फार्म भरना या कोई अन्य प्रकार की मदद हो उसके लिए वह हमेशा तत्पर रहता।

लचंब्रेक के समय सभी स्टाफ मेंबर्स एक साथ बैठ कर खाना खाते, शेर सिंह भी बैंक का शटर बंद कर देता और हमारे साथ ही बैठता। एक दो दिन बाद हमारे एक साथी वर्मा जी बोले, "शेर सिंह, कई दिन हो गए आपने कुछ सुनाया नहीं, नवीन बाबू नए आए हैं, इन्हें भी अपनी बहादुरी का कोई किस्सा सुना दो।" शेर सिंह बोला, "साहब अभी सुनाते हैं। एक बार मैं फौज से छुट्टी आया हुआ था तो एक रात मैं बाथरूम के लिए उठा तो क्या देखता हूँ कि हमारे पड़ोसी के घर में चोर घुसे हुए हैं। मैं दबे पांव उनके गेट के पास छुप कर खड़ा हो गया, जैसे ही चोर गेट से बाहर निकले, मैंने उनपर हमला बोल दिया। दो चोरों को तो मैंने दोनों बाजुओं में दबोच लिया और तीसरे को टँगड़ी मार कर नीचे गिराया और उसकी छाती पर पैर रख दिया। मैंने कहा बच्चू, मेरा नाम शेर सिंह ऐसे ही थोड़े है। बहुत देर तक तो मैंने उन तीनों को वैसे ही दबोचे रखा...। बोलते-बोलते वह थोड़ा रुक गया। तब वर्मा जी ने सुझाया, "फिर आपने दोनों के सिर आपस में भिड़ा दिए होंगे।" 'हाँ साहब, फिर जो मैंने दोनों के सिर जोर-जोर से भिड़ाए तो दोनों बेहोश। तीसरे चोर को दो-तीन बार पटक के मारा तो वह भी बेहोश। मैंने तीनों को रस्सी से बांध दिया। तब मैंने चाचा लखन पाल को उठाया और चोरी का सामान उनके हवाले किया। चाचा ने सब मुहल्ले वालों को जगाया और बताया कि देखो ये चोर मेरा सारा कीमती सामान चुरा कर ले जा रहे थे, ये तो शेर सिंह का भला हो उसने अकेले ही चोरों को दबोच लिया। सारे मुहल्ले वालों ने मेरी जय-जयकार करी। वह दिन और आज का दिन, चोरों की हमारे मुहल्ले की तरफ आँख उठाकर देखने की भी हिम्मत नहीं होती। सबको पता है कि ये शेर सिंह का मुहल्ला है यहाँ जाना ख़तरे से खाली नहीं है।

नवीन बाबू को लगा कि बैंक बिलकुल सुरक्षित हाथों में है जिसकी रखवाली शेर सिंह जैसे जांबाज कर रहे हैं। शेर सिंह बातूनी तो था ही, सब समय बैंक में जैसे उसकी ही आवाज़ सुनाई देती रहती। एक बार जब किसी ने टोका कि शेर सिंह थोड़ा धीरे बोला करो तो वह बोला, साहब जिसका नाम ही शेर सिंह हो उसकी आवाज़ तो कड़क होगी ही।

पूरा दिन वह कंधे पर बंदूक टांगे लोगों की मदद करता रहता, सबका 'जय माता दी' कहकर अभिवादन करता रहता। सभी ग्राहक और स्टाफ मेंबर्स उसके व्यवहार से एकदम खुश रहते।

कुछ दिन बाद एक दिन फिर वर्मा जी ने कहा, "शेर सिंह नवीन बाबू को तो बताओ कैसे शेर सिंह की एक दिन शेर से ही भिड़ंत हो गई थी।"

"हाँ साहब वह तो बड़ा ही मजेदार वाकया था। एक बार मैं भेड़ बकरियाँ चराने गाँव से काफी दूर पहाड़ी की तरफ चला गया। वहाँ पर एक बाघ ने मेरी बकरी पर हमला बोल दिया और गले से पकड़ कर उसे घसीटते हुए ले जाने लगा। जैसे मेरी नज़र उस पर पड़ी तो मैंने कहा, जाता कहाँ है मेरा नाम भी शेर सिंह है। मैंने दौड़ कर बाघ को टांग से पकड़ लिया और मेरे दूसरे हाथ में सांगा दो सिंग वाला डंडा था उससे उसकी पिटाई शुरू कर दी। न वह आगे बढ़ पा रहा था न ही बकरी को छोड़ रहा था। फिर मैंने आगे बढ़कर उसके मुंह पर भी डंडे मारे तब उसने बकरी को छोड़ दिया और पलट कर मुझ पर हमला कर दिया। मैंने उसके बाजूओं के पास सांगा ऐसा अड़ाया कि वह एकदम ऊपर ही टंग गया। फिर मैं धकेलते हुए उसे खेत के उस छोर को तरफ ले गया जहाँ से नीचे गहरी खाई थी। मैंने पूरा जोर लगाकर जो उसे धक्का दिया तो वह गुलाटी खाते-खाते 50-60 मीटर नीचे खाई में जा गिरा।

वर्मा जी ने कहा, "फिर तो वह बचा कहाँ होगा?"

शेर सिंह बोला, "मैंने जानने की कोशिश ही नहीं करी कि वह बचा कि नहीं। मैं तो अपनी अधमरी बकरी को उठाकर घर ले आया।"

"बकरी तो बच गई होगी न?

"साहब बकरी भी कहाँ बची, अधमरी तो हो ही गई थी, उसको गाँव वालों ने काटकर खा लिया।"

हम सब हँस दिए। वर्मा जी बोले, यार बकरी खानी ही थी तो बाघ को ही खाने देते, कम से कम उस बेचारे का पेट तो भर जाता।

मेरे दिमाग में शेर सिंह की बहादुरी के किस्से घूमने लगे। शाम को मैं और वर्मा जी एक साथ घर के लिए निकले, तो मैंने कहा वर्मा जी हमारा बैंक शेर सिंह जैसे बहादुर आदमी के कारण सुरक्षित है, कोई चोर लुटेरा बैंक में आने की जुर्रत नहीं कर सकता।

वर्मा जी मेरी बात सुनकर बड़ी देर तक हँसते रहे। मैं उसके हँसने का कारण समझ नहीं पाया। जैसे वर्मा जी की हँसी रुकी तो वह मुझसे बोले, नवीन बाबू आप तो बड़े भोले हैं, कोई भी आपको...बना सकता है। बीच का शब्द उसने बोला नहीं, मगर मैं समझ गया कि रिक्त स्थान पर 'उल्लू' या 'बेबकूफ' ही बोलना चाह रहा था। वर्मा जी बोले, "आप भी शेर सिंह की बातों में आ गए न। अरे ये नाम का ही शेर सिंह है, एकदम पक्का गप्पोडा। पूरा दिन वह मनघड़ंत गप्पें हाँकता रहता है। कोई भी ऐसी बात जो उसने किसी से सुन रखी हो या कहीं अखबार बगैरा में पढ़ी हो, उन्हीं बातों को या घटनाओं को वह अपने से जोड़कर सुना देता है, इसीलिए आपने देखा होगा कि कई बार कहानी सुनाते-सुनाते वह बीच में अटक जाता है, तब हम लोगों को कहानी आगे बढ़ानी पड़ती है।" "शेर सिंह मां शेरां वाली का भक्त है। वह सुबह शाम एक-एक घँटा पूजा करता है। पता है आपको वह मां का भक्त क्यों है? क्योंकि मां भी तो शेर की सवारी करती है। शेर से कम तो उसे कोई देवी या देवता भी मंजूर नहीं।" नवीन बाबू बचपन से माता-पिता के संग स्वामी जी का सत्संग सुनने जाया करता था। धर्म में उसकी गहरी आस्था थी इसलिए उसे दुख हो रहा था कि कोई आदमी ऐसा कैसे कर सकता है, कोई सरासर इतना झूठ कैसे बोल सकता है? क्या शेर सिंह नहीं जानता कि झूठ बोलना महापाप है? भगवान से डरना चाहिए, पता नहीं वह इस पाप का क्या दंड दें। "वर्मा जी आप लोग उसे क्यों नहीं समझाते। हर क्रिया की प्रतिक्रिया होती है। जो भी आप करते हैं, बोलते हैं, सोचते हैं वह सब कर्म फल में जुड़ता चला जाता है। कर्म फल के भोग से कोई बच नहीं सकता।"

"नवीन बाबू, असली गलती तो उसके मां बाप की है जिन्होंने इसका नाम शेर सिंह रखा। अब उसे लगता है कि उसे उस नाम की सत्यता सिद्ध करनी ही पड़ेगी। यथार्थ में नहीं तो ख्वाबों-ख्यालों में ही सही" वर्मा ने सफाई दी।

वर्मा जी आगे बताने लगे कि एक दिन शेर सिंह ने हमें बताया कि वह फौज में हॉकी का बहुत बड़ा प्लेयर हुआ करता था। उसने बताया था कि जब उनकी टीम कोई बड़ा टूर्नामेंट जीती थी तो सीओ साहब ने ग्राउंड में ही उसे लैस नायकी की एक फीती लगा दी थी। कुछ दिनों बाद हॉकी के डिस्ट्रिक्ट कोच बैंक आए तो मैनेजर साहब ने बताया कि हमारा शेर सिंह भी हॉकी का अच्छा प्लेयर रह चुका है। कोच साहब ने शेर सिंह को बुलाया और कहा हमारे यहाँ

स्कूलों के टूर्नामेंट हो रहे हैं हमें आप जैसे लोगों की मदद चाहिए। आप शाम को हॉकी ग्राउंड में मिलना। बाद में कोच ने मैनेजर को बताया कि शेर सिंह को तो हॉकी स्टिक भी पकड़ने नहीं आतीए खेलना तो दूर की बात है।

नवीन बाबू बोले, "वर्मा जी, बताते हैं भीष्म पितामह अपने पूर्व जन्म में कहीं जंगल से जा रहे थे तो उन्होंने देखा कि एक अधमरा सांप रास्ते में पड़ा है। भीष्म पितामह ने उसे लकड़ी से उठा कर एक तरफ झाड़ी पर रख दिया। वह झाड़ी कांटेदार थी और उसके कांटे सांप के शरीर में गढ़ गए और वह वहीं तड़फ-तड़फ कर मर गया। इसीलिए तो भीष्म पितामह को भी उस जन्म में मरते समय शरशैय्या पर लेटना पड़ा था। कर्म फल इतना प्रबल होता है।"

वर्मा जी बोले, "शेर सिंह की कुछ मनोवैज्ञानिक समस्या लगती है। उसे लगता है कि उसका नाम शेर सिंह है तो उसके कारनामे भी शेर जैसे होने चाहिए। कहानी सुनाते समय तो ऐसा लगता है जैसे शेर की आत्मा साक्षात रूप में उसके अंदर ही प्रकट हो जाती है।"

"शेक्सपियर तो बोलते थे कि 'नाम में क्या रखा है' मगर शेर सिंह को क्यों लगता है कि नाम में ही सब कुछ रखा है?" नवीन बाबू ने पूछा।

"नवीन बाबू अभी तक शेर सिंह को पता नहीं है कि शेक्सपियर कौन हैं और क्या कह गए हैं। जिस दिन उसे पता लगेगा उस दिन वह शेक्सपियर को लेकर भी एक नई कहानी गढ़ डालेगा।" कुछ समय बाद नवीन बाबू का ट्रांसफर शिमला, कुल्लू, ऊना बगैरा कई जगहों पर होता रहाँ करीब सोलह-सत्तरह साल बाद नवीन बाबू मैनेजर बनकर सुजानपुर की ब्रांच में आए। यहाँ के सुरक्षा गार्ड की बड़ी मूँछें देखकर उसे शेर सिंह की याद आ गई। वह बताता था कि उसका गाँव भी सुजानपुर के आसपास ही है। नवीन बाबू ने गार्ड को बताया कि जब वह पालमपुर ब्रांच में था तो वहाँ एक शेर सिंह नाम का सुरक्षा गार्ड हुआ करता था, वह बड़ा मनमौजी आदमी था, सभी को खूब किस्से कहानियाँ सुनाया करता था। वह शायद यहीं आसपास का ही रहने वाला था। गार्ड ने बताया कि वह उसे जानता है, उसका गाँव यहाँ से पांच या छह किलोमीटर दूर होगा। अगर आप चाहें तो रविवार को मैं आपको वहाँ ले चलूंगा। नवीन बाबू अभी यहाँ अकेले ही रह रहे थे इसलिए रविवार के दिन वे दोनों शेर सिंह के घर पहुंच गए। घर पर उसकी घरवाली, बेटा और बहू मिले, उन्होंने बताया कि वे भेड़ बकरियां चराने गए हुए हैं थोड़ी देर में आते ही होंगे। थोड़ी देर में शेर सिंह भी आ गए। मुझे अपने घर पर देखकर शेर सिंह बड़ा प्रसन्न हुआ। जैसे ही मैंने उससे हाथ मिलाया वह मेरे गले से लिपट गया। मुझे उसके सुबकने की आवाज आने लगी। मैंने सोचा शायद वह मुझे देखकर भावुक हो गया होगा। मैंने उसे पकड़ कर अपने पास ही बिठा लिया और उससे हालचाल पूछने लगा। शेर सिंह के चेहरे पर एक भाव आए तो दूसरा जाए। वह बिना कुछ बोले बस आँसू बहा रहा था।

तभी उसका बेटा बोल पड़ा, 'साहब, ये अब बोल नहीं सकते। करीब पाँच-छह साल पहले इनके गले में गिल्टियाँ सी निकल आईं थीं, काफी तकलीफ में थे और गले में सूजन भी रहने लगी थी। कई डॉक्टरों को दिखाया मगर कोई फायदा नहीं हुआ। अंत में हम इन्हें जालंधर के एक बड़े प्राइवेट अस्पताल में ले गए। वहाँ डॉक्टरों ने बताया कि इनके गले का ऑपरेशन करना पड़ेगा। वह ऑपरेशन क्या करवाया कि इनकी तो आवाज़ ही चली गई। डॉक्टरों से पूछा तो उन्होंने कहा कि थोड़ा धीरज रखो, दवाई लेते रहो, आवाज़ भी ठीक हो जाएगी। दवाइयां तो चल रही हैं मगर पाँच साल बीत जाने पर भी आवाज़ कहाँ लौटी।

नवीन बाबू किंकर्तव्यविमूढ़ से बैठे सोचते रहे ये प्रकृति का कैसा अजब खेल है? जो शेर सिंह एक मिनट भी चुप नहीं बैठ सकता था, आज उसे चुप हुए पूरे पाँच साल बीत चुके हैं। ऐसे आदमी के लिए चुप रहना भी कितना कष्टसाध्य होता होगा? शेर सिंह तो कोई ऐसा झूठ भी नहीं बोलता था जिससे किसी को कोई नुकसान पहुंचे, बल्कि वह तो दूसरों का मनोरंजन ही किया करता था। फिर भी प्रभु ने उसे इतना कठोर दंड क्यों दिया?

नवीन बाबू आँखें बंद करके ऊपर वाले से फ़रियाद करते रहे, "हे प्रभु, ये तुम्हारी कैसी अदभुत माया है... तुम्हारी माया तुम्हीं जानो... मगर शेर सिंह को ठीक कर दो प्रभु... वह चुप बैठा बिलकुल अच्छा नहीं लगता। उसे क्षमा कर दो प्रभु उस पर रहम करो, रहम करो।"

अथ : कुदरत मइया कोरोना देव व्रत कथा

डॉ. श्याम सखा श्याम

बात प्रथम जनवरी 2022 की है हमारी कहानी का 'मैं' नामक पात्र अपने सुन्दर सजे लॉन में बैठा था बगिया के फूलों की छटा निहार रहा था।

पड़ोस के घर से आवाज सुनाई पड़ी।

लो अम्मा चाह पी लेओ

ना बिटिया आज मेरो व्रत हैगा ए अम्मा नू कहवें व्रत-उपवास माँ चाह तो पी सके "ठीक कहवे है बेटी पर इस व्रत मे ना पीवें पानी भी"

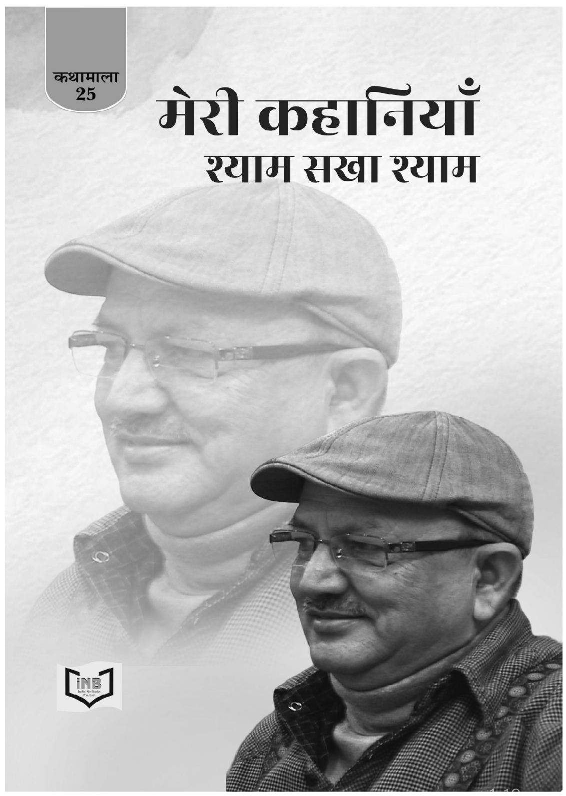

ऐ! अम्मा जे तो बड़ा कठिन व्रत है, जे किस देवी देवता को व्रत है

ऐ! अम्मा तो ना सुणों जा देवी को नाम

'बेटी कुदरत मईया धरती की पहली देवी हती। सारे देवी देवातन तै पहल्म अवतार लियो था वा नै'

'तो अम्मा जा देवी की कथा का हैगी'

बेटी बड़े बूढन कहत रहण कि हजारों हजार बरस पहलम जा अपणी धरती एक आग को गोला हती। जा महँ लपालप मीलों मील ऊँची लपट उठती रहवें थी।

एक दिन पिता परमेसर कि सबों से बड़ी बिटिया जा को नाम कुदरत हतो, बिरमाण्ड की सैर को निकली। व नै जे आग को गोलो देख लियो। पास गई तो गमी सो बेहाल। वो दौड़ी-दौड़ी गई अपने पिता कैने और कहयो हम इस गोले से खेलूँगी। पिता ने वाको बहुत समझाओ कि वा बहुत गरम है खेलने के योग्य ना है पर कुदरत मईया अड़ गई अपनी जिद पर। अब तुम जाणों कि बाल हट था पिता को मानणा पड़ो। पिता परमेसर ने अपने छुटके बेटे बादल को बुलायो और हुक्म देओ कि वीस गोले की आग बुझा देओ।

पिता की आज्ञा मां बादल गयो और धुआँ धार बरस गयो। इतना बरस्यों कि आग तो बुझी ही बुझी बर्फ जाम गई धरती पर। पिता ने देखो तो बड्के बेटे सूरज को बुला के कहयो कि जाओ थोड़ी बरफा पिघला देओ। सूरज ने दूर खड़े खड़े अपने ताप सूं बर्फ पिघला दई। बर्फ पानी बन बहने लगी तो झरने व नदियां बन गई द्य नदी से पानी बह जा कर धरती पर बने अनेक गड्डो में जा ठहरा तो धरती पर नेक-नेक झील और समंदर बन गए। कुदरत मईया खुश हो कर धरती पर खेलण्ण आण लगी। वा नै खेल खेल में स्वर्ग सों ला के पेड़ पौधे लगा दिये घास का गलीचा बिछा दिया। धरती हरी भरी हो गई। पिता परमेसर ने बेटी का मन लगाने के लिए धरती पर पानी में भी नेकानेक जीव मछली मगर मच्छ भेज दिये द्य जंगलों में नेका नेक पशु जाता गाय खरगोश भेद बकरी हिरण चीते शेर डाइनोसॉर भेज दिये। कुदरत मईया सारी धरती पर मचलती छलांग लगाती घूमती रहती। नदी में डोंगी दाल समंदर तक जा पहुँचती नजारे देखती।

एक दिन गई पिता परमेसर कन्ने बोली पिताजी जे बड़े जीव मगरमच्छ, व्हेल, शेर, चीते छोटी मछलियों छोटे जानवरों को खा जाते हैं, पेड़ बूढ़े होकर मर जाते हैं। इनको समझाओ'

पिता हँस कर बोले बेटी 'जे सारे जानवर मेरे आदेश से ऐसा करें हैं'

'पर आपने ऐसा आदेश क्यों दिया? कुदरत ने पूछा

पिता बोले अगर मछलियों को मगरमच्छ नहीं खाएँगे तो मछलियों कि संख्या इतनी हो जाएगी कि वे सारा पानी पी जाएंगी, इसी तरह अगर जानवर ज्यादा हो गए तो वे सारे पेड़ पौधों को खा जाएँगे। पेड़ सूखेंगे नहीं तो सारे जंगल में जानवरो के रहने लायक जगह ही नहीं बचेगी।

पिता ने आगे कहा बेटी तुमने गौर किया होगा कि मैंने सबसे ज्यादा वे वस्तुएँ वहाँ बनाई हैं जो केवल हवा पानी और धूप पर जीवित रहती हैं यानी घास बेल बूटे, पेड़ आदि उनसे कम वे जीव जो घास पौधे आदि खाकर जीवित रहते हैं वे बनाए फिर वे जीव जो इन छोटे जीवों को खाते हैं द्य क्योंकि अगर शेर या मगरमच्छ ज्यादा हो जावे न तो वे सबको खा लेंगे। यह मेरा नियम है लेकिन क्योंकि धरती अब तुम्हारा घर है अतः अबसे इस नियम का नाम होगा कुदरत का नियम और इसे सबको पालन करना होगा।

कुदरत खुश होकर वापिस धरती पर आ गई। कुछ दिन बीते वो फिर जा पहुँची पिता के पास एक नई समस्या ले कर बोली। पिता जी वहाँ सब कुछ मेरी पसंद का है लेकिन मुझ से बात करने वाला कोई नहीं है इसलिए मेरा दिल नहीं लगता।

अब पिता तो अपने बच्चों कि हर इच्छा पूरी करते ही हैं सो परमेसर ने एक मानव व एक मानवी बना कर धरती पर भेज दिया।

कुदरत मईया बड़ी खुश उसे सहेली मिल गई बात करने को। जे दोनों स्त्रियाँ तो बैठ जाती बतकही करने पुरुष बेचारा अकेला पड़ गया सो वो जंगलों में जाने लगा वहीं से मानवी के खाने के लिए फल तोड़ कर ले आता लेकिन फल तोड़ने लाने में तो थोड़ा समय लगता वह खाली बैठा उकताने लगा अरे वही जिसे तुम लोग क्या कहवों हाँ बोर होने लगा।

अब बिटिया तुम जाणों खाली दिमाग शैतान को घर होवे है सो पुरुष ने शिकार करणो शुरू कर दियो द्य रात जंगली जानवरों से बचने के लिए गुफा ढूँढी, फिर उन्हे डराने के लिए आग जलाना सीख लिया द्य इसी बीच उनके यहाँ नन्हें मुन्ने बच्चे पैदा हो गए। अब उनके लिए खाने की जरूरत होने लगी तो शुरू मे उसने फल इकट्ठे किए फल लेने दूर जाना पड़ता था तो उसने बाग लगाने शुरू किए। अब एक फल हर मौसम में नहीं होता तो उसने अपने बाग में अलग अलग मौसम में होने वाले के फल के पेड़ लगाये द्य इस तरह वह बागबानी व खेती करना सीख गया। उसका कुनबा बढ़ता गया बच्चों के बच्चे होने लगे। तो कुछ बच्चे कुनबे से अलग हो धरती पर अलग अलग जगह जा बसे।

अब जैसे जैसे मानवो की संख्या बढ़ी तो पहले उसने जंगल काटने शुरू किए बस्ती बसाने के लिए, फिर जंगल कटते गए गाँव नगर बनते गए, पेड़ कटने से धरती गरम होने लगी, धरती गरम होने लगी तो बर्फ पिघलने लगी, बर्फ ज्यादा पिघली तो पानी कम हुआ नदिया झील सूखने लगी। उधर पेड़ काटने से जंगल के शाका हारी जानवरों को खाने के की कमी पड़ने लगी, छुपने कि जगह गायब हुई उधर शेर आदि ने भी उन्हे खाना आरंभ कर दिया द्य इधर मनुष्यों की जन संख्या बढ़ने से उनकी जरूरतें बढ़ी यानी माँग बढ़ी इस तरह कुदरत के घर यानि धरती पर कोहराम मच गया।

वह रोटी पीटती गई पिता परमेसर के पास जाकर अपनी व्यथा सुनाई।

पिता ने उसे वरदान दिया कि तेरे तीन पुत्र उत्पन्न होंगे जो दिखने में बहुत छोटे होंगे जिन्हे मनुष्य देख नहीं पाएंगे वे तीनों इस मनुष्य कि अक्ल ठिकाने लाएँगे उसकी जन संख्या को भी अनुपात में रखेंगे।

वक्त के साथ-साथ कुदरत मईया ने तीन पुत्रों को जन्म दिया जिनके नाम हुए किटाणु जीवाणु और विषाणु द्य सबसे पहले बड़ा बेटा गया मनुष्यों को समझाने उसने उनके शरीर में पहुँच कर संकेत दिये मलेरिया, फाइलेरिया आदि के माध्यम से लेकिन मानव तो अब तक नाम नाम का मानव

था बन तो वह दैत्य गया था उसने किटाणु को अपनी मशीनों के जरिये ढूंढ कर उसे मारने के हथियार दवा, बना ली किटाणु क्योंकि पानी के माध्यम से घुसता था शरीर में उसने किटाणु को पानी में मारने का इंतजाम कर लिया।

अब गया दूसरा बेटा जीवाणु उसने एक बार तो कहर ढा दिया प्लेग हैजा क्षय रोग आदि की महामारी से मनुष्य त्रस्त तो हुआ डरा भी लेकिन सुधरा नहीं उसने इससे निपटने के तरीके भी ढूंढ लिए कुदरत बड़ी परेशान मायूस बैठी थी उसकी तीसरी संतान ने बार बार जा कर मनुष्यों को चेताया, चेचक, फ्लू यहाँ तक कि स्पेनिश फ्लू नामक कीटाणु ने तो मनुष्य को लगभग तबाह कर दिया था। लेकिन मनुष्य अपने ज्ञान के घमंड में चूर था उसने अब अपने जात भाई बहनो पर भी अत्याचार करने शुरू कर दिये जिसके कारण विश्व युद्ध तक हुए जिसमें मानवों ने मानवों को मार डाला। यही नहीं उसने अपने कुल के जीव महिलाओं पर भी जुल्म ढाने शुरू कर दिये द्य अपने गरीब भाइयों को भी नहीं छोड़ा। धरती पर बढ़ती आबादी को देख कर उसे दूसरे ग्रहों पर कब्जा करने का ख्याल आया और उसने अन्तरिक्ष में पहुँचने बसने की ठान लीइ इधर कीटाणु और जीवाणु तो जुए में हारे हुए पांडव पुत्रों कि तरह सिर झुकाए बैठे थे। अकेला विषाणु मनुष्यों से अभिमन्यु कि तरह लड़ रहा था कभी इबोला, कभी बर्ड फ्लू कभी एड्स जैसे अस्त्र-शस्त्र फेंक रहा था कभी लगता जीत रहा है लेकिन फिर मनुष्य उसे भगा देता। थक कर नन्हा विषाणु जंगल जाकर ताप करने लगा ताप करत-कराते काफी समय बीत गया तो आकाशवाणी हुई उसने कहा तुम वियतनाम देश के आसपास के जंगलों में जाओ वहाँ एक उल्टा लटका तपस्वी मिलेगा वही तुम्हारी समस्या का निदान करेगा।

कहा भी गया है कि कुआँ प्यासे के पास नहीं आता प्यासे को कुएँ के पास जाना पड़ता है। मरता क्या न करता विषाणु पहुँच गया वहाँ जहाँ उल्टे लटके महात्मा चमगादड़ ऋषि तपस्या रत थे। उसने को बताया कि जैसे मोहग्रस्त गरुड काकभूषंडी ऋषि के पास गए थे वैसे ही मैं आपकी शरण में आया हूँ। ऋषि चमगादड़ ने उससे कहा कि शास्त्र कहते हैं कि शरणागत की रक्षा सबसे बड़ा धरम है इतिहास ऐसे अनेक उदाहरणों से भरा पड़ा है जैसे कबूतर कबूतरी भूखे बहलिए की प्राण रक्षा हेती स्वयं आग में कूद पड़े थे या दधीचि ऋषि ने देवताओं को वीजेआर बनाने हेतु अपनी हड्डियों का दान कर दिया था तो मैं क्यों पीछे हटूँगा।

सुनो इसके लिए तुम्हें मेरे शरीर में प्रवेश कर मेरा खून पीना होगा ऐसा करने से तुम्हारे अंदर कई विशेष शक्तियाँ उत्पन्न हो जाएँगी यथा तुम मनुष्य के शरीर में घुस कर उसके हर अंग में पहुँचने की शक्ति पा जाओगे तथा वहाँ मनुष्य के शरीर में पहुँचकर तुम रक्त बीज की तरह जल्द कई गुणा हजार लाखा गुणा बन सकोगे साथ-साथ मनुष्य द्वारा अब तक बनाई गई कोई दवा तुम असर नहीं करेगी यही नहीं अगर मनुष्य कोई नई दवा बना भी लेगा तो तुम बहरूपिए की तरह वेश बदल सकोगे जिससे मनुष्य द्वारा बनाई गई दवा तुम्हें पहचान ही नहीं पाएगी और तुम जेबी तक चाहोगे मनुष्य को तबाह करते रह सकोगे।

अब इस विषाणु ने पूछ लिया महातंन मैं आपके शरीर से निकलकर मनुष्य के शरीर में प्रवेश कैसे करूंगा।

उल्टा लटका तपस्वी विक्रम बेताल की कथा के बेताल जैसी हँसी हँसा और बोला वत्स यह काम तुम नहीं मैं करूंगा। मैं मनुष्य से खुद को पकड़ा जाकर उसके घर पहुंचुंगा जहाँ वह मुझे मार डालेगा बस मुझे मारकर पकाने से पहले कुछ मिनट का अवसर तुम्हें मिलेगा उतने वक्त में ही तुमको मनुष्य की नासिका के माध्यम से मनुष्य के शरीर में प्रवेश कर अपना जाल बिछाना है वहीं अपनी संतति जल्द से जल्द बढ़ानी है और तुम्हारी संतान को मनुष्य के शरीर मेन उधम मचानों है इतना उधम मचानों है कि वा की अक्ल ठिकाने आ जावे।

मनुष्य को सांस लेनों कठिन बना देना बुखार खांसी क्या उसके हर अंग मेन उत्पात मचाना की वाको नानी याद आ जावे। उसको अहसास हो जावे कि उसने कुदरत मईया के पेड़ पौधे जीव जन्तुअन, पहाड़ नदी झीलन के साथ क्या ज्यासती की है। और फिर उसी मनुष्य की नाक से तुमारी संतति को बाहर निकलकर जो भी मनुष्य मिले उसकी नाक

में प्रवेश करते रहना होगा। अगर मनुष्य न भी मिले तो आसपास किसी सतह से चिपक जाना और जैसे ही कोई अन्य मनुष्य उस सतह कू छूए तो तुम झट से उसके शरीर में भी प्रवेश कर जाना। इस तरह इन घुमंतू मनुष्यों के माध्यम से तुम सारे संसार में पहुँच जाओगे हाँ देखो कोशिश करना कि मनुष्य के अलावा किसी अन्य जीव को नुकसान न पहुंचाना और कुदरत मईया, धरती और धरती के सभी जीवों पेड़ पौधो नदियों को बचाने में सफल हो जाओगे। अब जल्दी से मेरे शरीर में घुस जाओ वो आदमी आ रहा है मुझे पकड़ने। तो बिटिया इस तरह कुदरत के तीसरे बेटे ने धरती के सभी मानवो को बेहाल कर रोने पीटने को मजबूर कर दिया। लोग रोते पीटते कुदरत मईया कन्ने पहुंचे कान पकड़ कर बोले अम्मा हमें मुआफ़ कर देओ। अबसे हम किसी को बेवजह दुख नहीं देंगे पेड़ लगाएंगे जंगल नहीं काटेंगे अगर काटने पड़े तो केवल जरूरत जीतने वे भी आज्ञा लेकर काटेंगे। नदियान को नहीं बांधगे, पहाड़ नहीं काटेंगे।

हम आपके अन्य जीवों की तरह आपके बनाए नियमों का पालन करेंगे। कुदरता मईया ने अपने नन्हे बेटे को मनुष्य को माफी देने को कहा और क्योंकि उसने मनुष्यों को रोने पर मजबूर कर दिया था इसलिए उसका नामकरण कर दिया कोरोना। बिटिया तभी से मनुष्य सुधारने लगा और आज तुम जे जो हरी भरी हरियाली धरती, साफ सफ्फ़ाक हवा पानी लहलहाते वन, कल कल करते झरने व उफनती नदियां ऊंचे ऊंचे बर्फ के पहाड़ जिन्हे ग्लेशियर कहते हैं देख रही हो ना जे सब उसी कोरोना देवता को प्रसाद हैं। इसीलिए हम जे व्रत रखे हैं जिससे हमें याद रहे कि हम सबने कुदरत मईया को कहा माननों है धरती और वा पर बसने वाले हर जीव को पेड़ पौधन को सन्मान देनो है। वरना कोरोना देवता फिर से आ जावेगों। तो मेरे संग बोलो हे कुदरत मईया हे कोरोना देव हम मनुष्य पहले जैसी गलती नहीं करेंगे।

लघुकथा

एटीएम

यशोधरा भटनागर

पास में रखें मोबाइल में एक नज़र देखा—"आठ बज गए!"

एक शनिवार के दिन ही तो मिलता है...। वरना रोज तो वही आपाधापी...इन पंद्रह सालों में वह घिस सा गया है। अठारह बरस का ही तो था जब कपड़ों का एक बैग उठाए वह दुबई आ गया था। और फिर बस शुरू हो गई हाड़ तोड़ मेहनत।

जैसे-तैसे अपनी गुजर बसर करता और अपनी कमाई का एक बड़ा हिस्सा घर भेज देता।

सिर चटक रहा है, शायद बी.पी. फिर बढ़ गया है। अभी उम्र ही क्या है कल ही तो बत्तीस का पूरा हुआ है।

हाँ! पर परिवार खुश है। देश में अपना घर बना लिया है, दोनों भाइयों को उसने पढ़ा दिया और क्या चाहिए?

ध्यान आया कई दिनों से अम्मा से बात नहीं हुई।

"अम्मा! हेलो! अम्मा कैसी है?"

तुझे क्या? तूने तो पिछले महीने पैसा ही नहीं भेजा।"

"अम्मा! मैं बीमार था। बी.पी. बहुत बढ़ गया था। डॉक्टर ने आराम करने के लिए बोला था। यहाँ बीमारी में खर्चा बहुत हो जाता है। इसी हफ्ते काम चालू किया है।"

दूसरी ओर से कोई आवाज नहीं...शायद नेटवर्क...फोन कट गया था।

91-62734xxxx....जिस नंबर से आप संपर्क करना चाहते हैं वह उत्तर नहीं दे रहे हैं।

आँखों की कोर से कुछ टपका...हाथों को गीलेपन का एहसास...उसने खुद कुछ छुआ... शायद वह एटीएम बन चुका है।

मिर्ची के रंग

मैं कूता राम का, तो...

प्रेम जनमेजय

मैं अपनी पगडंडी पर चल रहा था, अचानक राजपथ के चौराहे से आवाज आई। यह आवाज राधेलाल की थी।

राधेलाल अक्सर मुझे राजपथ के चौराहे पर मिलता है। प्रजातंत्र में चौराहा प्रेमियों की चारों अंगुलियों घी में होती हैं। और सर? सर किसी न किसी के चरणों में होता है। चरण में सर होने से उसकी रज मिलती है और रज से राजसुख मिलता है। प्रजातंत्र में राजसुख चरण वंदन से ही मिलता है। ये दीगर बात है कि चुनाव से पहले चरण काले कुचित कुरूप होते हैं और चुनाव जीतने के बाद चरण कमल हो जाते हैं।

राधेलाल अक्सर मुझे चौराहे पर ही मिलता है। चौराहे पर वह इसलिए मिलता है कि आया है जो जाएगा, पर किस राह जाएगा या उसी राह लौट जाएगा?

उस दिन राधेलाल मथुरा रोड से आ रहा था। मैंने उसे राधे! राधे! कहा तो उसने मुझे जय श्रीराम कहाँ राधेलाल आ मथुरा रोड से रहा था, पर सजधज रामनामी थी। वह नख शिख राममय था। मस्तक का तिलक, गले की माला, चड्डी बनियान से लेकर सभी वस्त्र सभी राममय। जब पूरे देश को सज धज के आदेश हों और राम द्रोही पर सपने में भी सुख न पाने का संकट आने वाला हो तो तो जैसा प्रश्न अच्छे-अच्छों की तैसी की ऐसी कर देता है। ऐसे में चौराहे से बड़ा कोई रक्षक नहीं होता।

मुझे देख कर राधेलाल मुस्कराया और बोला, 'चल रहे हैं न?'

मैंने पूछा, कहाँ?'

''वहीं जहाँ एक सौ चालीस करोड़ जानता जा रही है।''

''चालीस करोड़ जनता कहाँ जा रही है?''

राधेलाल ने मुझे हिकारात भरी निगाह से देखा और पूछा, ''तुम क्या भीषोण गरीब हो कि टी वी तो क्या तुम्हारे पास स्मार्ट फोन तक नहीं है?''

''जिसके पास टी वी या स्मार्ट फोन नहीं होता, क्या वह भीषण गरीब होता है?''

''और नहीं क्या गली में खेलते बच्चों के पास तक स्मार्ट फोन तक होता है। आजकल जिसके पास जितना मँहगा फोन वह उतना अधिक अमीर होता है। खैर छोड़ो सारे टी. वी. चैनल राम रंग में रंगे चौबीसों घटे बता रहे हैं कि 140 करोड़ जनता अयोधया जा रही है।''

''140 करोड़! मुझे नहीं लगता कि वहाँ अयोध्या में 40 लाख जनता भी समा सकती है। 140 करोड़ से मेरे परिवार के दस लोगों को कम कर लें। खैर छोड़िए जनता क्यों जा रही है?

''राम नाम की लूट है लूट सके तो लूट।''

''तो आप राम नाम लूटने जा रहे। ज्यादा लूट सकें तो कुछ मेरे लिए भी ले आना।

''बहुत कठिन है लूटना। चारों ओर ब्लैक कैट का सख्त पहरा है।''

''तो आप कैसे लूटेंगे।''

''हम, हम वी आई पी हैं। वी आई पी को सब लूटने का अधिकार है। वी आई आई पी होकर तो आप पूरा देश लूट सकते है। अपने को तो बुलावा आया है। यह देखो हमारा वी आई पी पास।'' यह कहकर उन्होंने अपनी बंडी की चोर जेब से वी आई पी पास निकाला।

राधेलाल वी आई पी रामभक्त है तो मैं कौन? मैं कूता राम का। राधेलाल का नाम है तो क्या तेरा भी कोई नाम है? मेरा नाम मुतिया है। वैसे तो हम जैसे वंचितों का कोई नाम नहीं होता, पर मेरा नाम है। मेरा नाम इसलिए है कि मैं राम का कूता हूँ। राम नाम है ही ऐसा। राम नाम बहु हितकारी।

यह चुनाव जिताने तक की शक्ति रखता है। मुझे चुनाव तो जीतना नहीं है, पर मेरे कारण चुनावी चुनाव जीतता है। मैं इसी में प्रसन्न हूँ कि जिनका मैं कूता हूँ उनका मंदिर बन गया है। वैसे मुझे मंदिर कि आवश्यकता नहीं क्योंकि मेरे राम मुझसे कहते हैं

मुझको कहाँ तूं ढूंढे बंदे, मैं हूँ तेरे पास में
न तीरथ में न मूरत में, न एकांत निवास में
न मंदिर में, न मस्जिद में, न काशी कैलाश में''

राधेलाल मुस्काराया और बोला, ''आप अपने को राम का कूता कहते हैं पर मैं तो कहता हूँ कि आप धोबी के कुत्ते हैं जिसकी न तो मस्जिद है और न मंदिर। ऐसे लोगें के लिए राजपथ होता भी नहीं है। आप जहाँ हैं वहीं रहें। आप तो घूरा भी नहीं है जिसके दिन बदलते हैं।

मुझ अज्ञानी को भी ज्ञान प्राप्त हो गया है। वैसे भी ज्ञान अज्ञानी को प्राप्त होता है, ज्ञानी तो ज्ञान देता है। मुझे ज्ञान प्राप्त हो गया है कि मैं भी राम का कूता हूँ। मुझे यह ज्ञान भी प्राप्त हो गया है कि मेरा नाम चार्ली, कूपर, लूना, पिटबुल, ब्राउन, चक, शेफर्ड आदि कोई नहीं है। मेरा नाम तो मुतिया है। मैं राजपथ की सड़कों को रौंदती शेवरलेट में बैठा डॉगी नहीं हूँ मैं तो बदहाल गाँव की पगडंडियों में डोलता बदहाल कूता हूँ।

मुझे विश्वास था कि सबके राम मुझे भी अपनी शरण में लेकर दर्शन देंगे। कहते हैं कि आप अयोध्या तभी जाते हैं जब राम बुलाते हैं। जब राम की कृपा होती है।

वैसे कृपा तो आजकल वस्तु हो गई है। बाजार में मिलने लगी है। कृपा खूबसूरत मॉल में मिलती है गाँव के बनिए की दुकान में नहीं। जो रामकृपा खरीद सकते थे उन्होंने ऊंचे दाम देकर खरीद ली। अमीर झटपट कृपा खरीद लेता है। कृपा तो उसके द्वार तक आकर कहती है कि है मेरे कृपानिधान मुझे खरीद और जैसी देशसेवा और उके विकास की कृपा प्राप्त कर। और बेचारा गरीब उम्र-ए-दराज़ मांगकर लाए थे चार दिन, दो आरजू में कट गए, दो इंतिजार में।' गरीब के नसीब में तो मरते दम का इंतजार रहता है।

सबके कृपालु राम की वी आई पी कृपा प्राप्त राधेलाल जी इठालते हुए, राम लला के दर्शन मार्ग पर, चल दिए।

अगले दिन देखा सामने से सुतिया आ रहा है। वह लंगड़ा कर चल रहा था। पास आया तो देखा सारा शरीर जख्मी था। मैने पूछा, 'ये जख्म कहाँ से लेकर आया?''

सुतिया बोला, ''बोला यह राम कृपा लालसा के जख्म हैं।''

''राम कृपा के लालसा के जख्म!''

''हाँ, सोचा था कि राम तो सबके राम हैं बुलावे वाले के भी और बिन बुलावे वाले के भी। सबके कृपालु राम, मुझ जैसे बिन बुलाए पर भी कृपा करेंगे, पर यह बात उनके सुरक्षा कर्मियों को पता नहीं थी। मैंने उनसे कहा कि मुझे राम श्रीराम का भव्य मंदिर देखना है।''

सुरक्षाकर्मी ने मुझे नख शिख निहारा, रावण की तरह अट्टहास किया और बोला, ''क्या तूं भव्य है?''

'नहीं'

''तूने कितने दिन का व्रत किया है? तू क्या फिल्मी सितारा है? तूं क्या बड़ा उद्योगपति है?''

''नहीं।''

''तो प्राण प्रतिष्ठा वाले दिन तेरी औकात यहाँ से ही कृपा प्राप्त करने की नहीं है। यहाँ तो सारी दुनिया को बदलने वाले कलमकारों की औकात नहीं है औकात में रह।''

''मुझे तो ज्ञान दिया गया है कि साईं के सब जीव हैं मैं तो आज ही कृपा प्राप्त करूंगा।''

मैं जिद पर अड़ा तो जिद्दी सुरक्षाकर्मी ने अपनी लाठी से मुझे मेरी औकात याद करा दी। राम कृपा की चाहत में पिट गया। उसने कृपा की कुछ जख्म ही दिए। राम ने जो तो किया तो बाहुडो और दुरि दुरि किया तो जख्म सहित दुर आया। मुझे लग रहा था कि घूरे के दिन बदलते हैं तो राम राज्य में कुत्तों के भी बदलेंगे। बदले तो सही, पर कुछ कुत्तों के।''

तू सुतिया है सूतिया रहेगा। पिटने से डरेगा तो दुरि दुरि ही किया जाएगा, जख्म ही खाएगा। दूसरों का भी जख्म देखना सीख।

रुपयों का चक्कर

शिव मोहन यादव

चौबेजी की परेशानी और हताशा को भला किसने ही समझा होगा! पिछले दस साल से प्रतियोगी परीक्षाओं की तैयारी कर रहे हैं, लेकिन आज तक सफलता हाथ नहीं आई। हाथ क्या, पास नहीं आई। कई बार तो सामने से पीठ दिखाकर चली गई। मल्लब, परीक्षा में आधे और चौथाई नंबर से रह गए। अब क्या ही करते! आज जिस परीक्षा का परिणाम आया, उसका परिणाम भी वही, ढाक के तीन पात! जैसे-तैसे एक लड़की से बात शुरू हुई थी, वो भी छोड़ गई। 'लगता है किस्मत ही खराब है।' चौबेजी ने सोचा और बोरिया बैग बांधकर चल दिए दिल्ली की ओर।

''अब भले ही मजदूरी मिले, मैं कर लूंगा, लेकिन नौकरी के भरोसे बूढ़ा नहीं होता रहूँगा।'' कहते हुए रेलगाड़ी में चढ़ गए। दूसरी ओर से टीटीआई आता दिखा तो टॉयलेट से सुरक्षित जगह भला कहाँ हो सकती थी। जल्दी ही घुस गए अंदर। इतना सुकून तो कभी टॉयलेट करने के बाद नहीं मिला होगा, जो आज उन्हें अंदर घुसते ही मिल गया। नहीं-नहीं मैं ये बिलकुल नहीं कह रहा कि उन्होंने टॉयलेट कर ली। सुकून की सांस लेते हुए आँखें मूंदे खड़े हुए और उन्होंने जल्दी ही अंदर से सिटकनी बंद कर ली। ऐसे में कौन ध्यान देता है कि टॉयलेट कितना गंदा है और बदबू कितनी तेज आ रही है! जैसे ही वे मुड़े, कमोड के ठीक सामने चिपका एक रंगीन पंफलेट आकर्षित कर रहा था, जिसमें कई दावे किए गए थे, जैसे 'समस्या है, समाधान कराएँ', 'मनचाहा प्यार पाएँ', 'वशीकरण से करें सम्मोहित', 'परीक्षा में असफलता से निराश, हम देंगे साथ', 'प्यार में धोखा', 'संतान न होना', 'वशीकरण स्पेशलिस्ट, महागुरु, बाबा छुपारुस्तम जी महाराज से समाधान पाएँ, केवल फोन घुमाएँ!' चौबेजी ऐसे मौके की तलाश में न जाने कब से थे, कोई तो मिले जो उनकी गृह दशा को ठीक कर सके। वर्षों से असफलता से परेशान हैं, शादी भी नहीं हो रही। उन्होंने तुरंत फोन घुमाया, ''हैलो, महाराज जी, चरण स्पर्श!''

''खुश रहो बच्चा। क्या समस्या है बच्चा?''

''महाराज! समस्याएँ ही समस्याएँ हैं। दस साल से ज्यादा हो गए, बहुत मेहनत कर रहे हैं, फिर भी नौकरी नहीं लग रही है।'' चौबेजी ने यहीं से बात शुरू करने में समझदारी समझी।

''सब ठीक हो जाएगा बच्चा। कोई चिंता न करो। और कोई समस्या?''

''महाराज! नौकरी नहीं है, तो शादी भी नहीं हो रही। एक लड़की थी, वह भी छोड़ गई।''

''ऐसे ही लोगों की तो तलाश है हमें।''

''क्या मतलब महाराज जी?''

''मतलब, ऐसी ही समस्याओं का तो हम समाधान करते हैं।''

''महाराज जी, क्या इसके लिए आप कुछ फीस भी लेते हैं?''

''नहीं, फीस-वीस बिल्कुल नहीं। हाँ, पूजा और हवन कराना पड़ता है, बस उसका खर्चा आ जाता है।''

''महाराज! उसमें कितना खर्चा आ जाएगा।''

''ज्यादा नहीं, मात्र इक्यावन सौ रुपये। इतने में दोनों काम देख लेंगे।'' ''इक्यावन सौ!'', चौबेजी का मुँह खुला रह गया। इतना तो उन्हें पढ़ाई के समय खाना खर्चा नहीं मिलता था। पाँच हजार मिलते थे जैसे-तैसे।

''अरे महाराज जी! हम बेरोजगार इंसान के पास इतने रुपये कहाँ से आए!''

''बस इसीलिए तो कोई लड़की नहीं टिकती। ये रुपये लाने पड़ेंगे, तभी तो रुपयों का रास्ता बनेगा, तभी तेरा भाग्य जागेगा बच्चा।''

''ठीक है महाराज जी, कुछ करते हैं।'' कहकर चौबे जी ने कॉल काट दी। सोच रहे थे कि रुपये नहीं देंगे, तो हवन नहीं होगा, भाग्य नहीं जागेगा, भाग्य नहीं जागा तो रुपये नहीं आएँगे और बिना रुपयों के...'

वे अभी भी रुपयों का चक्कर समझने की कोशिश कर रहे थे।

स्वास्थ्य साहित्य

मन या MIND

पतंजलि का सबसे प्रसिद्ध कथन है योगस्य चित्तवृति निरोधः

डॉ. एस.एस.मुद्गिल

इसका शाब्दिक अर्थ है "मन की वृत्ति को रोकने का साधन योग है।"

अब, यह वाक्यांश योगस्य चित्तवृत्ति निरोध और चित्त मन के लिए एक संस्कृत शब्द है। तो, हमें यह समझना होगा कि चित्त या मन का क्या अर्थ है।

योग एक साधन है और प्रसन्नता/आंनन्द [Bliss] ही हमारी मंजिल है। अब प्रश्न उठता है कि हमें सुख की अनुभूति कहाँ होती है, या शरीर का कौन-सा अंग सुख के लिए उत्तरदायी है? हम अपने अनुभव से जानते हैं कि देखने, सुनने, छूने, बोलने, चखने आदि के लिए हमारी आँखें, कान, त्वचा, आवाजयंत्र [Iaryanx or voice box], जीभ आदि जिम्मेदार हैं। फेफड़े, पैर और हाथ श्वसन, गति और गति के साधन हैं। और इसी तरह हम शरीर के अन्य कई अंगों के बारे में जानते हैं जिन्हें हम नंगी आंखों से नहीं देख सकते हैं या अपनी उंगलियों से छू नहीं सकते हैं। हम जानते हैं कि जब तक हम जीवित हैं तब तक ये अंग हमारे लिए लगातार काम कर रहे हैं।

मुझे चिकित्सा क्षेत्र में लगभग 50 वर्षों का अनुभव है। 1970 में, मैंने अपना एम.बी.बी.एस पूरा किया और बाद में उच्च विशेषज्ञता के लिए अध्ययन किया। तब से मैं चिकित्सा के क्षेत्र में कार्यरत हूँ। मैंने मानव शरीर रचना विज्ञान में ग्रेजुएशन में और बाद में सर्जरी में शरीर की चीर फाड़ [मृत dissection एवं जीवित-surgery] के दौरान शरीर के सभी अंगों को देखा है। मैंने पेट, थौरैसिक और ब्रेन सर्जरी जैसी कई तरह की सर्जरी देखी हैं। मैंने अपने अनुभवी वरिष्ठों और अपने शिक्षकों से पूछा, "हम शरीर के किस अंग में सुख का अनुभव करते हैं?" लगभग सभी का जवाब था, "मन में।" मेरा अगला प्रश्न था, "मैं अपने शरीर में मन को कहाँ ढूँढ सकता हूँ?" मेरे सामने पूर्ण मौन की दीवार थी। कोई नहीं बता सकता था कि मन शरीर में कहाँ रहता है। मैंने साहित्य का अध्ययन किया, दोनों काल्पनिक और आध्यात्मिक, और मैंने कई जगहों पर मन का उल्लेख पाया। इन दोनों प्रकार के साहित्य में सुख-दुख के लिए मन को ही उत्तरदायी ठहराया गया है।

अंतिम उत्तर यह था कि यह मन ही है जो हमें खुश या उदास महसूस कराने के लिए जिम्मेदार है। फिर, मैंने इस तथाकथित मन की तलाश शुरू की, और मैं समझ गया कि मन कोई भौतिक इकाई नहीं है, बल्कि यह केवल मस्तिष्क का एक संकाय है।

मन के अस्तित्व को सत्यापित करने के लिए अभी तक कोई प्रयोग सफल नहीं हुआ है। एकमात्र प्रमाण यह दावा है कि हमारे पास मन है, लेकिन इस व्यक्तिगत दावे हेतु विज्ञान के क्षेत्र में ठोस प्रमाण नही है। मन क्या है, और यह अपने विचारों और मनोदशाओं को कहाँ से उत्पन्न करता है, यह आधुनिक विज्ञान के लिए बहस का विषय है। प्राचीन विज्ञान और दर्शन के लिए भी इसे व्यक्त करना एक कठिन विषय है

मन

पाश्चात्य परंपरा में, मन का अर्थ समझने, याद रखने, मूल्यांकन करने और निर्णय लेने में शामिल संकायों के परिसर से है। मन संवेदनाओं, धारणाओं, भावनाओं, स्मृति, इच्छाओं, विभिन्न प्रकार के तर्कों, उद्देश्यों, विकल्पों, व्यक्तित्व

लक्षणों और अचेतन जैसी घटनाओं में परिलक्षित होता है।

अब, हम जानते हैं कि चित्त मन को संदर्भित करता है, लेकिन वृत्ति के बारे में क्या? वृति एक दृष्टिकोण और इच्छा या दोनों के संयोजन के बीच का मामला है। यह भी कहा जा सकता है कि वृत्ति वैध इच्छा और वासना के बीच कहीं कुछ है।

संस्कृत शब्द निरोध का अर्थ है “रोकना” या “रास्ते में बाधा डालना”। योग वासना या बुरी इच्छाओं को रोकने के लिए इस्तेमाल किया जाने वाला एक उपकरण है।

जब मन और मस्तिष्क के बीच संबंध की बात आती

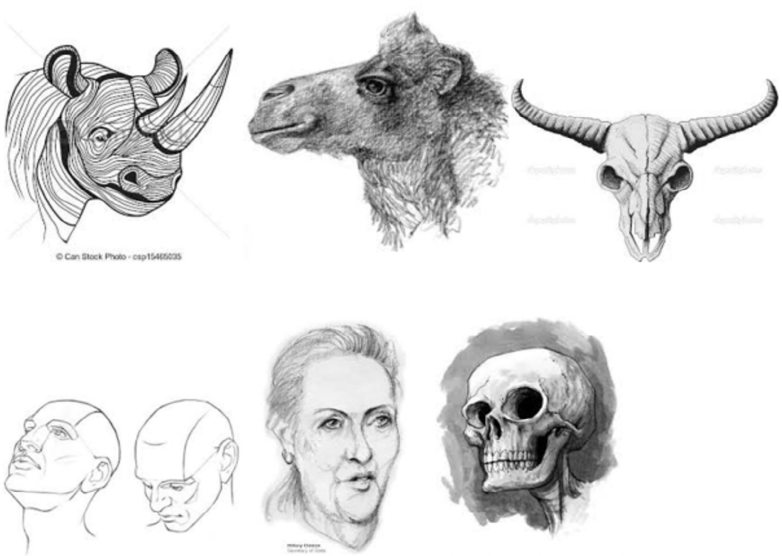

है, तो मन विकसित मानव मस्तिष्क का संकाय है। यदि हम अन्य स्तनधारियों के साथ मानव खोपड़ी की संरचना की तुलना करते हैं, तो हम देख सकते हैं कि भैंस, गाय, शेर, लोमड़ी और वनमानुष जैसे जानवरों के चेहरे लम्बूतरे होते हैं (चित्र 1 देखें)। हालाँकि, बंदरों से मनुष्यों तक, खोपड़ी की संरचना में परिवर्तन होता है (चित्र 6 देखें)।

कुदरत की इस अद्भुत हरकत ने खोपड़ी में एक रिक्त स्थान पैदा कर दिया। भला प्रकृति या भगवान इसे कैसे खाली रहने देते। इसलिए मस्तिष्क का हिस्सा, विशेष रूप से प्रमस्तिष्क या अग्रमस्तिष्क, इस खाली जगह में विकसित हुआ। विकासवाद के सिद्धांत के अनुयायियों का सुझाव है कि खोपड़ी में रिक्त स्थान के कारण निर्वात [vaccum] कि वजह से (खिंचाव के कारण) अल्पविकसित दिमाग में अग्रमस्तिष्क का आविर्भाव हुआ होगा। या हो सकता है चौपाये से दोपाये होने के कारण relative hypoxia की वजह से मस्तिष्क के आकार में वृद्धि हो गई। जो भी कारण हो, हम जानते हैं कि मनुष्यों के पास एक बड़ा सा अग्रमस्तिष्क या फ्रंटल लोब होता है।

मनुष्यों में प्रमस्तिष्क [cerebrum] और अनुमस्तिष्क [cerebellum] दोनों होते हैं, जबकि जानवरों में केवल अनुमस्तिष्क [cerebellum] होता है। सेरिबैलम खाने, नींद, भय और संभोग जैसे जैविक कार्यों के लिए जिम्मेदार है, जबकि विकसित सेरेब्रम, विशेष रूप से pre frontal lobe, मनुष्यों को जानवरों से अलग करता सेरेब्रल कॉर्टेक्सजो मानव मस्तिष्क की उच्च संज्ञानात्मक क्षमताओं के लिए जिम्मेदार है, अनुपातहीन रूप से बड़ा है, कुल मस्तिष्क द्रव्यमान का 80% से अधिक के लिए जिम्मेदार है। इसके विपरीत, जानवरों के मस्तिष्क का सेरेब्रल कॉर्टेक्स महत्वपूर्ण रूप से बड़ा नहीं होता है।

प्रीफ्रंटल कॉर्टेक्स [pre frontal cortex] विशेष रूप से, तर्क, समस्या समाधान, समझ, आवेग नियंत्रण, रचनात्मकता के लिए महत्वपूर्ण है। ध्यान केंद्रित करने और सोचने, मानसिक रूप से विचारों के साथ खेलने, अल्पकालिक कामकाजी स्मृति का उपयोग करने और किसी स्थिति पर प्रतिक्रिया करने से पहले सोचने पर ये कार्यकारी कार्य आवश्यक हैं।

प्रीफ्रंटल कॉर्टेक्स अन्य कॉर्टिकल क्षेत्रों की गतिविधियों को इस हद तक नियंत्रित करता है कि इसे मस्तिष्क के CEO [मुख्य प्रबंधक] के रूप में देखा जाता है। यह योजना, अंतर्दृष्टि, दूरदर्शिता और व्यक्तित्व के कई सबसे बुनियादी पहलुओं के लिए जिम्मेदार है।

एमआईटी के हालिया शोध से पता चलता है कि अन्य स्तनधारियों की तुलना में, मानव मस्तिष्क में कम संख्या में न्यूरोनल चैनल होते हैं जो कैल्शियम, पोटेशियम और सोडियम जैसे आयनों के बेहतर प्रवाह की अनुमति देते हैं। इस क्रम संख्या का मतलब यह हो सकता है कि मानव मस्तिष्क अधिक कुशलता से संचालित होता है और संसाधनों को अधिक जटिल संज्ञानात्मक कार्यों के लिए समर्पित कर सकता है। मानव मस्तिष्क की उल्लेखनीय संज्ञानात्मक क्षमता, जो कि विकास की एक महत्वपूर्ण उपलब्धि है, इसे जानवरों के मस्तिष्क से अलग करती है, जिनमें तुलनात्मक रूप से कम संज्ञानात्मक क्षमता होती है।

जबकि अन्य जानवरों के पास संचार के अपने साधन होते हैं, जैसे खतरे का संकेत, साथी की इच्छा या भोजन की उपस्थिति, ये संचार आमतौर पर "दोहराए जाने वाले कार्य" होते हैं जिनमें मानव भाषा की औपचारिक संरचना की कमी होती है। प्रोफेसर पगेल इसकी तुलना मानव मस्तिष्क कि दो विशिष्ट विशेषताएँ हैंः एक "रचनात्मक" प्रतिभा है, जो वक्ताओं को विषयों, क्रियाओं और वस्तुओं से युक्त वाक्यों में विचारों को व्यक्त करने की अनुमति देता है, और यह "संदर्भात्मक" है, जो वक्ताओं को लोगों के बारे में, वस्तुएँ, और उनके कार्य या स्थान के बारे में विशिष्ट जानकारी का आदान-प्रदान करने में सक्षम बनाता है।

चित्त (मन) का वैदिक मॉडल

योग पर चर्चा करने से पहले, आइए देखें कि भारतीय आध्यात्मिक ज्ञान मन के बारे में हमें क्या बताता है। वैदिक मॉडल में, कठो उपनिषद और भगवद गीता में रथ के प्रसिद्ध रूपक के माध्यम से मन व्यक्त किया गया है। एक व्यक्ति की तुलना उस रथ से की जाती है जो इंद्रियों का प्रतिनिधित्व करने वाले घोड़ों द्वारा विभिन्न दिशाओं में खींचा जाता है, मन को उस रथ का चालक माना जाता है। मन के बगल में रथ का स्वामी बैठता है सच्चा पर्यवेक्षक स्वयं, जो सार्वभौमिक एकता का प्रतिनिधित्व करता है। इस 'स्व' के बिना कोई सुसंगत व्यवहार संभव नहीं है।

तैत्तिरीय उपनिषद 2.7 में, एक व्यक्ति को पाँच अलग-अलग आवरणों या स्तरों के संदर्भ में दर्शाया गया है जो व्यक्ति के 'स्व' को घेरे हुए हैं। आरोही क्रम में दिखाए गए ये स्तर हैंः

अन्नमय कोश अन्न तथा भोजन से निर्मित। शरीर और मस्तिष्क।

प्राणमय कोश प्राणों से बना।

मनोमय कोश मन से बना।

विज्ञानमय कोश अन्तर्ज्ञान या सहज ज्ञान से बना कोश विज्ञानमय कोश कहलाता है।

आनंदमय कोश आनन्दानुभूति से बना

इन कोषों को आरोही क्रम में परिभाषित किया गया है, जिसमें उच्चतम स्तर आत्म जागरूकता (ATMA) है। गौरतलब है कि आनंद को बुद्धि से ऊपर रखा गया है,

चित्त की भूमियाँ अर्थात् चित्त के विभिन्न रूप

चित्त का रूप तीन गुणों सत्व, रजस एवं तमस के संतुलन पर निर्भर करता है जब कोई एक गुण हावी हो जाता है जैसे तम सत्त्व को दबा देता है, तब अज्ञान, अधर्म आदि का प्रदर्शन दिखने लगता है जब सत्त्व तम को दबा देता है,

तब ज्ञान, धर्म आदि में प्रवृति होती है। और जब रजस प्रधान हो जाता है तो चंचलता उत्पन्न होती है। लेकिन अनेक बार मिश्रित प्रभाव देखे जाते हैं। उसी के आधार पर चित्त के पांच रूप व्यास भाष्य में वर्णित हैं ये पतंजली योग सूत्र में नहीं हैं

मूढ : अर्थात् आलस्य भरा चित्त जिसमें रज प्रधान, तम और सत्व गौणरूप से रहते हैं। यह अवस्था राग और द्वेष के कारण होती है, यह चित्त का अस्वाभाविक धर्म है, जिसमें इन्द्रियाँ विषय मुग्ध होने से मूढ चित्त में भी कभी-कभी क्षणिक समाधि हो सकती है।

क्षिप्त : अर्थात् अत्यंत चंचल चित्त जिसमें तम प्रधान, रज और सत्व गौणरूप से रहें। यह अवस्था काम, क्रोध, लोभ और मोह आदि के कारण होती है, जिससे मनुष्य की प्रज्ञापूर्ण अज्ञान, अधर्म, अवैराग्य और अनैश्वर्य स्पष्ट लक्षण हैं। यह चित्त का अस्वाभाविक धर्म है, जिसमें प्रबल प्रवृत्तियों अर्थात् काम, क्रोध, लोभ और मोह आदि है।

विक्षिप्त अर्थात् कभी स्थिर और कभी चित्त जिसमें सत्त्व प्रधान, तम और रज गौणरूप से रहते हैं। यह अवस्था अनासक्ति और निष्काम कर्म आदि के कारण होती है, जिससे मनुष्य की प्रवृत्ति ज्ञान, धर्म, वैराग्य और ऐश्वर्य में होती है, जो जिज्ञासुओं के लक्षण हैं। यह चित्त का अस्वाभाविक धर्म है,

एकाग्र : अर्थात् एक अग्र चित्त जिसमें सत्त्व प्रधान, तम और रज वृत्ति मात्र से रहते हैं। यह अवस्था अपर वैराग्य के कारण होती है जिससे मनुष्य को वस्तु का यथार्थ ज्ञान होता है, जो योगियों के लक्षण हैं। यह चित्त का स्वाभाविक धर्म है, जिसमें अनुरुप वृत्तियों का प्रवाह से सम्प्रज्ञात समाधि अर्थात् अपने को भूले हुए चित्त को वांछित सात्विक विषय पर और दीर्घ समय तक स्थिर रखा जा सकता है। समाधि एक सात्विक वृत्ति है, जो तर (तमस) और विक्षेप (रजस) को निवृत करती है।

निरोध : अवस्था का अर्थ है गुणों के प्रभाव की समाप्ति। यह अवस्था उच्च योगियों की विशेषता है। इसमें मन सभी पहलुओं इच्छा आदि, से रहित है। जब सर्ववृत्ति भी रुक जाती है तो पुरुष स्वरूप में स्थित हो जाता है।

यह कर्म बंधन से छुटकारे एवं वास्तविकता को प्रकट करने की स्थिति है

हम कह सकते हैं कि मन मस्तिष्क की क्षमता है जो एक व्यक्ति को हर मानव व्यवहार, विचार, भावना, बौद्धिक खोज, स्मृति, योजना, इंद्रियों की चेतना, एकाग्रता, कौशल और आत्मनिरीक्षण को प्रबंधित करने की शक्ति देता है। सामान्य बोलचाल की भाषा में हम कह सकते हैं कि मन मानवीय गतिविधियों का प्रबंधक है।

इस पुस्तक के पहले अध्याय में हमने मन, उसकी कार्यप्रणाली और हमारे मस्तिष्क या शरीर से उसके संबंध के बारे में चर्चा की। अब हम यह समझने का प्रयास करेंगे कि मन को कैसे नियंत्रित किया जाए।

हम एक समीकरण के माध्यम से मन की कार्यप्रणाली को समझने का प्रयास करेंगे।

मन = विचार : चेतना

चेतना = मन : विचार

इसलिए मन को नियंत्रित करने के लिए हमें विचारों को नियंत्रित करना होगा। चिंतन शब्द की उत्पत्ति चित्त शब्द से हुई है, जिसे मन भी कहा जाता है। दिमाग हमें कुछ हद तक सोचने, बोलने और समझने की शक्ति देता है। हमारा चित्त या मन ही है जो चिन्तन के साथ चिन्ता को भी जन्म देता है। चिंता का अर्थ है तनाव या चिंता।

मनुष्य ने पृथ्वी पर चमत्कारिक काम किए हैं, और प्रकृति के रहस्यों को उजागर करने की हमारी इच्छा अतृप्त है। हालाँकि, इतिहास हमें बताता है कि हम मनुष्य दुनिया को अपने संवेदी अंगों (5 कर्म इंद्रियों) के माध्यम से देख रहे हैं जिन्हें बाहरी रूप से देखा जा सकता है। तो स्वभाव से, हम हमेशा बाहर की तलाश करने के लिए बाध्य होते हैं, और परिणामस्वरूप, हमारे मन और बुद्धि हमेशा बाहरी

दुनिया में उलझे रहते हैं। दुनिया में हो रहे बदलाव हमें खुशी, और दर्द के बीच झुलाते रहते हैं।

मन कैसे विकसित हुआ, इस बारे में परिकल्पना यह है कि मनुष्य के यौन सुख के प्रति जागरूक होने के साथ-साथ मन भी विकसित हुआ। प्राइमेट्स केवल तभी सेक्स करते हैं जब हार्मोनल प्रभाव के कारण मादा गर्मी में होती है। सेक्स में आनंद के इस ज्ञान ने मस्तिष्क में छवियां सपने, बनाईं, और समय के साथ छवियों की एक श्रृंखला एक विचार प्रक्रिया बन गई, और धीरे-धीरे मन का संज्ञानात्मक कार्य विकसित हुआ।

भविष्य के सपने या तो कल्पना होते हैं या योजना या का डर। उदाहरण के लिएए यूक्रेन युद्ध संयुक्त राज्य अमेरिका की एक योजना और यूएसएसआर के डर का परिणाम है। मन एक अतिरिक्त-भौतिक जागरूकता प्रतीत होता है जिसे मानव ने सामूहिक ज्ञान के कारण विकसित किया क्योंकि अन्य जानवर भविष्य के लिए योजना नहीं बनाते हैं।

एक और अतिरिक्त-भौतिक विकास जो मन करने में सक्षम है, वह है कल्पना, जैसे कि धातु के सिक्कों से लेकर कागज या डिजिटल पैसे तक। पैसा ही हमारे शरीर के लिए बेकार हैय हम इसे न तो खा सकते हैं और न ही पहन सकते हैं, लेकिन हम भोजन या कपड़े खरीद सकते हैं। कागज का यह एक टुकड़ा (पैसा) सामग्री के रूप में किसी काम का नहीं है, लेकिन यह विचार कि वह रोटी और कपड़ा या घर से कुछ भी खरीद सकता है, उसे उपयोगी बनाता है। इस प्रकार मुद्रा को सबसे प्रारंभिक कृत्रिम बुद्धिमत्ता वस्तु [Artificial intelligence AI] कहा जा सकता है।

आधुनिक वैज्ञानिक आविष्कार हमें स्थायी सुख देने में असफल रहे हैं। लेकिन प्राचीन भारत के ऋषियों (ज्ञानी पुरुषों को हम उन्हें सामाजिक वैज्ञानिक कह सकते हैं) ने मन को दुखों से मुक्त रखने और आनंदमय जीवन का आनंद या सचिदानंद (सत = सत्य या वास्तविकता) शाश्वत आनंद प्राप्ति के लिए एक अनूठी तकनीक का आविष्कार कियाए जिसे योग कहते हैं।

योग के रूप में जानी जाने वाली यह आश्चर्य तकनीक प्राचीन काल से भारत में मौजूद है और मौखिक परंपरा के माध्यम से पीढ़ी दर पीढ़ी चली आ रही है और सबसे पहले महर्षि पतंजलि द्वारा योग सूत्र में संकलित की गई थी।

योग को अक्सर केवल शारीरिक आसन और श्वास अभ्यास (प्राणायाम) के रूप में समझा जाने लगा है और लोग इन अभ्यासों के शारीरिक स्वास्थ्य लाभों पर ध्यान केंद्रित करते हैं। हालाँकि, पतंजलि योग में, शरीर और मन दोनों को नियंत्रित करने के अभ्यास से मानसिक स्वास्थ्य लाभ भी प्राप्त किया जा सकता है।

ध्यान, योग का एक प्रमुख घटक है और इसका प्रभाव विभिन्न अध्ययनों से सिद्ध किया जा चुका है। ध्यान मस्तिष्क के लिए व्यापक रूप से लाभदायक हैं और ध्यान मानसिक तनाव से संबंधित मुद्दों में मदद कर सकते हैं। योग से न केवल शारीरिक और मानसिक रोगों को रोका जा सकता है बल्कि इलाज के रूप में भी इस्तेमाल किया जा सकता है। यद्यपि आधुनिक वैज्ञानिक प्रगति ने विभिन्न गैजेट उपकरण, प्रदान करके हमारे जीवन को अधिक आरामदायक, सुविधायुक्त बना दिया है लेकिन वे हमें मन की शांति प्रदान करने में विफल रहे हैं। हमारे विचार अक्सर भौतिक सुखों पर केंद्रित होते हैं, और हम स्वयं को भूल चुके होते हैं। हम अपने पूरे जीवन में चेतना के बदलते रूपों में रहते हैं, लेकिन हम अपने वास्तविक स्वरूप को कभी नहीं जान पाते। पतंजलि बताते हैं कि कैसे मनुष्य ने भौतिक सुखों की खोज में खुद को विचारों की परतों या बेहोशी से ढक लिया है। यौगिक ज्ञान इन परतों को वापस छीलने और हमारे वास्तविक स्वरूप को प्रकट करने की तकनीक प्रदान करता है।

विधि साहित्य

भारत के संविधान के 75 वर्ष उपलब्धियाँ व चुनौतियाँ

डॉ. संजीव कुमार

भारत का संविधान

भारत का संविधान 26 जनवरी 1950 को लागू हुआ और यह विश्व का सबसे बड़ा लिखित संविधान है। इसे संविधान सभा ने तैयार किया, जिसकी प्रारूप समिति के अध्यक्ष डॉ. भीमराव अंबेडकर थे। संविधान भारत को एक संप्रभु, समाजवादी, धर्मनिरपेक्ष और लोकतांत्रिक गणराज्य घोषित करता है। इसमें नागरिकों को न्याय, स्वतंत्रता, समानता, और बंधुत्व के मौलिक अधिकार दिए गए हैं।

संविधान में कुल 395 अनुच्छेद और 12 अनुसूचियाँ थीं, जो समय-समय पर संशोधित होती रही हैं। यह संघीय ढांचे की स्थापना करते हुए केंद्र और राज्यों के बीच शक्तियों का विभाजन करता है। संविधान में मौलिक अधिकार, नीति निदेशक सिद्धांत और नागरिक कर्तव्यों को शामिल किया गया है। यह भारतीय लोकतंत्र की आधारशिला है, जो देश की एकता, अखंडता और विकास को सुनिश्चित करता है।

भारत के संविधान के 75 वर्ष उपलब्धियाँ

1. समाज में समानता की स्थापना : सामाजिक न्याय के सिद्धांतों पर आधारित संविधान ने जाति, धर्म, लिंग और वर्ग के आधार पर भेदभाव को समाप्त करने की दिशा में महत्वपूर्ण कदम उठाए हैं। आरक्षण प्रणाली ने वंचित वर्गों को समान अवसर प्रदान करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है।

2. संविधान संशोधन : समय के साथ बदलती आवश्यकताओं के अनुरूप संविधान में 100 से अधिक संशोधन किए गए हैं, जो इसे जीवंत और प्रासंगिक बनाए रखते हैं। यह लचीलापन संविधान की सबसे बड़ी ताकत है, जिससे यह बदलते समय के अनुरूप ढलता रहता है।

3. संघीय ढाँचे की मजबूती : संविधान ने केंद्र और राज्यों के बीच अधिकारों का संतुलन स्थापित किया है, जिससे संघीय ढाँचे को मजबूती मिली है। यह व्यवस्था विभिन्न राज्यों की सांस्कृतिक विविधता और विशिष्टताओं को सम्मान देते हुए राष्ट्र की एकता को बनाए रखती है।

4. न्यायपालिका की स्वतंत्रता : न्यायपालिका की स्वतंत्रता और न्यायिक समीक्षा की शक्ति संविधान की एक महत्वपूर्ण विशेषता है, जिसने विधायिका और कार्यपालिका के गलत फैसलों पर अंकुश लगाया है, और नागरिकों के अधिकारों की रक्षा सुनिश्चित की है।

5. धर्मनिरपेक्षता : संविधान ने भारत को धर्मनिरपेक्ष राष्ट्र घोषित किया, जहाँ सभी धर्मों का सम्मान किया जाता है और राज्य का कोई धर्म नहीं है। यह देश की सांस्कृतिक विविधता और साम्प्रदायिक सौहार्द्र को बनाए रखने में सहायक सिद्ध हुआ है।

भारत का संविधान इन 75 वर्षों में न केवल एक कानूनी दस्तावेज के रूप में बल्कि एक मार्गदर्शक सिद्धांत के रूप में उभरा है, जिसने देश की प्रगति और विकास में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। यह भारतीय समाज के लिए न केवल अधिकारों और कर्तव्यों का मार्गदर्शक है, बल्कि एक ऐसी जीवंत धरोहर है, जो आने वाली पीढ़ियों के लिए प्रेरणास्त्रोत बनी रहेगी।

भारत के संविधान के 75 वर्ष नाकामियाँ

भारत के संविधान ने लोकतंत्र की नींव को मजबूत किया है और कई क्षेत्रों में उत्कृष्ट उपलब्धियाँ हासिल की हैं। फिर भी, इन 75 वर्षों में इसके कुछ दोष, आपदाएँ, और कमियाँ भी सामने आई हैं, जो इस प्रकार हैंः

1. संवैधानिक संशोधन और दुरुपयोग :

संविधान में समय-समय पर किए गए संशोधनों ने इसे प्रासंगिक बनाए रखा है, लेकिन कभी-कभी राजनीतिक

हितों के लिए इसका दुरुपयोग भी हुआ है। कुछ संशोधनों ने सत्ता में बैठे लोगों को अधिक अधिकार देने का कार्य किया, जिससे संविधान के मूल सिद्धांतों के साथ छेड़छाड़ का खतरा उत्पन्न हुआ।

2. संघीय ढांचे की चुनौतियाँ :

केंद्र और राज्यों के बीच अधिकारों और संसाधनों के बंटवारे को लेकर कई बार टकराव की स्थिति बनी रही है। केंद्र द्वारा राज्यों के अधिकारों में हस्तक्षेप और राज्यपालों की नियुक्तियों पर विवाद संघीय ढांचे की कमजोरियों को उजागर करते हैं।

3. मौलिक अधिकारों का हनन :

मौलिक अधिकारों की सुरक्षा के बावजूद, आपातकाल (1975-77) के दौरान मौलिक अधिकारों का व्यापक हनन हुआ। इसके अलावा, नागरिक स्वतंत्रता और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता को दबाने के प्रयासों के उदाहरण भी समय-समय पर देखे गए हैं।

4. आरक्षण नीति और विवाद :

आरक्षण नीति ने सामाजिक न्याय की दिशा में कदम बढ़ाए हैं, लेकिन इसे लेकर विवाद भी उत्पन्न हुए हैं। आरक्षण के क्रियान्वयन में पारदर्शिता और योग्यता की अनदेखी से कई बार असंतोष फैला है, और यह नीति समय-समय पर राजनीतिक मुद्दा भी बनी है।

5. कानूनों के कार्यान्वयन में कमी :

संविधान में विभिन्न सामाजिक और आर्थिक न्याय के लिए नीति निर्देशक तत्व हैं, परंतु उनका पूर्ण क्रियान्वयन नहीं हो पाया है। गरीबी, अशिक्षा, और असमानता जैसी समस्याएँ अभी भी देश के विकास में बाधक बनी हुई हैं।

6. न्यायपालिका पर बोझ और देरी :

न्यायपालिका की स्वतंत्रता के बावजूद, अदालतों में लंबित मामलों की संख्या अत्यधिक है। न्याय की प्रक्रिया में देरी और कानूनी प्रावधानों का जटिल स्वरूप आम नागरिकों के लिए न्याय प्राप्ति को कठिन बना देता है।

7. राजनीतिक भ्रष्टाचार और अस्थिरता :

संविधान के तहत चुनावी प्रक्रिया को मजबूत बनाने के बावजूद, राजनीति में भ्रष्टाचार, दलबदल, और धनबल का प्रभाव चिंता का विषय बना हुआ है। यह लोकतांत्रिक मूल्यों को कमजोर करता है और संविधान की भावना के विपरीत जाता है।

8. धर्मनिरपेक्षता पर प्रश्न :

संविधान ने भारत को धर्मनिरपेक्ष राष्ट्र घोषित किया है, लेकिन समय-समय पर साम्प्रदायिक दंगों, धार्मिक आधार पर राजनीति, और अल्पसंख्यक अधिकारों के हनन ने धर्मनिरपेक्षता की भावना को चुनौती दी है।

भारत का संविधान निश्चित रूप से देश की प्रगति और स्थायित्व में एक महत्वपूर्ण स्तंभ है, लेकिन इन वर्षों में उजागर हुई कमियाँ और चुनौतियाँ इसे और अधिक सशक्त और समावेशी बनाने की आवश्यकता को रेखांकित करती हैं। यह आवश्यक है कि इन समस्याओं का समाधान करके संविधान के मूल्यों और सिद्धांतों को और भी सशक्त बनाया जाए।

उच्चतम न्यायालय द्वारा महत्वपूर्ण निर्णय

संविधान की संरचना पर महत्वपूर्ण न्यायिक निर्णय

भारत के संविधान की संरचना और इसकी व्याख्या पर समय-समय पर उच्चतम न्यायालय द्वारा कई महत्वपूर्ण निर्णय दिए गए हैं। ये निर्णय संविधान की मूल संरचना और उसकी सीमाओं को समझने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। यहाँ कुछ प्रमुख न्यायिक निर्णयों का संक्षिप्त वर्णन किया गया हैः

1. केशवानंद भारती बनाम केरल राज्य (1973)

इस ऐतिहासिक निर्णय में सुप्रीम कोर्ट ने 'मूल संरचना सिद्धांत' (Basic Structure Doctrine) को स्थापित किया। अदालत ने कहा कि संसद संविधान में संशोधन कर सकती है, लेकिन संविधान की मूल संरचना को नहीं बदल सकती। इस निर्णय ने संविधान की स्थिरता और मूल सिद्धांतों की सुरक्षा सुनिश्चित की।

2. मिनर्वा मिल्स बनाम भारत संघ (1980)

इस निर्णय में सुप्रीम कोर्ट ने 'मूल संरचना सिद्धांत' को और अधिक स्पष्ट किया। अदालत ने कहा कि संविधान में संशोधन की शक्ति असीमित नहीं है और मौलिक अधिकारों को कमजोर करने वाले संशोधनों को रद्द किया जा

सकता है। इसने मौलिक अधिकारों और नीति निर्देशक तत्वों के बीच संतुलन स्थापित किया।

3. गोलकनाथ बनाम पंजाब राज्य (1967)

इस फैसले में सुप्रीम कोर्ट ने यह निर्णय दिया कि संसद मौलिक अधिकारों में संशोधन नहीं कर सकती। हालांकि, बाद में केशवानंद भारती मामले में इस निर्णय को पलट दिया गया, लेकिन यह फैसला संविधान के मौलिक अधिकारों की सुरक्षा के प्रति न्यायालय की दृष्टि को दर्शाता है।

4. इंदिरा नेहरू गांधी बनाम राज नारायण (1975)

इस मामले में सुप्रीम कोर्ट ने स्पष्ट किया कि चुनाव से जुड़े मामलों में भी संविधान की मूल संरचना का सिद्धांत लागू होता है। न्यायालय ने चुनाव संबंधी कानूनों के कुछ संशोधनों को रद्द कर दिया, जो निष्पक्ष और स्वतंत्र चुनावों की अवधारणा के विपरीत थे।

5. एस.आर. बोम्मई बनाम भारत संघ (1994)

इस निर्णय में सुप्रीम कोर्ट ने संघीय ढांचे की व्याख्या की और कहा कि भारत का संघीय ढांचा संविधान की मूल संरचना का हिस्सा है। इसने राज्य सरकारों को बर्खास्त करने की राष्ट्रपति की शक्ति पर सीमाएँ निर्धारित कीं और लोकतांत्रिक ढांचे की सुरक्षा की।

इन निर्णयों ने संविधान की व्याख्या को नया आयाम दिया और यह सुनिश्चित किया कि संविधान के मूल सिद्धांत और संरचना संरक्षित रहें। ये फैसले भारतीय न्यायिक प्रणाली के संविधान की रक्षा में महत्वपूर्ण योगदान को दर्शाते हैं।

अनुच्छेद 356 पर महत्वपूर्ण न्यायिक निर्णय

अनुच्छेद 356 भारत के संविधान में राष्ट्रपति शासन लगाने का प्रावधान करता है। इसे तब लागू किया जाता है जब राज्य में संवैधानिक तंत्र विफल हो जाता है। इस प्रावधान के दुरुपयोग को रोकने के लिए उच्चतम न्यायालय ने समय-समय पर महत्वपूर्ण निर्णय दिए हैं। यहाँ अनुच्छेद 356 पर कुछ प्रमुख न्यायिक निर्णयों का संक्षिप्त विवरण दिया गया हैः

1. एस.आर. बोम्मई बनाम भारत संघ (1994)

मामले का सारांश : एस.आर. बोम्मई मामले को अनुच्छेद 356 के दुरुपयोग के विरुद्ध एक ऐतिहासिक निर्णय माना जाता है। इसमें कर्नाटक, मेघालय, नागालैंड, मध्य प्रदेश, हिमाचल प्रदेश, और राजस्थान की सरकारों को बर्खास्त किए जाने को चुनौती दी गई थी।

फैसला : सुप्रीम कोर्ट ने यह निर्धारित किया कि अनुच्छेद 356 के तहत राष्ट्रपति शासन लागू करने का निर्णय न्यायिक समीक्षा के तहत आ सकता है। अदालत ने कहा कि राष्ट्रपति की सिफारिश और राज्य में संवैधानिक तंत्र की विफलता की रिपोर्ट को संवैधानिक न्यायालय जांच सकता है।

महत्वपूर्ण बिंदु :

* राष्ट्रपति शासन लागू करने से पहले राज्यपाल को विधानसभा में बहुमत परीक्षण कराने का आदेश देना चाहिए।

* अनुच्छेद 356 का उपयोग केवल वास्तविक संवैधानिक संकट की स्थिति में ही किया जाना चाहिए।

* राजनीतिक मतभेदों या बहुमत परीक्षण से बचने के लिए इसका दुरुपयोग नहीं किया जा सकता।

2. रामेश्वर प्रसाद बनाम भारत संघ (बिहार भंग मामले) (2006)

मामले का सारांश : इस मामले में बिहार विधानसभा को भंग करने के राष्ट्रपति के निर्णय को चुनौती दी गई थी। यह निर्णय राज्यपाल की रिपोर्ट के आधार पर लिया गया था, जिसमें उन्होंने कहा था कि किसी भी दल के पास स्थिर सरकार बनाने के लिए पर्याप्त बहुमत नहीं है।

फैसला : सुप्रीम कोर्ट ने विधानसभा को भंग करने के निर्णय को अवैध घोषित किया और इसे अनुच्छेद 356 के दुरुपयोग के रूप में देखा।

महत्वपूर्ण बिंदु :

* राष्ट्रपति शासन की सिफारिश में राज्यपाल की रिपोर्ट की भूमिका महत्वपूर्ण है, लेकिन रिपोर्ट वास्तविकता पर आधारित होनी चाहिए।

* न्यायालय ने स्पष्ट किया कि बिना विधानसभा में बहुमत परीक्षण कराए, राष्ट्रपति शासन लागू करना अनुचित है।

3. बॉम्बे राज्य बनाम भारत संघ (1954)

मामले का सारांश : यह मामला बॉम्बे राज्य की सरकार को बर्खास्त करने के संदर्भ में था, जिसमें अनुच्छेद 356 के तहत राष्ट्रपति शासन लागू किया गया था।

फैसला : सुप्रीम कोर्ट ने निर्णय दिया कि अनुच्छेद 356 के तहत राष्ट्रपति का निर्णय पूर्णतः न्यायिक समीक्षा के दायरे में नहीं है। लेकिन एस.आर. बोम्मई मामले में यह विचार आगे जाकर विकसित हुआ।

इन निर्णयों ने अनुच्छेद 356 के दुरुपयोग को रोकने और संघीय ढांचे को मजबूत करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। न्यायपालिका ने स्पष्ट किया कि अनुच्छेद 356 का उपयोग केवल संवैधानिक तंत्र की वास्तविक विफलता के मामलों में ही किया जाना चाहिए और इसे राजनीतिक हितों के लिए इस्तेमाल नहीं किया जा सकता।

धारा 370 का निरसन प्रभाव और परिणाम

धारा 370 भारतीय संविधान का एक विशेष प्रावधान था, जो जम्मू और कश्मीर को विशेष स्वायत्तता प्रदान करता था। यह धारा 5 अगस्त 2019 को भारत सरकार द्वारा निरस्त कर दी गई, जिसके बाद जम्मू-कश्मीर का विशेष दर्जा समाप्त हो गया। इस कदम के कई प्रभाव और परिणाम देखे गए हैं

1. संवैधानिक और कानूनी परिवर्तन :

* धारा 370 के निरसन के बाद, जम्मू-कश्मीर और लद्दाख दो अलग-अलग केंद्र शासित प्रदेश बन गए। इसका मतलब है कि भारतीय संविधान के सभी प्रावधान अब इन क्षेत्रों में पूर्ण रूप से लागू हो गए हैं।

* राज्य के विशेष कानूनए जो पहले धारा 370 के तहत बनाए गए थे, अब भारतीय संसद के कानूनों के अधीन हो गए हैं।

2. आर्थिक विकास और निवेश :

* सरकार का दावा है कि धारा 370 के निरसन से क्षेत्र में आर्थिक विकास और निवेश के अवसर बढ़ेंगे। अब बाहरी राज्यों के लोग भी जम्मू-कश्मीर में जमीन खरीद सकते हैं और व्यापार कर सकते हैं, जिससे आर्थिक गतिविधियाँ बढ़ने की उम्मीद है।

* केंद्र सरकार ने विकास परियोजनाओं के लिए विशेष पैकेजों और योजनाओं की घोषणा की है, जिनका उद्देश्य क्षेत्र के आर्थिक और सामाजिक विकास को बढ़ावा देना है।

3. सुरक्षा स्थिति और आतंकवाद :

* धारा 370 के निरसन के बाद, जम्मू-कश्मीर में सुरक्षा बलों की तैनाती बढ़ाई गई और सुरक्षा उपायों को कड़ा किया गया। सरकार का तर्क है कि इससे आतंकवाद और अलगाववादी गतिविधियों पर लगाम लगाने में मदद मिलेगी।

* हालाँकि, इसके बाद क्षेत्र में हिंसा की घटनाएँ, कर्फ्यू, और इंटरनेट बंद जैसी समस्याएँ भी सामने आईं, जिससे सामान्य जनजीवन प्रभावित हुआ।

4. राजनीतिक परिदृश्य :

* स्थानीय राजनीतिक दलों और नेताओं ने धारा 370 के निरसन का विरोध किया और इसे जम्मू-कश्मीर की स्वायत्तता पर आक्रमण माना। इसके परिणामस्वरूप कई स्थानीय नेताओं को नजरबंद भी किया गया।

* राजनीतिक असंतोष और नागरिकों के बीच विश्वास की कमी का माहौल बनाए जो अभी तक पूर्ण रूप से समाप्त नहीं हो सका है।

5. सामाजिक और सांस्कृतिक प्रभाव :

* धारा 370 के निरसन ने जम्मू-कश्मीर की विशेष पहचान और सांस्कृतिक स्वायत्तता पर सवाल खड़े किए हैं। स्थानीय लोग इसे अपनी संस्कृति, पहचान और अधिकारों पर हमला मानते हैं।

* बाहरी लोगों के बसने और भूमि अधिग्रहण की संभावना के कारण स्थानीय जनसंख्या संतुलन और सांस्कृतिक बदलाव को लेकर चिंताएँ प्रकट की गई हैं।

संविधान संशोधन

भारत का संविधान, 1950 में लागू होने के बाद सेए समय-समय पर देश की बदलती जरूरतों और परिस्थितियों के अनुसार संशोधित किया गया है। संविधान में संशोधन का प्रावधान अनुच्छेद 368 के तहत किया गया है, जो संसद को संविधान के किसी भी भाग में संशोधन करने की शक्ति प्रदान करता है। संविधान संशोधन की प्रक्रिया लोकतांत्रिक और संघीय सिद्धांतों का पालन करते हुए जटिल और

बहुस्तरीय है।

प्रमुख विशेषताएँ :

1. संविधान संशोधन की प्रक्रियारू

* संसद के दोनों सदनों में संशोधन विधेयक को पेश किया जा सकता है।

* कुछ संशोधनों के लिए साधारण बहुमत पर्याप्त होता है, जबकि अधिकांश संशोधन विधेयकों को दोनों सदनों में दो-तिहाई बहुमत से पारित होना आवश्यक है।

* यदि संशोधन राज्यों के अधिकारों या संघीय ढांचे को प्रभावित करता है, तो इसे आधे से अधिक राज्य विधानसभाओं की स्वीकृति भी आवश्यक होती है।

2. संविधान संशोधनों के प्रकार :

*** सरल बहुमत से संशोधन :***

संसद द्वारा साधारण बहुमत से कुछ प्रावधानों में संशोधन किया जा सकता है, जैसे कि राज्य सभा के कामकाज के नियम।

*** विशेष बहुमत से संशोधन :***

अधिकांश महत्वपूर्ण संशोधन, जैसे कि मौलिक अधिकारों में परिवर्तन, संसद के दोनों सदनों में दो-तिहाई बहुमत की आवश्यकता होती है।

*** विशेष बहुमत और राज्यों की सहमति :***

संघीय ढांचे, राज्य की शक्तियों, और उच्चतम न्यायालय के क्षेत्राधिकार में बदलाव करने वाले संशोधनों के लिए राज्यों की सहमति भी आवश्यक है।

3. प्रमुख संविधान संशोधन :

पहला संशोधन (1951) : मौलिक अधिकारों में सीमाएँ और भूमि सुधार कानूनों की वैधता सुनिश्चित करने के लिए।

* 42वां संशोधन (1976) : संविधान में समाजवादी, धर्मनिरपेक्ष, और अखंडता जैसे शब्द जोड़े गए। यह संशोधन संविधान के मूल ढांचे में बड़ा बदलाव करने के लिए विवादित रहाँ

* 44वां संशोधन (1978) : आपातकालीन शक्तियों को सीमित किया गया और मौलिक अधिकारों की सुरक्षा को बढ़ाया गया।

* 61वां संशोधन (1989) : मतदान की आयु 21 वर्ष से घटाकर 18 वर्ष कर दी गई।

* 73वां और 74वां संशोधन (1992) : पंचायती राज और शहरी स्थानीय निकायों को संवैधानिक दर्जा दिया गयाए जिससे स्थानीय स्वशासन को मजबूती मिली।

4. संविधान संशोधन की सीमाएँ :

* सुप्रीम कोर्ट ने 'मूल संरचना सिद्धांत' (Basic Structure Doctrine) स्थापित किया है, जिसके तहत संसद संविधान की मूल संरचना को नहीं बदल सकती, जैसे कि न्यायपालिका की स्वतंत्रता, संघीय ढांचा, और मौलिक अधिकार।

संविधान संशोधन प्रक्रिया भारतीय लोकतंत्र की लचीलापन और विकासशीलता को दर्शाती है। यह प्रक्रिया संविधान को जीवंत और समयानुसार प्रासंगिक बनाए रखती है, जबकि इसके मूल सिद्धांतों और मूल संरचना की सुरक्षा भी सुनिश्चित करती है।

संविधान के 75 वर्षों में उभरती चुनौतियाँ

भारत के संविधान को लागू हुए 75 वर्ष हो चुके हैं, और इस दौरान देश ने अनेक चुनौतियों का सामना किया है। ये चुनौतियाँ सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, और कानूनी क्षेत्रों से संबंधित हैं और समय के साथ बदलती रही हैं। यहाँ संविधान के 75 वर्षों में उभरती प्रमुख चुनौतियों का संक्षिप्त विवरण दिया गया है :

1. संवैधानिक और कानूनी चुनौतियाँ :

संविधान का दुरुपयोग : संविधान के प्रावधानों, जैसे अनुच्छेद 356 (राष्ट्रपति शासन) का राजनीतिक लाभ के लिए दुरुपयोग, एक बड़ी चुनौती रही है। एस.आर. बोम्मई जैसे मामलों ने इसे संबोधित किया, लेकिन पूरी तरह से रोकना संभव नहीं हो पाया।

मूल संरचना सिद्धांत की सुरक्षा : सुप्रीम कोर्ट ने 'मूल संरचना सिद्धांत' के माध्यम से संविधान की मूल विशेषताओं की सुरक्षा की है, लेकिन संविधान संशोधन के प्रयासों के दौरान इस सिद्धांत की रक्षा करना चुनौतीपूर्ण बना रहाँ

2. संघीय ढांचे की चुनौतियाँ :

केंद्र राज्य संबंध : केंद्र और राज्यों के बीच अधिकारों

और संसाधनों के बंटवारे को लेकर विवाद, जैसे कि जीएसटी के राजस्व का बंटवारा, संघीय ढांचे की स्थिरता के लिए एक प्रमुख चुनौती रही है।

राज्यपाल की भूमिका : राज्यपाल की नियुक्ति और उनकी भूमिका को लेकर कई बार केंद्र राज्य संबंधों में तनाव उत्पन्न हुआ है। यह संघीय ढांचे और राज्यों की स्वायत्तता के लिए चुनौती बना हुआ है।

3. लोकतंत्र और राजनीतिक स्थिरता :

राजनीतिक भ्रष्टाचार और धनबल का प्रभाव : चुनावी प्रक्रिया में धनबल, बाहुबल, और भ्रष्टाचार के बढ़ते प्रभाव ने लोकतंत्र की जड़ों को कमजोर किया है।

दलबदल और अस्थिर सरकारें : दलबदल की बढ़ती प्रवृत्ति और गठबंधन सरकारों की अस्थिरता ने राजनीतिक स्थिरता को चुनौती दी है, जिसे रोकने के लिए 'दलबदल विरोधी कानून' बनाया गया, लेकिन चुनौतियाँ बरकरार हैं।

4. सामाजिक और आर्थिक असमानता :

गरीबी, बेरोजगारी, और अशिक्षा : संविधान के नीति निर्देशक तत्वों के बावजूद, गरीबी, बेरोजगारी, और अशिक्षा की समस्याएँ व्यापक रूप से बनी हुई हैं, जो सामाजिक न्याय और समानता के लक्ष्यों को पूरा करने में बाधा हैं।

जातिगत भेदभाव और आरक्षण : सामाजिक असमानता और जातिगत भेदभाव संविधान के लक्ष्यों को प्राप्त करने में प्रमुख चुनौतियाँ रही हैं। आरक्षण नीति ने कुछ हद तक मदद की है, लेकिन इसे लेकर विवाद और असंतोष भी उभरे हैं।

5. मौलिक अधिकारों की चुनौतियाँ :

अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता : अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के हनन के कई मामले सामने आए हैं, जिसमें मीडिया पर दबावए पत्रकारों की गिरफ्तारी, और इंटरनेट शटडाउन शामिल हैं। यह लोकतांत्रिक मूल्यों के लिए एक गंभीर चुनौती है।

नागरिक स्वतंत्रता : आपातकाल (1975-77) जैसे उदाहरणों ने मौलिक अधिकारों के हनन की ओर इशारा कियाए जो नागरिक स्वतंत्रता के संरक्षण की दिशा में एक बड़ी चुनौती बनकर सामने आया।

6. धर्मनिरपेक्षता और सांप्रदायिकता :

धर्मनिरपेक्षता पर खतरा : संविधान के धर्मनिरपेक्ष सिद्धांत को समय-समय पर साम्प्रदायिक तनाव और राजनीति ने चुनौती दी है। सांप्रदायिक दंगे और धार्मिक आधार पर भेदभाव की घटनाएँ धर्मनिरपेक्षता के लिए खतरा बनी रही हैं।

अल्पसंख्यक अधिकारों की सुरक्षा : अल्पसंख्यक समुदायों के अधिकारों और सुरक्षा की स्थिति को लेकर भी चुनौतियाँ रही हैं, जो संविधान के समाजवादी और धर्मनिरपेक्ष मूल्यों की रक्षा के लिए आवश्यक हैं।

7. न्यायपालिका की स्वतंत्रता और पारदर्शिता :

न्यायपालिका पर बोझ : न्यायपालिका में लंबित मामलों की संख्या अत्यधिक है, जिससे न्याय प्राप्ति में देरी होती है। यह न्यायपालिका की स्वतंत्रता और कार्यक्षमता के लिए एक बड़ी चुनौती है।

न्यायिक पारदर्शिता : न्यायपालिका की पारदर्शिता और जवाबदेही को लेकर भी सवाल उठते रहे हैं, जैसे न्यायाधीशों की नियुक्ति प्रक्रिया और भ्रष्टाचार के आरोप।

8. प्रादेशिक अखंडता और सुरक्षा चुनौतियाँ :

आंतरिक सुरक्षा : उग्रवाद, नक्सलवाद, और आतंकवाद की चुनौतियाँ आंतरिक सुरक्षा के लिए गंभीर खतरा बनी हुई हैं। कश्मीर, पूर्वोत्तर और नक्सल प्रभावित क्षेत्रों में विशेष रूप से सुरक्षा चुनौतियाँ रही हैं।

सीमा विवाद और विदेशी संबंध : चीन और पाकिस्तान के साथ सीमा विवाद और तनावपूर्ण संबंधों ने देश की प्रादेशिक अखंडता और सुरक्षा को चुनौती दी है।

संविधान के 75 वर्षों में उभरती इन चुनौतियों ने भारतीय लोकतंत्र की जड़ों को मजबूती से खड़े रहने की चुनौती दी है। हालांकि, संविधान में लचीलापन और समयानुसार संशोधन की प्रक्रिया ने इन चुनौतियों का सामना करने में मदद की है। भविष्य में, एक मजबूत, समावेशीए और संवेदनशील संविधान की आवश्यकता होगी जो इन चुनौतियों का कुशलता से सामना कर सके और देश की प्रगति और एकता को सुनिश्चित कर सके।

संविधान के वे संभावित विषय जिनमें परिवर्तन पर

विचार करना आवश्यक है

भारत का संविधान एक लचीला दस्तावेज है जो समय के साथ बदलती आवश्यकताओं के अनुसार संशोधित किया जा सकता है। हालांकि, कुछ ऐसे विषय हैं जिनमें सुधार और परिवर्तन की आवश्यकता अधिक महसूस की जाती है। ये परिवर्तन संविधान की प्रासंगिकता और कार्यक्षमता को बनाए रखने के लिए महत्वपूर्ण हो सकते हैं। यहाँ कुछ प्रमुख विषय दिए गए हैं जिनमें परिवर्तन पर विचार किया जाना आवश्यक है :

1. मूल अधिकारों का विस्तार और संरक्षण :

डेटा सुरक्षा और निजता : मौजूदा मौलिक अधिकारों में निजता के अधिकार को मजबूत करने की आवश्यकता है, विशेषकर डिजिटल युग में डेटा सुरक्षा और साइबर अपराध के संदर्भ में।

जलवायु न्याय और पर्यावरण अधिकार : पर्यावरण संरक्षण और जलवायु परिवर्तन के मुद्दों को मौलिक अधिकारों में शामिल करके नागरिकों को स्वच्छ पर्यावरण का अधिकार देना आवश्यक हो सकता है।

2. राजनीतिक सुधार और चुनावी प्रक्रिया :

चुनावी सुधार : चुनाव आयोग की स्वतंत्रता और चुनावी प्रक्रिया में पारदर्शिता बढ़ाने के लिए सुधार आवश्यक हैं।

दलबदल विरोधी कानून : दलबदल को रोकने के लिए मौजूदा कानूनों को और सख्त और स्पष्ट बनाने की आवश्यकता है ताकि विधायकों और सांसदों की जवाबदेही सुनिश्चित हो सके।

3. संघीय ढांचे और केंद्र राज्य संबंध :

वित्तीय स्वायत्तता : राज्यों को वित्तीय स्वायत्तता प्रदान करने के लिए जीएसटी राजस्व बंटवारे और केंद्रीय अनुदानों की पारदर्शिता में सुधार की आवश्यकता है।

राज्यपाल की भूमिका : राज्यपाल की नियुक्ति और उनके कार्यों को लेकर विवादों को कम करने के लिए स्पष्ट दिशा-निर्देश और उनके अधिकारों की पुनः समीक्षा आवश्यक हो सकती है।

4. न्यायिक सुधारः

न्यायपालिका की नियुक्ति प्रक्रिया : न्यायाधीशों की नियुक्ति की वर्तमान प्रणाली (कोलेजियम प्रणाली) की पारदर्शिता और जवाबदेही को बढ़ाने के लिए इसमें सुधार की आवश्यकता है।

न्यायिक देरी : न्यायिक प्रक्रिया में देरी और लंबित मामलों को कम करने के लिए न्यायालयों में संरचनात्मक और प्रक्रियात्मक सुधार आवश्यक हैं।

5. आरक्षण नीति और सामाजिक न्याय :

आरक्षण की समीक्षा : आरक्षण नीति की प्रभावशीलता और इसकी समय-समय पर समीक्षा की आवश्यकता है ताकि यह सुनिश्चित किया जा सके कि यह वास्तव में लक्षित लाभार्थियों तक पहुंच रहा है।

आर्थिक आधार पर आरक्षणरू सामाजिक और आर्थिक रूप से पिछड़े वर्गों के लिए आरक्षण में सुधार के लिए आर्थिक आधार पर आरक्षण की नीति पर विचार करना।

6. धर्मनिरपेक्षता और अल्पसंख्यक अधिकार :

धार्मिक स्वतंत्रता और समानता : धर्मनिरपेक्षता की रक्षा और अल्पसंख्यक समुदायों के अधिकारों के संरक्षण के लिए कड़े प्रावधानों की आवश्यकता हो सकती है, ताकि धार्मिक भेदभाव और सांप्रदायिक तनाव को रोका जा सके।

7. स्थानीय स्वशासन और विकेंद्रीकरण :

पंचायती राज और शहरी निकायों की सशक्तिकरणः स्थानीय स्वशासन संस्थानों की शक्तियों और संसाधनों में सुधार करके विकेंद्रीकरण को और अधिक प्रभावी बनाया जा सकता है। विकेंद्रीकरण की दिशा में सुधाररू प्रशासनिक कार्यों और अधिकारों का अधिक विकेंद्रीकरण करके स्थानीय स्तर पर शासन को सशक्त और प्रभावी बनाना।

8. आर्थिक सुधार और बुनियादी अधिकार :

बुनियादी सुविधाओं का अधिकार : शिक्षा, स्वास्थ्य, पानी, और आवास जैसे बुनियादी अधिकारों को अधिक स्पष्ट और प्रभावी बनाने की दिशा में सवैधानिक सुधारों पर विचार करना।

लैंगिक समानता : संविधान में लैंगिक समानता को सशक्त करने के लिए अधिक प्रभावी प्रावधानों और महिला अधिकारों की रक्षा के उपायों को शामिल करना।

9. आंतरिक सुरक्षा और नागरिक अधिकार :

राष्ट्रीय सुरक्षा और नागरिक स्वतंत्रता का संतुलन : आंतरिक सुरक्षा और आतंकवाद से निपटने के लिए बनाए गए कानूनों में नागरिक स्वतंत्रता और मौलिक अधिकारों की सुरक्षा के लिए संतुलन बनाए रखना।

10. तकनीकी और साइबर कानून :

साइबर सुरक्षा : डिजिटल अधिकारों, साइबर सुरक्षा और ऑनलाइन डेटा संरक्षण के लिए संवैधानिक प्रावधानों का अद्यतन और विस्तार करना।

संविधान में इन क्षेत्रों में सुधार पर विचार करना आवश्यक हो सकता है ताकि यह सुनिश्चित किया जा सके कि यह देश की वर्तमान और भविष्य की आवश्यकताओं के अनुरूप बना रहे। इन परिवर्तनों के माध्यम से संविधान न केवल अधिक समावेशी और उत्तरदायी बनेगा, बल्कि यह देश के सभी नागरिकों के अधिकारों और हितों की रक्षा करते हुए एक मजबूत लोकतांत्रिक ढांचे को भी सुनिश्चित करेगा।

संविधान का पुनर्लेखन : आवश्यक है या नहीं?

भारत का संविधान 1950 में लागू हुआ और इसे समय-समय पर संशोधित किया गया है ताकि यह देश की बदलती आवश्यकताओं के अनुरूप बना रहे। पुनर्लेखन का अर्थ है संविधान को पूरी तरह से नए सिरे से लिखना। इस पर विचार करते समय हमें संविधान की मजबूती, चुनौतियों और संभावित प्रभावों का मूल्यांकन करना आवश्यक है।

संविधान के पुनर्लेखन के पक्ष में तर्क :

1. समसामयिक मुद्दों का समाधान :

* संविधान को 1950 के सामाजिक, राजनीतिक, और आर्थिक संदर्भों में लिखा गया था। आज की बदलती परिस्थितियों, जैसे तकनीकी विकास, साइबर सुरक्षा, और पर्यावरण संरक्षण जैसी नई चुनौतियों से निपटने के लिए इसे पुनः लिखने की आवश्यकता हो सकती है।

2. संविधान की सरलता और संक्षिप्तता :

* वर्तमान संविधान अपने आकार और जटिलता के कारण आम जनता के लिए समझना कठिन हो सकता है। पुनर्लेखन से इसे सरल, संक्षिप्त और अधिक सुलभ बनाया जा सकता है।

3. अस्पष्टता और दोहराव को दूर करना :

* संविधान में कुछ प्रावधान अस्पष्ट हैं या आपस में टकराते हैं। पुनर्लेखन से इन अस्पष्टताओं और दोहरावों को दूर किया जा सकता है, जिससे कानून की स्पष्टता और एकरूपता बढ़ेगी।

4. आधुनिक समाज के मूल्यों को समाहित करनारू

* समय के साथ समाज के मूल्य और आदर्श बदलते हैं। पुनर्लेखन के माध्यम से आधुनिक समय के मूल्यों जैसे कि लैंगिक समानता, व्यक्तिगत स्वतंत्रता और मानवाधिकारों को और अधिक मजबूती से शामिल किया जा सकता है।

संविधान के पुनर्लेखन के विरोध में तर्कः

1. संविधान की मूल संरचना और स्थायित्वः

* भारतीय संविधान की संरचना और सिद्धांतों ने पिछले 75 वर्षों में विविधता और चुनौतियों के बावजूद स्थायित्व प्रदान किया है। पुनर्लेखन से संविधान की मूल संरचना (जैसे संघीय ढांचा, न्यायपालिका की स्वतंत्रता) के खतरे में पड़ने की आशंका हो सकती है।

2. संविधान में लचीलापन और संशोधन की व्यवस्थाः

* भारतीय संविधान में संशोधन की व्यापक व्यवस्था है, जो समय-समय पर आवश्यकतानुसार बदलाव की अनुमति देती है। अब तक 100 से अधिक संशोधन किए गए हैं, जो इसे समयानुसार प्रासंगिक बनाए रखते हैं। इसलिएए पूर्ण पुनर्लेखन के बजाय संशोधन प्रक्रिया को ही पर्याप्त माना जा सकता है।

3. राजनीतिक और सामाजिक अस्थिरताः

*पुनर्लेखन एक जटिल प्रक्रिया है, जो राजनीतिक और सामाजिक अस्थिरता का कारण बन सकती है। इसमें विभिन्न राजनीतिक दलोंए राज्योंए और समुदायों के हितों

के टकराव की संभावना होती है, जिससे व्यापक असंतोष उत्पन्न हो सकता है।

4. समानता और अधिकारों का संरक्षणः

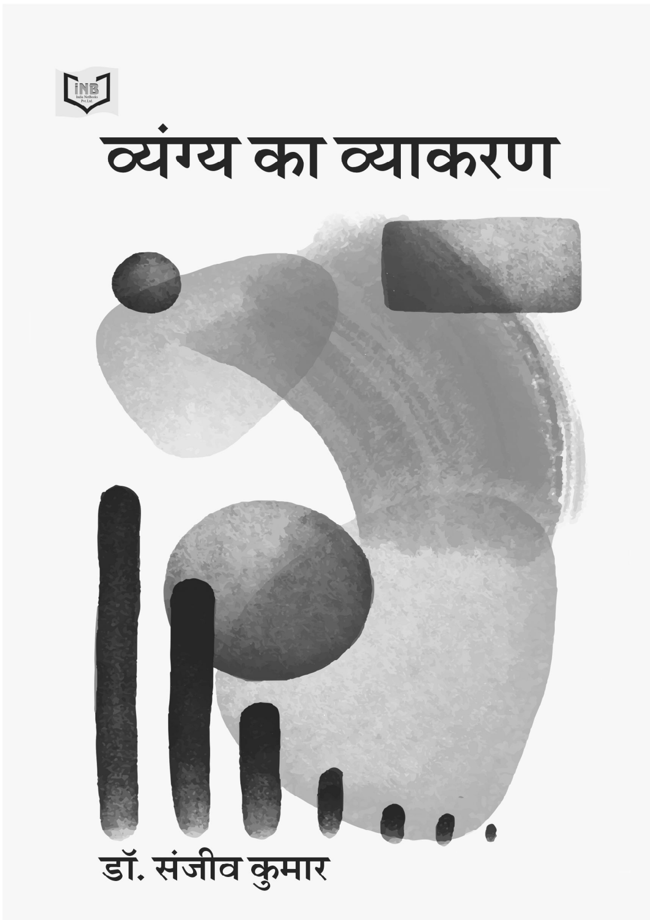

* वर्तमान संविधान ने भारत के विभिन्न वर्गों, विशेष रूप से वंचित और अल्पसंख्यक समुदायों के अधिकारों की सुरक्षा की है। पुनर्लेखन के दौरान इन अधिकारों के हनन का जोखिम हो सकता है, जिससे सामाजिक न्याय प्रभावित हो सकता है।

5. मूल संरचना सिद्धांत की सुरक्षाः

* सुप्रीम कोर्ट द्वारा स्थापित 'मूल संरचना सिद्धांत' संविधान की मूल विशेषताओं की रक्षा करता है। पुनर्लेखन से इस सिद्धांत की सुरक्षा खतरे में पड़ सकती है, जिससे लोकतांत्रिक और संघीय ढांचे की कमजोर होने की आशंका है।

संविधान के पुनर्लेखन का संभावित प्रभावः

1. संवैधानिक संकट और कानूनी चुनौतियाँः

* पुनर्लेखन के प्रयास से संवैधानिक संकट उत्पन्न हो सकता है, जिसमें न्यायपालिका और विधायिका के बीच टकराव हो सकता है। न्यायालय पुनर्लेखन के प्रयासों की संवैधानिकता की जांच कर सकता है।

2. समाज के विभिन्न वर्गों के हितों का संघर्षः

* विभिन्न सामाजिक, धार्मिक और क्षेत्रीय समूहों के हितों का संघर्ष पुनर्लेखन के दौरान बढ़ सकता है। इससे राष्ट्रीय एकता और अखंडता पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ सकता है।

3. लोकतांत्रिक प्रक्रिया और जनसहमतिः

* संविधान का पुनर्लेखन एक व्यापक लोकतांत्रिक प्रक्रिया है, जिसमें जनसहमति की आवश्यकता होती है। बिना व्यापक जनसहमति के, यह प्रयास असफल हो सकता है और नागरिकों के बीच अविश्वास बढ़ा सकता है।

संविधान का पुनर्लेखन एक गंभीर और संवेदनशील मुद्दा है। जबकि यह कुछ समसामयिक समस्याओं का समाधान प्रस्तुत कर सकता है, इसके साथ ही यह कई गंभीर जोखिम भी पैदा करता है। वर्तमान संविधान की लचीलापन और संशोधन की क्षमता इसे समयानुसार प्रासंगिक बनाए रखती है। इसलिए, पुनर्लेखन के बजाय संविधान में आवश्यक संशोधनों के माध्यम से समस्याओं का समाधान करना अधिक व्यावहारिक और सुरक्षित विकल्प हो सकता है।

कविता/ग़ज़ल

डॉ. संजीव कुमार की कविताएँ

पैंतालीस पार की औरतें

बच्चे जनती हैं
अपनी इच्छाओं को
पीछे डालती हैं
हर पल खटती आयीं
सबको सक्षम बनाने में
ज़िन्दगी बुन डाली
अनचाहे ताने-बाने में।

न पति का उतना साथ रहा
न हाथों में उनका हाथ रहा
रसोई, कपड़े, होमवर्क और बाजार के बीच
सिमटा रहा संसार।
बच्चे बड़े करते-करते
खुद थक जाती हैं
सारी दुनिया से कटकर
छोटी पड़ जाती हैं
बरसों बरस चुपचाप
घर की व्यवस्था
भूल जाती हैं—
खुद की अवस्था
कभी-कभी तो
पहनने ओढ़ने का
खत्म हो जाता है चाव,
आश्रितों का उनके पाँव में पाँव
इन सबके बीच
सबके खड़े हो जाते हैं अधिकार
वह सहती रहती है शब्दों की मार।
मन की बातें तक
रह जाती हैं मन में
ध्यान तक नहीं दे पाती है
अपने ही तन में
कभी उच्च रक्त चाप
कभी थॉयरायड की बीमारी
बन जाती है—
सबकी बेचारी।

फिर भी सब जानते हैं
अपना अधिकार
कपड़े, जूते खाना वगैरह
तक सीमित संसार
घर में अगर हुई
कोई काम वाली
तो काम भले हो जाए
समय नहीं मिलता खाली।

अधूरी इच्छाएँ
प्रायः रह जाती है अधूरी
क्योंकि करनी होती है
सबकी इच्छाएँ पूरी।

कोई नहीं पूछता
तुम्हें क्या चाहिर
कोई नहीं कहता
आई लव यू
ऐसी रूखी-रूखी सी
हो जाती है ज़िन्दगी क्यूँ॥

समय की चाल

समय चलता जा रहा है
और हम केवल
करते रहे नामकरण-
साल, महीने और पक्ष

सप्ताह और दिन
प्रहर, घंटा मिनट
पल, विपल और न जाने क्या-क्या,
बना दिए दशकों
शताब्दियों
और सहस्राब्दियों के महाकार,
फिर युग और मन्वन्तर,
बदलता जाता है सब
चलता रहता है समय
और हम खोजते रहते हैं गन्तव्य, बस॥

मुहल्ले का कुआँ

मेरे घर के सामने के मकान में
था एक कुआँ
आधा घर के भीतर
आधा घर के बाहर
और पास ही
एक छोटा सा स्तम्भ
जिस पर स्थापित थे
कुछ देवी देवता।
हम सब वहीं से पानी लाते थे
मेरे घर हैण्डपम्प लगने तक।
वह मुहल्ले का
इकलौता कुआँ
औरतों का सभास्थल था
जहाँ पूरे गाँव की खबरों का
सुबह, दोपहर, शाम
होता था आदान-प्रदान
कपड़ों की धुलाई
और नहाने वालों के लिए
स्नानोपरांत पूजा भी
अब वहाँ कोई नहीं जाता
कुएँ में बन गया है कूड़ा घर
और पानी नदारद।

मोमबत्तियाँ जलाकर

मोमबत्तियाँ जलाकर
किसी मृतात्मा को
हम दे सकते हैं
श्रद्धांजलि
पर क्या वह रोशनी
पहुँच पाएगी
उन बलात्कारियों के
मन मस्तिष्क तक
जिन्होंने वीभत्स
दुष्कर्म करके हत्या की
या उन आतंकवादियों तक
जिन्होंने निराह प्राणियों की
जान निरापराध ली।

जलाना होगा कोई नया दीप
जो मिटा सके
इनके मन का अँधेरा
जला सके इनकी दानवता
बना सके इन्हें
एक सच्चा इंसान

बूढ़ा आदमी

फिसलती जाती है ज़िन्दगी
हाथ में आई मछली की तरह
घटती जाती है स्टेमिना
और शुरू हो जाती है।
बीमारियों की फेहरिस्त
कभी मोशन की समस्या
कभी ज्वर, कभी खांसी
रक्तचाप और मधुमेह
जो बदलते इस बुढ़ापे में
मजबूती से पकड़ती हैं।

डॉ. दीप्ति की कविता

संवाद और बातें

मिश्री सी मिठास
नीम सी कड़वी
दुखी मन को शांत करती
विनम्र स्वर में सांत्वना देती
ऊँचे स्वर में आतंक पैदा करती
क्रोध में हानि करवाती
ये संवाद और बातें
अपनों को जहाँ पास लाती
दुश्मनों में खाईया भी डलवाती
ये संवाद और बातें।

21वीं सदी का
अचूक हथियार
अपनों के खिलाफ अपनों का
दुश्मनों के खिलाफ चक्रव्यूह का
पीठ पीछे खंजर भौंकने का
मन और आत्मा को भीतर तक भेदने का
मन मस्तिष्क प्रफुल्लित करने का
सामर्थ्य लिए
ये संवाद और बातें।

सदियों की नफरत को प्रेम में बदल दे
ये सुखद संवाद और बातें
असीम शक्ति को धारण किए हैं
सदुपयोग और दुरुपयोग
मानव ने अपने अनुसार किया है
कभी अपने स्वार्थ हेतु
कभी वसुदेव कुटुंबकम के लिए इस्तेमाल किया है
ये संवाद और बातें

मानव के अंतर मन की अभिव्यक्ति
किसी खुशी गम घुटन की अभिव्यक्ति
ये संवाद और बातें
रिश्तों को तोड़ने और जोड़ने का अपार
सामर्थ्य लिए
ये संवाद और बातें
हर समस्या का समाधान लिए है
ये संवाद और बातें
मानो तो बकवास और
मानो तो हर समस्या का समाधान है
ये संवाद और बातें।।

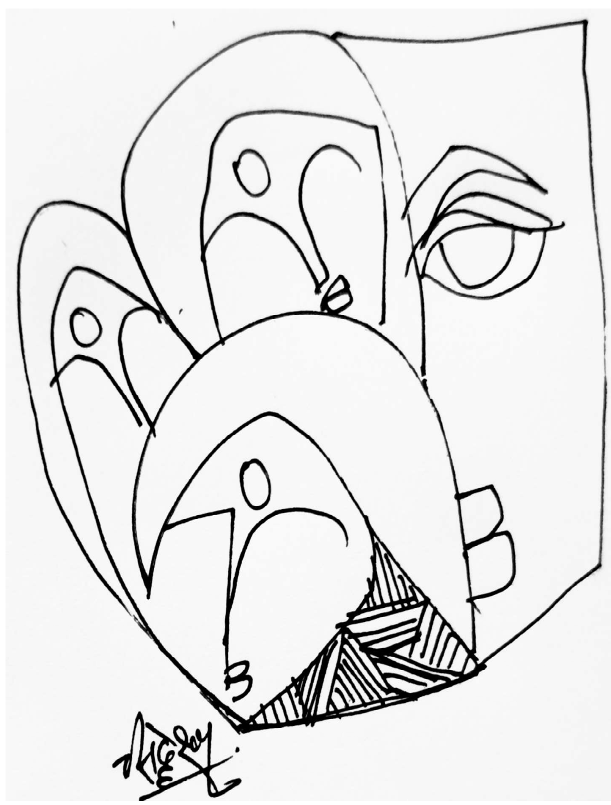

कमलेश कुमार दीवान की कविता

बाकी सब ठीक है

मैं हमेशा गलती ही करता हूँ
उनके साथ प्यार में दुलार में स्नेह के संसार में
सबके साथ व्यवहार मेंएस्वीकार मेंए इंकार में
हमेशा गलती ही करता हूँ बस ग़लती ही करता हूँ
और गलते जाता हूँ हमेशा मैं ही
बाकी सब ठीक है।
मैं तनाव से टूटता भी हूँएसपनों से रूठता भी हूँ
संकल्प लेता हूँए शपथ खाता हूँ
कि अब त्रुटियां न हो एगलतियों से बचा रहूँ
फिर फिर त्रुटियांए गलतियां करता ही हूँ
अपनों के लिए एजो अपने नहीं रहते
सपनों के लिए जो सपने हीं रहते हैं
मनानेए महसूस करने और देखते रहे उन्हेंए
जो कभी मेरे थे मुझसे ही थे
गलतियां तो आदत हो गई है
आज भी गलतियां करता हूँ
गलतफहमियां पालता हूँ ए
चुकाता जाता हूँ उनका मूल्य
प्यार मेंए दुलार मेंए व्यवहार में दो
स्वीकार और इंकार के संसार में
पैसों सेए समय से और विचार से
गलतियां करता हूँ गलतियों पर हूँ
और गलत रहते हुए गलता जाता हूँ
सोचता हूँ गलत ही सही हूँ
जीने के लिए गलतियां ही जरूरी है
बाकी सब ठीक ही है।

अमित कुमार मल्ल की कविता

वक्त के इशारे

चटक रहा है
चट्टानों में
पहाड़ों में
मेरे भीतर
वक्त के इशारे

मैं समझ रहा हूँ
मैं सुलझा रहा हूँ
वक्त के इशारे

वक्त को टुकड़े करके
जिंदगी सासें ले रही है
चल रही है

न नासमझ वक्त है
ना नासमझ मैं हू
दोनो जिए जा रहे है
नियति के हवाले।

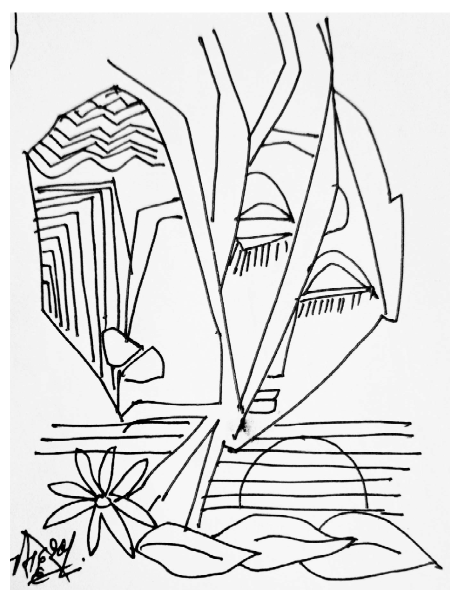

राजकुमार कुम्भज की कविताएँ

1. एक घर है, एक मैं हूँ एक

एक घर है, एक मैं हूँ
घर अकेला है, मैं भी अकेला हूँ
घर में डर है, घर बा ख़बर है
आवाज़ है, मगर आवाज़ में दरारें हैं
चारों दिशाओं जैसी चारों दीवारें हैं
थोड़ा-थोड़ा जब भी काँपती हैं दीवारें
तो थोड़ा-थोड़ा झिलमिलाती तो हैं मीनारें
मगर बुनियाद है कि यथावत
चार जन यथावत रहते हैं घर में
पता नहीं घर में रहते हैं कि डर में
और फिर पता नहीं कि किसके असर में
हैंए कुछ ऐसे भी हैं यहाँ, जो झुकते नहीं हैं
फिर-फिर सच कहने से रुकते नहीं हैं
पाँव चलते नहीं हैं, मगर थकते नहीं हैं
पाँव चले, न चले, ज़रूरी तो नहीं
ज़रूरी है तो बस यही-यही कि न थकूँ मैं
अंधेरे को रोशनी कभी भी न कहूँ मैं
मानाकि अभी एक हाथ में दूसरा हाथ नहीं है
मगर, साहस है तो कुछ भी अनाथ नहीं है
एक घर है, एक मैं हूँ।

2. मिलेगी फ़ुरसत तो मिलता हूँ

जो बीत गया वह बुद्ध हुआ
और जो रह गया शेष-विशेष युद्ध हुआ
अगर था प्रेम तो यही था जीवन
हवा में हवा से हवा लिखा
आग में आग से आग लिखा
पानी में पानी से पानी लिखा
लिखा और लिखता गया
शून्य में शून्य था फिर भी दिखता गया
दृष्टि बदलने से बदल जाती है सृष्टि
किंतु जब कुछ था ही नहीं,
तो फिर बदलता क्या?
मुट्ठी भर खाक-धूल भी थी नहीं अपनी,
तो फिर अकड़ता क्या?
बंधन में, बंधन का बंधन था, बंधा नहीं
तो फिर बिखरता क्या?
कल पत्ता था, हरा था, सूख गया झरता हूँ
जो कियाए वो करना था या नहीं, पता नहीं
जैसे भी बीता, अच्छा बीता, अब चलता हूँ
मिलेगी फ़ुरसत तो मिलता हूँ।

3. वे कहते हैं मुझसे

वे कहते हैं मुझसे
कि स्साले तुम्हारा पेट ख़राब है
तुम, जब-तब सरकार विरुद्ध विचार करते हो
तुम्हेंए किसी सख़्त जुलाब की ज़रूरत है
थोड़ा सब्र करो, भरोसा रखो,
थोड़ा क़ायम मुक़ाम मिलो
हम तुम्हें रोटी नहीं जुलाब देंगे बाबू
बदले में जय-जयकार का जवाब लेंगे बाबू
इस तरह कहा सुना सब माफ़ हो जाएगा
और तुम्हारा पेट भी साफ़ हो जाएगा
वे कहते हैं मुझसे।

लवकुश त्रिपाठी की ग़ज़लें

वो जो वक़्त था

वो दूर जो दिखा था; जाने किधर गया!
वो खो गया मुझी में; या मुझसे बिछड़ गया!!

साया था वो मेरा कि मैं ही था उसका साया!
गर बात थी यही तो; वो कैसे बिखर गया!!

तुम भी थे इक मुसाफिर; मैं भी था इक मुसाफिर!
ग़र फ़र्क-ए-राह थी नहीं; तो क्यूँ यूँ बहक गया!!

पाबंद ही रहे सब; ताउम्र इस जहाँ पर!
वह भी तो था यहाँ; पर चुपके से उड़ गया!!

आलम-ए-शहंशाह और साहबान कितने!
उनमें से एक तू भी; आया औ बह गया!!

मत पूँछ अब वो; किस्से कहानियों के दिन!
खुश्बू थे इस फ़िज़ा। के, महका औ खो गया!!

क़ाश

जब तक क़रीब रहा; दूर सा रहा!
अब दूर हो गया तो; नज़दीक सा रहा!!

छुपाये बैठा था वो; प्यार भरा दिल!
इर ऐसा कौन था उसे; मज़बूर सा रहा!!

इन बस्तियों में खोजता हूँ; उस कोहिनूर को!
जो अब तलक; सभी को बेनूर सा रहा!!

हर रोज़ जीतता हूँ और हारता हूँ मैं!
यह खेल ज़िन्दगी में; इक जुनून सा रहा!!

हम चाहते थे कुछ मगर कुछ और हो गए!
जो कह रहा हूँ आज तक; मंजूर सा रहा!!

'मरहूम' छोड़ना न कभी ऐसे हाथ को!
जो ज़िन्दगी में; मंज़िल-ए-मक़सूद सा रहा!!

ग़ज़ल

ये दिल हैं फ़ितरन बहक जाते हैं!
इक तरन्नुम में पत्थर भी चकह जाते हैं!!

नर्म मौसम में; आते हैं फ़िज़ाँ में रंग!
अजनबी यादों में; क्यूँ अश्क़ ढ़लक जाते हैं!!

वो इक दौर भी था; आज से सब बदला हुआ!
धुंधले उसके चेहरे से; अब भी महक जाते हैं!!

ज़िन्दगी की राहों में; सम्भल कर चला करिए!
बहुत अंधेरे भी हैं; पांव फिसल जाते हैं!!

ये दौर ऐसा है; दोस्ताना ज़रा मुश्किल हैं!
इक लम्हें में; यहाँ रिश्ते बदल जाते हैं!!

निगहबाँ नहीं हैं; दोस्ताना ज़रा मुश्किल हैं!
जिनसे थी उम्मीद-ए-वफ़ा, बेबफ़ा हुए जाते हैं!!

लम्हे

तुम्हारा शहर है; तुम्ही देखिए!
वासिंदे इसके; उन्हें देखिए!!

हवा तो नहीं ये तो तूफ़ान है!
क़हर में न ढ़ा दें; इन्हें देखिए!!

मैं चाहूँ भी तुमको तो किसकी तरह!
बदली है; दुनिया के रंग देखिए!!

जुबाँ तो है मीठी; मगर बदजुबाँ
अजब दोस्तों के ये 'संग' देखिए!!

नहीं हूँ मुक़द्दर का क़ायल मैं दोस्त!
सफ़र में चले; ये कदम देखिए!!

दुवाओं ने रखा बचाकर मुझे!
खुदा का ये रहम-ओ-करम देखिए!!

कभी काम आ जाएगी ये ज़िन्दगी!
तुम्हारे लिए; बस समय देखिए!!

'मरहम' मैं हूँ; तख़ल्लुस लिए!
दुनिया-ए-मुर्दा; ज़िन्दगी देखिए!!

पुस्तक समीक्षा-1

बड़े विचारों को बेहद साधारण, लेकिन प्रभावी ढंग से पेश करती हैं 'अफसोस की खबर' की कविताएँ

समीक्षक : चन्दन झा

आलोक शुक्ला जी, हिंदी साहित्य के एक प्रतिष्ठित लेखक हैंए जिन्हें उनकी सरल, संवेदनशील और गहन लेखन शैली के लिए जाना जाता है। उनका लेखन समाज के आम लोगों के जीवन, उनकी जटिलताओं और संघर्षों पर आधारित होता है।

शुक्ला अपनी कहानियों में मानवीय भावनाओं, सामाजिक विडंबनाओं और व्यक्तिगत संघर्षों को बड़े ही प्रभावशाली तरीके से प्रस्तुत करते हैं, जिससे पाठक सहज रूप से जुड़ाव महसूस करते हैं। शुक्ला जी की रचनाएँ समाज की वास्तविकताओं और आम आदमी के सपनों, निराशाओं और असफलताओं का सजीव चित्रण करती हैं। उनकी किताब "अफसोस की खबर" इसका एक उत्कृष्ट उदाहरण है, जिसमें छोटे-छोटे जीवन के संघर्ष और अधूरी इच्छाएँ एक गहरी संवेदनशीलता के साथ उभरकर सामने आती हैं। शुक्ला जी ने अपनी कविता के माध्यम से यह बताया है कि कैसे समाज और परिस्थितियाँ लोगों को अपने सपनों से समझौता करने पर मजबूर कर देती हैं। उनकी लेखन की सबसे खास बात यह है कि वह बड़े विचारों को बेहद साधारणए लेकिन प्रभावी ढंग से पेश करते हैं।

शुक्ला जी की रचनाएँ सिर्फ मनोरंजन तक सीमित नहीं होतीं, बल्कि वे समाज और जीवन के बड़े सवालों पर पाठकों को सोचने पर भी मजबूर करती हैं। आलोक शुक्ला जी ने अपने साहित्यिक करियर में कई कहानियाँ और उपन्यास लिखे हैं, जिनमें गरीबी, सामाजिक असमानता, आर्थिक संघर्ष, और व्यक्तिगत इच्छाओं के बीच की टकराहट जैसे विषय प्रमुखता से उभरते हैं।

उनकी लेखनी जीवन की अनकही सच्चाइयों को उजागर करती है और पाठकों को एक गहरा अनुभव प्रदान करती है। "अफसोस की खबर" आलोक शुक्ला जी की एक कविता संग्रह है, जिसमें जीवन की असमंजसए अधूरे सपनोंए और मानवीय भावनाओं को बेहद संवेदनशील और मार्मिक तरीके से प्रस्तुत किया गया है। इस संग्रह की कविताएँ साधारण जीवन की जटिलताओं और समाज की विडंबनाओं को उजागर करती हैं, जहाँ इंसान अपने सपनोंए इच्छाओंए और भावनाओं के बीच संघर्ष करता नजर आता है। कविताओं में गहरी भावनाएँ और विचार व्यक्त किए गए हैं, जो समाज की कठोर वास्तविकताओं को छूते हैं जैसे

गरीबी, असमानता, और जीवन के प्रति निराशा। कविताओं में उन छोटे-छोटे अफसोस का जिक्र है, जो व्यक्ति के जीवन का हिस्सा बन जाते हैं। यह संग्रह पाठक को सोचने पर मजबूर करता है कि कैसे जीवन में कुछ अधूरी इच्छाएँ और अफसोस हमेशा साथ चलते हैं, और इन्हीं के बीच इंसान को अपने रास्ते पर आगे बढ़ना पड़ता है। “अफसोस की खबर” की कविताएँ सरलए लेकिन बेहद प्रभावशाली हैं, जो पाठकों के दिल में गहरी छाप छोड़ती हैं और उन्हें जीवन के सूक्ष्म, मगर महत्वपूर्ण पहलुओं पर विचार करने के लिए प्रेरित करती हैं। कुछ काव्य संवाद जैसे “आईने के सामने होकर खड़े, खुद को भुला दूँ, ऐसी तो हमारी तहजीब नहीं। फिर ऐसा हो रहा है क्यूँ, ये सवाल पूछता फिर रहा हूँ, मौन धारण किया है तुमने क्यूँ?” कहाँ गये ख्वाब उसके देखता ही रह जाता है। इक मक़ाम जिंदगी में ऐसा भी आता है। नाम किस्मत का देकर आदमी, सबको सब न मिलने की सजा पता है। बहुत कुछ सोचने पे मजबूर कर देती है।

सुख और दुःख की जीवन यात्रा में प्यार और हमसफ़र की अहमियत को इन खूबसूरत शब्दों से समझाया गया है तुम साथ आओगे तो, जिंदगी में कुछ रंग आएंगे। तुम हो, जिंदगी का गुलाबए गुलाब बिना काटों के कहा पनप पाएंगे आपसी सम्बन्ध और समझदारी के विषय में दिल को छू लेने वाले ये शब्द है ष्तुम्हारा कुछ न बोलना, कितना कुछ कह जाता है, प्रिय तुम्हारा मौन! जीवन के संघर्ष के सन्दर्भ में ष्उठो जागो हे जनार्दन! रण भेरी है ये। तुम्हारे खुद के जीवन कीए लड़ना तुम्हे ही होगा, क्यूंकि इस रणभूमि केए तुम्ही कृष्ण हो और तुम्ही हो अर्जुन ऐसे अनेको उदाहरण इस काव्य संग्रह में प्रस्तुत किये गये है।

बहुत बहुत शुभकामना, आलोक जी।

लघुकथा

असली जरूरतमंद

वत्सला भारद्वाज

मंदिर से बाहर निकलते ही एक वद्ध महिला सामने आकर खड़ी हो गई। एक दो नहीं पूरे सौ रुपये की मांग की। मैं हतप्रभ। पूछा तो कहने लगी, मेरी पोती अस्पताल में पड़ी है। उसके सुई लगानी है, उसमें पैसे कम पड़ रहे हैं। मंदिर के पुजारी ने भी पचास रुपये दिए हैं। बिन मां बाप की बच्ची है। मदद कर दो।

मैं सोच में पड़ गई। आजकल दवा और बीमारी के नाम पर बहुत से लोग ठगी करते देखे गए हैं। समझ नहीं आ रहा था कि मदद करनी चाहिए या नहीं।

कुछ सोचकर मैंने कहा, अस्पताल की पर्ची दे दो, मैं ला देती हूं।

वह कहने लगी, वो तो नहीं है।

मैंने कहा, बिना पर्ची के दवा कैसे लाओगी?

उसने कहा, अस्पताल में मुफ्त इलाज होता है। लेकिन आज अस्पताल की छुट्टी है। इसलिए सुई बाहर से लेनी है।

मैंने दिमाग पर जोर डाला। आज किस बात की छुट्टी है? लेकिन कोई ऐसा अवसर नहीं था जो अवकाश हो। फिर भी अवकाा पर नर्सिंग स्टाफ तो रहता ही है। मेरा शक पक्का हो गया। कुछ गड़बड़ सा मामला लगा। हांलांकि मेरे पास उसको देने के लिए पर्याप्त राशि थी, पर मैंने दस रुपये दिए और घर आ गई।

जेहन में कई देर तक उथल पुथल मची रही। क्या मैंने गलत किया या सही? यदि कभी वास्तव में कोई जरूरतमंद टकराया तो कैसे पहचानूंगी? मदद भी करना एक बवाल लगने लगा। बहुत से लोग मदद से वंचित रह जाते हैं और ढोंगी फायदा ले जाते हैं। क्या समय आ गया है? दान, पुण्य के लिए भी जरूरतमंद खोजने पड़ते हैं। आज याद आ रही थी, डाकू खड्गसिंह और बाबा भारती की कहानी। आज बाबा भारती की सीख चरितार्थ होती दिख रही थी। डाकू खड्गसिंह का छल फैल चुका है।

पुस्तक समीक्षा-2

पुस्तक : मेरी कहानियाँ (कहानी संग्रह) मौज जीवन का फलसफा

समीक्षक : अनिल मिश्रा 'गुरु जी'

समय, काल, परिस्थितियों ने वर्तमान जीवन को बहुत संकुचित बना दिया है। इस संकुचन में मनुष्य की शैली, जीवन यापन, मूल्य ही नहीं बदले हैं बल्कि मनुष्य होने की परिभाषा ही बदल गई है। लोगबाग़ सामूहिकता, प्रेम, एक दूसरे के प्रति समर्पण, संस्कृति, परंपरा सभी कुछ पीछे छोड़ते जा रहें हैं। एक ऐसी जीवन शैली को निर्मित कर बैठे हैं, जो उनकी है ही नहीं। विकास के पैमानें पर हमने बहुत कुछ पाया है, लेकिन मानवीय मूल्यों का विध्वंस भी किया है। आज के समय में जहाँ दुनियां सिमट गई है, आपाधापी, विचलनए और बहुत कुछ पाने की लालसा है, ऐसे में अतीत से सबक तो लिया जा सकता है, लेकिन वर्तमान को नज़रअंदाज़ नहीं किया जा सकता। वर्तमान ही हमारे जीवन मूल्यों का सत्य है।

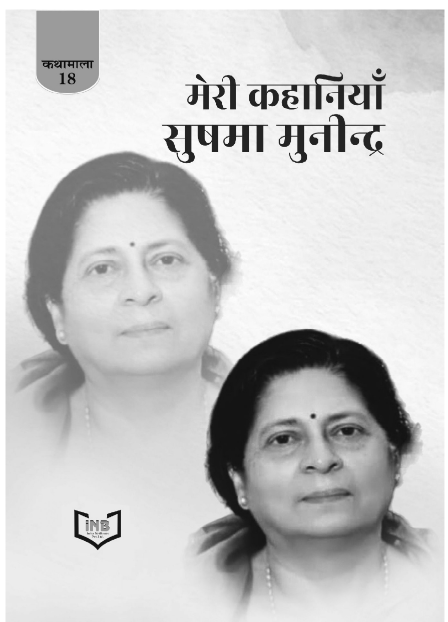

कहानियों का रचना संसार अगर वर्तमान की संरचना से जुड़ता है और कथाकार की दृष्टि समाज के व्यापक फ़लक पर चल रही उठापटक, कश्मकश, रिश्ते मूल्यों की सजीवता की ओर जाती है तो वह कहानियाँ पाठकों की भीतरी संवेदना को जागृत करने का काम करती हैं। कथाकार सुषमा मुनीन्द्र इसी ज़मीन पर अपनी कहानियों को उर्वरा बनाती हैं। साहित्य की विभिन्न विधाओं में सुषमा का लेखन विस्तृत आधार लिए हुए है।

बहुत सारा लिखा है, बहुत सारा कई भाषाओं में अनुवाद हुआ है। हिंदी पट्टी में अपनी उपस्थिति बनाए रखते हुए सुषमा की कहानियाँ ज़मीनी धरातल पर अपना सौंदर्य और शिल्प गढ़ती हैं। वर्तमान में रहते हुए वर्तमान की चुनौतियों को अपने कथा लेखन में पात्रों को सुसज्जित ढंग से पेश करना और उन्हें उनके चरित्रों के हिसाब से ढालना आसान नहीं होता है। एक समर्थ और चिंतक कथाकार के अंदर ही यह संभव है। सुषमा मुनीन्द्र ऐसी ही कथाकार हैं। बग़ैर लाग लपेट के कहानियों को सजीवता के साथ बुनने का हूँर सुषमा के पास है। कथा संग्रह "मेरी कहानियाँ सुषमा मुनीन्द्र" कथामाला के अंतर्गत प्रकाशित है। इस कथा संग्रह में 11 कहानियाँ हैं।

सभी कहानियाँ अपनी पूर्णता के साथ कई रंगों को समेटे हुए है। कहानियों का कलेवर ऐसा है कि पाठकों को पढ़ते वक़्त रस की निष्पत्ति से ओझल नहीं होने देता। कथाओं का रचना संसार भी यही कहता है कि अगर कथायें अपनी बुनावट की शिल्प पर खरी नही हैं तो वह पढ़ी तो जा सकती हैं लेकिन मनुष्य के चिंतन में शामिल नहीं होती। सुषमा मुनीन्द्र का लेखन मानवीय मूल्यों की अभिव्यक्ति दर्ज करता है। रिश्तों की संस्कृति को मिट्टी की जड़ों से जोड़ता है। "फोर्ड वाले मामा" कहानी वकालत, मामा, भांजे, नाना, बहिन के इर्द गिर्द ऐसी रची बसी कहानी है जो रिश्तों के बीच मिठास और टकराहट तथा संवेदनाओं को ऐसे पकड़कर चलती है, जहाँ तमाम उतार चढ़ाव के बीच सुख और दुख को परिभाषित करते हुए

जीने की ललक पैदा करती है।

फोर्ड कारों का एक ज़माना था और वह हैसियत बताती थी। समय के बदलते चक्र में इन कारों का ज़माना लदा और उनकी जगह आधुनिक, सुसज्जित, तकनीकों से भरी गाड़ियों ने ली। फोर्ड अतीत हो गई, लेकिन उसकी हैसियत कई गुना बढ़ गई। पूरी कहानी फोर्ड कार के आस पास अपना संसार बुनती है। नई पीढ़ी अतीत से मतलब नहीं रखती, वर्तमान में जो चल रहा है उसकी नकल या उससे आगे निकल जाने की होड़ में लगी रहती है। दोष इनका नहीं है, क्योंकि इस पीढ़ी को अतीत से परंपराएं हस्तांतरित नही हुईए इसलिए वर्तमान में जो देखा या मिला उसी को जिया। इस परावर्तन से धर्म, संस्कृति, मान्यतायें लहूलुहान हुईं। धर्म आडम्बर और फ़ैशन बन गया।

इस फ़ैशन ने आस्थाओं के साथ क्रूर मज़ाक किया। सनातन संस्कृति में देवी/देवताओं की प्रतिमायें नये अंदाज़ में गढ़ी गईं। मूर्तिकारों को अपना हूँरए आस्था को मजबूरन बाज़ार के हवाले करना पड़ा। सामाजिक मान्यताओं और बदलते आयामों पर सुषमा मुनीन्द्र गहरा सरोकार रखती हैं। यह सरोकार ही उनसे “फ़ंडा यह है कि” जैसी कहानी बुनवा लेता है। इस कहानी में एक मूर्तिकार की पीड़ा, उसकी जिजीविषा, उसकी सजीवता और मिट्टी तथा हाथ की जो कारीगरी है, उसका चित्रण है। वैसे भी एक सच्चा मूर्तिकार जब किसी प्रतिमा को तराशता है, तो वह निष्प्राण में जान फूँक रहा होता है। यह जान डालना ही कलाकार की अंतर्चेष्टा है।

कथाकार जड़ता, सामाजिक विसंगतियों और अंधेरे को छॉटने का काम करता है। अपनी लेखनी से उजाले की ओर बढ़ने का संकेत देता है। सुषमा इसी उजाले को अपनी लेखनी का आधार देती हैं। हालांकि उजाले तक पहुंचना साधारण मनुष्य हो या साहित्यकार आसान नही है। जब तक धैर्य, सहजता, विवेक का सामंजस्य नही होगा उजाले की राह पकड़ना मुश्किल होगा। सुषमा ने इसी नब्ज़ को टटोलते हुएँ कहानी “गुस्ताख़ी माफ़” के ज़रिए पाठकों को उजाले तक पहुंचाने का काम किया है। हमारे समाज में पुरानी पीढी के शादीशुदा दंपत्तियों में महिलाओं की स्थिति त्रासदी भरी रही हैं। पुरुष सत्ता हावी रही है। हालांकि अब मानक बदल गए है और महिलाएँ नये रूप में पुरुष सत्ता के सामने आ रही हैं। पुरानी पीढ़ी पर केंद्रित इस कहानी में बड़ी शालीनता के साथ नोक झोंक है, वाचलता है लेकिन सहजता है। चरम पर स्वीकारोक्ति है जीवन की और सुखद अहसास है।

सुषमा की कहानियों में फेन्ध्तासी भी है लेकिन ज़मीनी हक़ीक़त से अलग नही होती। सपने, पाने की चाहत, ज़िंदगी की जाद्दोजहद के बीच कहानी “हाँका” इस कदर गूँथती हैं कि चरित्र स्वयं में दाख़लि हो जाता है। शायद कहानियों का रकबा भी यही है कि वह पढ़ने वालों को अपने आस-पास हो रहे बदलाव के गिरफ़्त में ले ले। तभी लेखकीय सार भी सार्थक होता है और कहानियॉ भी। इस कहानी में ड्राइवर की ज़िंदगी के हसीन सपने हैंए संघर्ष हैंए ईमानदारी और बेईमानी हैं।

इसके बावजूद अन्ततः सुखद अहसास है, भ्रम और सत्य का। सुषमा जी छोटी छोटी घटनाओं को नज़रअंदाज़ नही करती हैं। अक्सर छोटी घटनायें ही भविष्य में अपना बड़ा आकार बानाती हैं। यही आकार एक समय बाद समाज के लिए चिंता का सबब ही नही बनता बल्कि नासूर बन जाता है। हम सब यात्री हैं, कही न कही एक मुकाम से दूसरे मुकाम चलते जाते हैं।

ट्रेनों का सफ़र और प्लेटफ़ार्म पर होने वाली गतिविधियाँ हमारी सोच को ज़रूरत और ग़ैरज़रूरत के बीच लगाये रहती हैं। “खाओं और खाने दो” कहानी भिखारियों की गतिविधिओं पर मनुष्य की गरिमा को लेकर सच्चाई के साथ जांच पड़ताल करती है। यथार्थपरक इस कहानी में कहानीकार ने कई सवालों को पाठकों के अंतर्द्वन्द से रेखांकित किया है। कहने का मतलब एक कहानीकार विसंगतियों को सामने ही नही लाता है बल्कि नये सिरे से सोचने का रास्ता भी दिखाता है।

सुषमा की हर कहानियाँ इस पुस्तक के लिहाज़ से प्रसंसनीय हैं। इंडिया नेटबुक्स प्राइवेट लिमिटेड नोयडा से प्रकाशित इस कथा संग्रह को ज़रूर पढ़ा जाना चाहिए।

साहित्य समाचार-1

इंडिया नेटबुक्स एवं बीपीए फाउंडेशन सम्मान/पुरस्कार 2024

रिपोर्ट : शैली माथुर

हिन्दी दिवस की बधाइयों के साथ ज्ञात हो कि इंडिया नेटबुक्स, बीपीए फाउंडेशन, कथाबिंब एवं अनुस्वार के संयुक्त तत्वाधान में प्रत्येक वर्ष पंडित भगवती प्रसाद अवस्थी की जयंती पर मार्च में चयनित रचनाकारों को सम्मानित किया जाता है। वर्ष 2024 के लिए निम्न सम्मान प्रदान किए जाएँगे सम्मानों की श्रृंखला में 2 परम विशिष्ट साहित्य भूषण सम्मान "वेदव्यास सम्मान एवं वागेश्वरी सम्मान शिखर सम्मान के रूप में प्रदान किए जाएँगे। जो कि हिंदी साहित्य को आजीवन अवदान एवं उपलब्धि के आधार पर दिए जाएँगे।

साहित्य विभूषण सम्मान (श्रेष्ठता के आधार पर आजीवन अवदान के लिए दिए जाएंगे)

1. भगवान दीन त्रिपाठी सम्मान (आजीवन श्रेष्ठ अवदान हेतु), 2. मन्नू लाल अवस्थी (हिंदी शिक्षा व संगठन), 3. केशव देव शास्त्री सम्मान (बहुविधागत श्रेष्ठता), 4. आनंदी देवी अवस्थी सम्मान (श्रेष्ठ व्यंग्यकार), 5. भगवती प्रसाद अवस्थी सम्मान (श्रेष्ठ बाल साहित्यकार), 6. कैलाश मिश्रा सम्मान (श्रेष्ठ कथाकार), 7. सरस्वती वाजपेयी सम्मान (श्रेष्ठ कवि), 8. गोविंद प्रसाद त्रिपाठी (श्रेष्ठ पत्रकारिता), 9. शिवप्यारी देवी अवस्थी सम्मान (श्रेष्ठ शोध कार्य), 10. पुष्पा देवी अवस्थी सम्मान (श्रेष्ठ प्रवासी योगदान) साहित्य भूषण पुरस्कार (विधागत प्रवीणता के लिए निम्न विधाओं में दिए जाएँगे।)

1. सी.आई.कला मिनो सम्मान (बहुभाषी साहित्यकार), 2. जनक दुलारी मिश्रा सम्मान (बहु विधा), 3. सियाराम अवस्थी सम्मान (व्यंग्य), 4. सत्यवती शुक्ला सम्मान (बाल साहित्य), 5. काली चरण मिश्रा सम्मान (उपन्यास, कहानी) 6. प्रेमशंकर शुक्ला सम्मान (कविता), 7. भगीरथी प्रसाद अवस्थी सम्मान (पत्रकारिता), 8. रूपा मिश्रा सम्मान (शोध एवं भाषा), 9. रामनारायण दीक्षित सम्मान (प्रवासी योगदान), 10. राजीव अवस्थी सम्मान (समालोचना)

इंडिया नेटबुक्स साहित्य रत्न पुरस्कार (उत्कृष्ट रचनाकर्म के लिए दिए जाएँगे)

1. बाल रत्न, 2. तरूण रत्न, 3. युवा रत्न, 4. कथा साहित्य, 5. उपन्यास, 6. काव्य, 7. ग़ज़ल, 8. व्यंग्य, 9. लोककथा, 10. लघुकथा, 11. संस्मरण, 12. आलोचना, 13. अनुवाद, 14. हिन्दी शोध, 15. नाट्य कला, 16. नृत्य कला, 17. मूर्तिकला, 18. चित्र कला, 19. बाल साहित्य, 20. नाट्य साहित्य, 21. चिकित्सा साहित्य, 22. विधि साहित्य, 23. खेल साहित्य, 24. सिनेमा साहित्य, 25. मंचीय साहित्य, 26. प्रवासी साहित्य, 27. पत्रकारिता रत्न, 28. सम्पादक रत्न, 29. संचालक रत्नए, 30. हिन्दी इतर भाषा, 31. राजभाषा, 32. कार्यक्रम संगठन।

बी.पी.ए. समाज सेवा पुरस्कार यविभिन्न क्षेत्रों में उपलब्धियों के लिए प्रदान किए जाएँगे इस वर्ष, कहानी, लघुकथा और उपन्यास के लिए कथाबिंब पुरस्कार की भी घोषणा की गयी है। उक्त पुरस्कार चयन समिति के निर्णय के आधार पर प्रभावी होंगे और 8 मार्च 2025 को दिल्ली में वितरित किए जाएँगे।

पुरस्कारों में प्रतिभागिता के लिए विभिन्न विधाओं के अन्तर्गत अपनी पुस्तकें अपने परिचय के साथ 30 नवम्बर 2024 तक निम्न पते पर भेज सकते हैं।

आवेदन का प्रारूप

नाम :
पतारू
ईमेल :
फोन नं :
हस्ताक्षर

फॉर्म-5

समाचार-पत्र के स्वामित्व एवं अन्य विवरणों सम्बन्धी उद्घोषणा, जिसे प्रत्येक वर्ष के

प्रथम अंक में फरवरी के अन्तिम दिवस के बाद प्रकाशित किया जाना है।

1. प्रकाशन का स्थान : सी-122, सेक्टर-19, नोएडा-201301, गौतमबुद्ध नगर, (दिल्ली एनसीआर)

2. प्रकाशन का समय काल : त्रैमासिक

3. मुद्रक का नाम : बालाजी ऑफसेट,
राष्ट्रीयता : भारतीय
एड्रेस : (न्यू-एम-28), 1/11844, उल्धनपुर, नवीन शाहदरा, दिल्ली-110032

4. प्रकाशक का नाम : डॉ. संजीव कुमार
राष्ट्रीयता : भारतीय
एड्रेस : सी-122, सेक्टर-19, नोएडा-201301, गौतमबुद्ध नगर, (दिल्ली एनसीआर)

5. सम्पादक का नाम : डॉ. संजीव कुमार
राष्ट्रीयता : भारतीय
एड्रेस : सी-122, सेक्टर-19, नोएडा-201301, गौतमबुद्ध नगर, (दिल्ली एनसीआर)

6. समाचार-पत्र का स्वामित्व रखने वाले व्यक्ति और साझेदार या अंशधारक जो कुल पूंजी का 1 प्रतिशत से अधिक धारित करते हों, का नाम और पता (100 प्रतिशत), डॉ. संजीव कुमार

मैं डॉ. संजीव कुमार, एतदद्वारा घोषित करता हूँ कि उपरोक्त विवरण मेरे संज्ञान एवं विश्वास में सत्य है।